रामकाव्यधारा : अनुसंधान एवं अनुचिंतन

रामकाव्यधारा : अनुसंधान एवं अनुचिंतन

•

डा० भगवती प्रसाद सिंह
आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

•

लोकभारती प्रकाशन
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित
●

प्रथम संस्करण : १६७६
●
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य : ३०.००

'भायप भगति'
के साक्षात् स्वरूप
परलोकवासी

दादा जोधासिंह

को
अर्पित

आत्मनिवेदन

रामभक्ति-साहित्य से मेरा सम्बन्ध चन्दन-पानी का रहा है। कबसे ? कह नही सकता। उसके सम्बन्ध मे पढने-लिखने की रुचि, पढने-लिखन मे गति होने के साथ ही अकुरित हुई, किन्तु इस क्षेत्र मे अनुसधान की प्रवृत्ति आचार्य स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल की प्रत्यक्ष प्रेरणा तथा तपोनिधि प० चन्द्रवली पाण्डेय के प्रात्साहन से जगी। इसके फलस्वरूप सरस्वती (जनवरी, १९४३) मे मेरा प्रथम लेख 'सूकरखेत' प्रकाशित हुआ। तुलसी साहित्य के सुधी विद्वानो मे उसका जैसा स्वागत हुआ, उससे मुझे परिष्कृत शोध प्रविधि अपनाने मे सहायता मिली।

राम काव्य के ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन करते हुए तुलसीदास के पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनगिनत रामभक्त कवियो और काव्यग्रथो का सधान मिला। उनमे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रथ है—पदमुक्तावली। यह प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित है। इसके अन्तर्गत १५वी तथा १६वी शती के अनेक निगुण-सगुण राममक्तो के पद सग्रहीत है। उनकी विषय-शैली की मीमासा करने से आचार्य शुक्ल का यह अनुमान तथ्याश्रित प्रतीत हुआ कि 'सूरसागर पहले से चली आती हुई हिन्दी गीतिकाव्य-परम्परा का एक अत्यन्त विकसित रूप है।' स्वामी रामानन्द से लेकर तुलसी के समकालीन महात्मा अग्रदास और उनकी परम्परा के रामभक्तों की पद-शैली की रचनाओ से उक्त विधा की लोक तथा सत समाज मे समान रूप से व्याप्त प्रतिष्ठा प्रमाणित हो गयी। अतः तुलसीदास की जीवनी एव कृतित्व के अज्ञात एव अल्पख्यात तत्वो का अनुसधान तथा विश्लेषण अपनी साहित्य साधना का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस सुदीर्घकाल-व्यापी शोध की अतर्यात्रा मे सचित तथ्यो और तत्वो को प्रकाश मे लाने के समय-समय पर अनेक निमित्त बनते रहे। प्रस्तुत ग्रथ उन्ही स्फुलिगो का समवेत रूप है।

गहरे अनुशीलन से प्राप्त इन बिखरी हुई मुक्तामणियो को सग्रथित करते हुए मेरी दृष्टि इनके माध्यम से यथासम्भव न केवल रामभक्ति-काव्य धारा का

शृङ्खलाबद्ध वृत्त प्रस्तुत करने की ओर रही है, वरन् इस शृङ्खला की कुछ अज्ञात और अननुसंधानित कड़ियों को विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करने तथा नवीन संदर्भ में सामान्यतः समस्त राममक्ति-काव्य और विशेषतः तुलसीदास के काव्य का आस्तिक दृष्टि से मूल्यांकन करने की ओर भी रही है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर निबन्धों को संकलित, नियोजित एवं व्यवस्थित करने के कारण इनके प्रकाशन का ऐतिहासिक क्रम सुरक्षित नहीं रह सका है। यह तथ्य मेरे साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास क्रम को लक्षित करने में बाधक हो सकता है। अतः तत्वग्राही पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इसके क्षीरांश—राम-तत्व तथा उसके आस्वादक संतों की निष्ठा—को ग्रहण कर लें और नीरांश—दुराग्रह तथा दृष्टिदोष को मेरा अंतर्मल धुलने के लिये छोड़ दें।

श्री जानकी नवमी, वैशाख शुक्ल ९, सं० २०३३ —भगवती प्रसाद सिंह
साकेत, बेतियाहाता, गोरखपुर।

विषय-सूची

सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन

पुराणो मे रामावतार की प्रतिष्ठा हो जाने के साथ ही रामोपासना का द्वार उन्मुक्त हो गया। वाल्मीकि रामायण[1] तथा महाभारत मे हनुमान और विभीषण की रामभक्ति का जो वृत्त प्रस्तुत किया गया है, उसमे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि रामोपासना का बीजारोपण सर्वप्रथम दक्षिण की आदिवासी जातियो—वानरो, ऋक्षो तथा असुरो मे हुआ। हनुमान, सुग्रीव, जाम्ववत, विभीषण आदि रामभक्त के रूप मे लोकविश्रुत हैं। उत्तरी भारत मे इसका प्रसार उन्ही के माध्यम से हुआ। महाभारत काल मे राम के साथ उनके भक्त, विशेष रूप से हनुमान की भी पूजा होने लगी थी। वनपर्व[2] मे पाडवो के द्वारा की गई हनुमान-पूजा प्रकारान्तर से रामपूजा अथवा रामभक्ति का ही आनुषगिक विकास माना जायगा। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण ने ऐक्ष्वाकुओ के कुलदेव श्रीरग का दिव्य विग्रह विमानसहित अयोध्या से लाकर श्रीरगनाथ धाम मे कावेरी की दो धाराओ के बीच स्थापित किया था। श्रीवैष्णव सप्रदाय मे श्रीरग राम से अभिन्न और श्रीरगधाम वैष्णवभक्ति का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। ऐतिहासिक काल मे शठकोप, कुलशेखर आदि प्रमुख आलवारो तथा नाथमुनि एव रामानुज ऐसे अग्रणी वैष्णवाचार्यों को रामभक्ति का प्रसाद इसी दिव्यधाम मे प्राप्त हुआ था।

व्यक्तिगत साधना मे रामोपासना की यह परपरा गुप्तकाल मे अबाधरूप से चलती रही। महाकवि कालिदास ने अपने समय मे 'रामगिरि'[4] की रामतीर्थ रूप मे प्रतिष्ठा का सकेत दिया है। गुप्तकालीन इतिहास मे भी चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता को 'भगवत रामगिरि स्वामिन्' की उपासिका कहा गया है। वराहमिहिर ने भी वृहत्सहिता मे दाशरथिराम की उपासना के प्रचार की चर्चा की है। यह क्रम प्राचीन पाचरात्र सहिताओ के निर्माणकाल (चौथी से आठवी

---

१. वाल्मीकि रामायण : उ० का० : ४०/१४-१७
२. महाभारत : वनपर्व : १४८/१६, १७, १८, २०.
३. महाभारत : वनपर्व १५१/१५, १६, १७.
४. मेघदूत १.
५. दि क्लासिकल एज, पृ० ४१७

शताब्दी) तक किसी प्रकार चलता रहा, इसका पता अहिर्बुध्न्यसहिता के कतिपय उल्लेखो से लगता है।

यह द्रष्टव्य है कि प्रवर्तन काल से लेकर आठवी शती तक रामोपासना व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र मे ही विद्यमान रही। उसका साम्प्रदायिक रूप इसके पश्चात् विकसित हुआ। साम्प्रदायिक साहित्य का प्रणयन भी तभी से आरभ हुआ। श्री वैष्णव ऐतिहासिक काल मे अपनी परपरा का सूत्रपात शठकोप आलवार (नवीं शती) से मानते हैं। रामानदीय सम्प्रदाय का प्रवर्तन श्रीसम्प्रदाय के ही अन्तर्गत हुआ। अतएव रामभक्त भी शठकोप को ही अपना प्रथम आचार्य कहते हैं। इस प्रकार रामभक्ति की साम्प्रदायिक धारा का प्रवाह नवी शती मे आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में पाया जाता है।

आलवारों की रामभक्ति

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तरी भारत मे भागवत धर्म का ह्रास होने लगा। उनके परवर्ती शासक मिहिरकुल, यशोधर्मन् और हर्षवर्धन वैष्णवेतर धर्मों के अनुयायी थे। अतएव आश्रय और प्रोत्साहन के अभाव मे, गगा की घाटी तथा मध्यभारत से हटकर, द्रविड देश वैष्णवसाधना का मुख्य गढ बन गया। आठवी शताब्दी से आलवारो की पीयूषवाणी से सिंचित हो, भक्तिलता पुन लहलहा उठी। इनकी सख्या बारह मानी जाती है। जिनमे प्रथम चार प्वायगार, भूतत्तार, पे, तथा तिरुमल्शिाइ, प्रधानतया नारायण और विष्णु के उपासक थे। पाँचवे आलवार शठकोप थे। वे नम्मालवार के नाम से भी जाने जाते हैं। आलवारो मे इन्ही की सर्वाधिक प्रसिद्धि हुई। इनकी 'सहस्रगीति' मे ही दाशरथि राम की अनन्य शरणागति का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। 'दशरथस्य सुत त विना अन्यशरणवान्नास्मि'[1] मे इनकी यह भावना स्पष्टतया व्यक्त हुई है। सम्प्रदाय मे ये राम की पादुका के अवतार कहे जाते हैं। अपने समय के जिन ३२ दिव्यविग्रहो की स्तुति इन्होंने की है, उनमे राममूर्तियाँ भी है।[2]

वेकटाचल के निकट तिरुपति मे श्री रामचन्द्र की मूर्ति की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसका उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य मे पाया जाता है।[3] सदाशिव-

---

१. सहस्रगीति, ३/६/८.
२. प्रपन्नामृत, पृ० ३६७.
३. श्रीराम रहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४३, ४४.

सहिता मे कलियुग मे रामतारक मत्र के उपदेश से, साप्रदायिक रूप मे रामोपासना के प्रचार का श्रेय, इन्हीं को दिया गया है। इनकी साधनाभूमि वेंकटाचल बताई गई है—

कलिकलोद्भवाना च जीवानामनुकम्पया।
देव्यानुबोधित साक्षाद्विष्णु सर्वजनेश्वर ॥
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्लब्ध्वा मत्र षडक्षरम्।
ददौ प्रीत्या सदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥
वेङ्कटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराकुश।
विष्वक्सेन समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम् ॥
तत्समीपे महापीठे वेङ्कटे रङ्गमण्डपे।
जपिष्यन्ति चिर मत्र तारक तिमिरापहम् ॥[1]

इससे रामभक्ति के प्रचार मे शठकोप आलवार का महत्त्व आंका जा सकता है। उनकी माधुर्यभक्ति की विवेचना आगे की जायगी।

छठवे आलवार शठकोप के शिष्य मधुर कवि हुए। साप्रदायिक ग्रन्थो मे इनकी जीवनी का जो अश प्राप्त है, उससे इनके रामोपासक होने मे कोई सदेह नहीं रह जाता। प्रपन्नामृत मे इनकी अयोध्यायात्रा, सरयूस्नान और सीताराम-पूजा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन्होने कुछ दिन अयोध्यावास भी किया था।[2]

सातवे आलवार केरल के राजा कुलशेखर प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। रामायण को वे वेदो के समान पूज्य मानते थे।[3] कहा जाता है कि रामचरित मे उनकी इतनी आस्था थी, कि एक बार कथा मे व्यास के मुख से खरदूषण द्वारा विशाल

---

१. वही (सदाशिव सहिता से उद्धृत), पृ० ४४

२. तस्मिन्कालेऽथ वेदातिस्तस्माद्बदरिकाश्रमात्।
अयोध्यामगमद्धीमान्कविर्मधुरसज्ञक ॥
स्नात्वाथ सरयूनद्यां वेदाती भगवत्पर।
ससेव्य सीतासहितमयोध्यारघुनन्दनम् ॥
कश्चित्कालमुवासात्र नित्यवत्सरस सदा ॥ प्रपन्नामृत, पृ० ३९२.

३ वेदवेद्ये परे पुसि जाते दशरथात्मजे।
वेद प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥
वेदतुल्यमिद साक्षाच्छ्रीमद्रामायण परम्।
काल सक्षिप्य तद्भक्त्या भगवान्कुलशेखर ॥ वही, पृ० २७८.

राक्षसी सेना के साथ अकेले राम पर आक्रमण किये जाने का वृत्तान्त सुनकर वे आवेश मे आ गये थे और प्रभु की सहायता के लिए झट अपनी सेना का डका बजवा दिया था। इसी भाँति एक अन्य अवसर पर सीताहरण का वृत्तान्त सुनते ही, उनके उद्धार के लिए उन्होने लंका पर धावा बोल दिया था और सेना सहित समुद्र मे कूद पडे थे।[1]

नाभादास ने भक्तदास[2] के नाम से इनका परिचय देने हुए इसका सकेत किया है। प्रियादास ने इन्हे 'आवेशी' रामभक्त कहा है। कुलशेखर के सबध मे यह भी प्रसिद्ध है कि उन्होने राम की प्रेरणा से अपनी पुत्री उनके प्रतिरूप श्रीरगदेव को व्याह दी थी।[3] आराध्य के प्रति ऐसे अगाध अनुराग के उदाहरण भक्तिसाहित्य मे दुर्लभ हैं।

रामभक्ति के ये भाव कुलशेखर की कृतियो मे भी अवतरित हुए। तमिल भाषा के एकादश छदो मे उनके द्वारा वर्णित सम्पूर्ण रामकथा, भक्तिसाहित्य की एक अमूल्य निधि है। उसमे पहली बार भक्ति के उद्गारो से ओतप्रोत सपूर्ण

---

१. वही, पृ० २८०.

२. सत साखि जानें सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान।
भक्तदास इक भूप श्रवन सीताहर कीनौं॥
'मार-मार' करि खड्ग वाजि सागर मैं दीनौ।
नरसिंह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्यो॥
वहै भयो दशरथ राम विछुरत तन छार्यो॥
भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ३६७

३. प्रियादास जी ने इसकी टीका करते हुए लिखा है कि कुलशेखर की उत्कट भक्ति से प्रसन्न हो सीताराम ने उन्हे तत्काल दर्शन दिया था—
'मार मार' करि खड्ग निकासि लियो,
दियो घोरौ सागर मैं सो आवेस आयो है।
"मारौं महिकाल दुष्ट रावन बिहाल करौं,
पाँवन को देखौं सीता भाव दृग छायो हैं॥
जानकी रवन दोऊ दरसन दियो आनि।
बोले बिन प्रान कियो नीच फल पायो है॥
सुनि सुख भयो, गयो शोक हृदय दारुन जो।
रूप को निहारनि यों फेरि के जिवायो है॥
वही, पृ० ३६६.

रामचरित के दर्शन होते हैं। आरम्भ में अयोध्या और राम की स्तुति करके आठवें छंद तक राम के राज्याभिषेक की कथा कही गई है। इसके पश्चात् सीता के भू-प्रवेश का उद्देश्य पृथ्वी में अपने अणुपरमाणुओं को मिलाकर लवकुश के समान रामयशगायको को जन्म देना बताया गया है। दसवें छंद में उनकी सेवा में गरुड की नियुक्ति का कारण भक्तों की रक्षा कही गई है। ग्यारहवें श्लोक में राम के मंत्री और दूत हनुमान की वंदना की गई है। अन्त में राम का गुणगान करने वाले भक्तों को परम पद की प्राप्ति का अधिकारी कहा गया है।[1] इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि वस्तुतः साम्प्रदायिक रामभक्ति की उद्भव-स्थली, द्रविड देश के उपर्युक्त आलवार भक्तों की भावसाधना ही है।[2]

वैष्णवाचार्यों की रामभक्ति

वैष्णवों के चार सम्प्रदायों—श्री, सनक, ब्रह्म और रुद्र—में रामभक्ति के सूत्र केवल श्रीसंप्रदाय और ब्रह्मसम्प्रदाय, में ही पाये जाते हैं। उसकी साम्प्रदायिक परम्परा भी इन्हीं दो के भीतर पल्लवित हुई। प्रथम के आदि आचार्य नाथमुनि और द्वितीय के मध्व थे।

श्रीसम्प्रदाय के आचार्यों की रामभक्ति

आलवारों के उत्तराधिकारी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य हुए। ये उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ ही भक्तिरस के भोक्ता भी थे। आलवारों की भाँति इन्होंने विष्णु तथा उनके अवतारों में कृष्ण, वामन और नृसिंह के साथ रामावतार में भी अपनी गूढ आस्था और तद्विषयक साहित्यरचना में रुचि दिखाई। इसीलिए रामभक्तों में ये पार्षदों के अवतार के रूप में पूज्य हैं।[3] वैसे श्रीसम्प्रदाय में लक्ष्मीनारायण को ही प्रमुखता दी जाती है, किन्तु सीताराम की उनसे एकात्मता स्थापित कर इन उदाराशय और दीर्घदर्शी महात्माओं ने सम्प्रदाय के भीतर रामभक्ति के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा कर दिया।

---

१. प्रपन्नामृत, पृ० २८५.
२. देखिये—'पेरुमल—तिरुमुडि' (सं० पी० कृष्णमाचार्य), पृ० १५४-५७
३. प्रपन्नामृत, पृ० ४५०.
४. श्री वैष्णव सम्प्रदाय के एक मुख्य सिद्धान्त ग्रन्थ—'बृहद्ब्रह्म संहिता' में सीताराम और लक्ष्मीनारायण की अभिन्नता दिखाई गई है—
तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः।

प्रथम आचार्य नाथमुनि (८२४ ई०—९२४ ई०) थे। ये रघुनाथाचार्य तथा रगाचार्य के नाम से भी जाने जाते हैं। 'दिव्य देशो' का पर्यटन करते हुए, इन्होने अयोध्या और चित्रकूट का भी दर्शन किया था।[1] इनके द्वारा आराधित कोदड-पाणि राम की मूर्ति बालाजी पर्वत पर बड जियरमठ मे अब तक विद्यमान है। सर्वप्रथम श्रीरामानुजाचार्य ने इसी विग्रह से प्रेरणा प्राप्त की थी। तत्पश्चात् गोविन्दराज ने रामायण की विश्रुत, 'भूषण टीका की रचना, इसी स्थान पर, *हनुमान जी के समक्ष बैठकर की थी। श्रीमत्यंजनभूधरस्य शिखरे श्रीमारुते सन्निधौ*' से इसकी पुष्टि आप ही हो जाती है। इनके द्वारा विरचित 'नाथमुनि यागपटल' और 'मानसिक ध्यान रामायण नामक दो रामभक्तिविषयक ग्रन्थ बताये जाते हैं।[2] इनमे प्रथम के सम्बन्ध मे श्री रामटहलदास का कहना है कि उसकी तोताद्रिमठ से प्राप्त ३०० वर्ष पुरानी प्रतिलिपि उपलब्ध है। इसके ५०वें पटल से इन्होने राममत्र-वैभव पर लिखे गये कुछ छद भी उद्धृत किये है।[4] इसके अतिरिक्त प्रपन्नामृत म नाथमुनि के महाप्रस्थान का जो वृत्तान्त दिया गया है, उससे रामचरणो मे उनकी अलौकिक श्रद्धा व्यक्त होती है। कहते हैं एक दिन नाथमुनि को ढूँढते हुए दो धनुर्धर राजकुमार, एक सुन्दरी और बलवान वानर के साथ, उसके घर आये। उनकी पुत्री से पूछने पर उन्हे पता चला कि नाथमुनि

रामरूपेण रमते सीतया परया सह ॥
आविर्भूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता ।
आविर्भावे क्षितौ जाता जानकी दिव्यरूपिणी ॥
बृ० ब्र० स०, पृ० ८४, ८६.

१. प्रपन्नामृत, पृ० ४५०,

२. श्रीरामरहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४५

३. वही, पृ० ४६

४. एव श्रीरामदेवस्य मन्त्राक्षरषडक्षर ।
रा रामाय नम इति मन्त्रराजो मितार्थद ॥
ध्यायेदप जगन्नाथ राम दशरथात्मजम् ।
पर ब्रह्मेति सचिन्त्य वर्णवस्य विभूतिभि ॥
तत श्रीराममन्त्रस्य षडक्षरनियोगिन ।
रामयोजेन रामस्य परमर्थप्रदो भवेत् ॥
(श्रीनाथमुनि योगपटल से उद्धृत)
श्री रामरहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४६-४७.

कही बाहर गये हैं। अतएव चारो आगन्तुक लौट गये। पिता के घर आने पर पुत्री ने सारा हाल कह सुनाया। नाथमुनि तुरन्त ही उनके दर्शनो के लिए घर से निकल पडे। गाँवो, नगरो, पर्वतो और जगलो मे ढूढते-ढूँढते जब वे हताश हो गये, तो आराध्य का साक्षात्कार लाभ करने के उद्देश्य से उन्होंने परमधाम की यात्रा की।[1]

नाथमुनि के अनन्तर पुडरीकाक्ष आचार्यपीठ क अधिकारी हुए। उनका 'रामार्या' नामक रामभक्ति का ग्रन्थ दक्षिण के 'दिव्य देशो' मे पाया जाता है।[2] तीसरे आचार्य राममिश्र थे। इनकी दो रचनाओ 'रामपडक्षर प्रपत्ति स्तोत्र' और वाल्मीकि-रामायण की 'भावप्रकाश टीका' का पता चलता है। नाम से ही इनका प्रतिपाद्य स्पष्ट है।[3] श्री राममिश्र क शिष्य यामुन मुनि (९१६-१०४० ई०) असाधारण महत्त्व के आचार्य हुए। वास्तव मे श्रीसप्रदाय की स्थापना तथा उसके सिद्धान्तों का प्रवर्तन इन्हीं की प्रेरणा का फल था। अपनी प्रसिद्ध रचना 'आलवदार स्तोत्र' म, इन्होने राम की विभीषण से की गई प्रतिज्ञा 'सकृदेव प्रपन्नाय की दुहाई दी है और अपने पितामह नाथमुनि की अकृत्रिम रामभक्ति का स्मरण दिलाकर, उसी नाते से चरणो मे स्थान पाने की पात्रता

---

१ सम्यगन्वेषयस्तत्र ग्रामेषु नगरेषु च।
तौ राजपुत्री नाथार्यं काननेषु च सादरम्॥
चचार लग्नहृदयस्तेषा सदर्शने तदा।
तेषामलभमानोऽप्य दर्शनं सुमहात्मनाम्॥
कुत्रापि भूतले योगी कथचिदपि यत्नत·।
वैकुठेऽपि च तान्द्रष्टु यतेयमिति वाछया॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४१८.

२ श्रीरामरहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४७

३ रामटहलदास जी ने राममिश्र स्वामी के राममत्रविषयक १० श्लोक 'श्रीराम-पडक्षर प्रपत्ति स्तोत्र' से उद्धृत किये हैं। उनमे से नमूने के लिये दो नीचे दिये जाते हैं—
रामायणपरत्वार्थप्रतिपाद्यपर स्मृतः
एकान्तिकाना सेव्योऽय मन्त्रराज षडक्षर॥
गुहपक्षीन्द्रकाकादीन् भल्लप्लवगराक्षसान्।
मोक्षो दत्त पुरा येन स मे त्राता भविष्यति॥
वही, पृ० ४८.

दिखाई है।[1]

रामानुजाचार्य (१०१६-१११७ ई०) यामुन मुनि के प्रशिष्य थे। इन्होंने अपनी जीवन-यात्रा का अधिकांश श्रीसम्प्रदाय के सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना और प्रचार में बिताया। सम्प्रदाय के अन्तर्गत ये अपने नाम-गुणानुसार शेष अथवा लक्ष्मण के अवतार माने जाते हैं और अहर्निश अग्रज की सेवा ही इनकी निष्ठा बताई जाती है। प्रसिद्ध है कि महापूर्ण स्वामी ने इनका दीक्षासंस्कार रामविग्रह के सामने कोदंड राममंदिर (वेंकटाचल निरुपति) में किया था।[3]

वाल्मीकि रामायण में इनकी अत्यधिक निष्ठा थी। उसकी चौबीस आवृत्तियाँ इन्होंने शैलपूर्ण स्वामी से मनोयोगपूर्वक सुनी थी। रामतीर्थों में इनकी भक्ति इसी से जानी जा सकती है कि शैव राजा कृमिकंठ द्वारा आक्रान्त चित्रकूट का इन्होंने उद्धार किया था और अयोध्या का भी दर्शन करने आये थे। प्रपन्नामृत के अनुसार यादवाचल पर इन्होंने स्वयं राम के लीलाविग्रह संपत्कुमार की स्थापना की थी।[8] उसमें इनकी अनुरक्ति इतना दृढ़ हो गयी थी कि आलवारों तथा अन्य पूर्वाचार्यों द्वारा आराधित श्रीरंगदेव को भी ये भूल गये थे। श्रीभाष्य

---

१ ननु प्रसन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्मीति च याचमानः ।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्ज्यं किमिदं व्रतं ते ॥
अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्द प्रपत्प्रकर्षावधिमात्मवन्तम् ।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ॥
आलवन्दारस्तोत्र, पृ० ६७, ६८

२ श्रीरामो भगवान्पूर्वं तत्र ज्येष्ठो भवद्यथा ।
तथैवाभूत्कलियुगे श्रीमांल्लक्ष्मणदेशिकः ॥ प्रपन्नामृत, ४५०

३ सन्निधौ रामचन्द्रस्य कोदण्डशरधारिणः ।
तप्ताभ्यां शङ्खचक्राभ्यां विधिनाङ्कनौ कृपानिधिः ॥ वही, पृ० ३४
यह कोदंडराम मंदिर अब तक विद्यमान है। विशेष विवरण के लिए देखिये—कल्याण तीर्थांक पृ० ३४९

४ वही पृ० १००

५ वही पृ० ८७

६ वही पृ० १०८

७ वही पृ० १५५

८ संपत्सुतस्य जनदृष्टिमनोहरस्य लावण्यसर्पादि निमग्नमना यतीन्द्रः ।
विस्मृत्य रंगपतिमागम भूधरेन्द्रे तस्थौ सुखं विविधवास्यपरपराभिः ॥
वही, पृ० १५६

की रचना इसी स्थान पर हुई थी।[1] 'शरणागति गद्य' में राम के प्रति अभिव्यक्ति मात्र, इनकी अगाध रामभक्ति के द्योतक हैं।[2]

श्री रामानुज की शिष्यपरम्परा में, कुरेश स्वामी के 'पचस्तवी', पराशर भट्टार्य के 'गुण-रत्न कोष', लोकाचार्य के 'श्रीवचनभूषण' और देवराजाचार्य के 'वरवरमुनि शतक' आदि ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों की रामभक्ति का अखंड प्रवाह मिलता है। इनके पीछे भी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य—नृसिंहार्य, ताताचार्य और लक्ष्मीकुमार ताताचार्य रामभक्ति का प्रचार करते रहे। विजयनगर के वीरशैव मतानुयायी राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) को 'पंचसंस्कारों' से भूषित कर रामभक्त बनाने[3] का श्रेय श्री नृसिंहार्य को ही है। प्रपन्नामृत के इस उल्लेख का समर्थन तत्कालीन इतिहास भी करता है। विजयनगर के राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) द्वारा निर्मित 'हजारा राममंदिर' उस प्राचीन नगर के ध्वंसावशेषों के बीच खड़ा आज भी

---

१. वही, पृ० १५०

२ 'अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदार्यैश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे काकुत्स्थ।'
'मा ते भूवत्र संशय अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन, रामो द्विर्नाभिभाषते।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
इति मयैव ह्युक्तम्, अतस्त्वं तत्वतो मज्ज्ञानदर्शनप्राप्तिषु निस्संशय सुखमास्स्व।'' शरणागति गद्य, पृ० ११, १२.

३ नृसिंहार्य इति ख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः।
रामभक्तो विशेषेण नित्यं रामकथाप्रियः॥
विरूपाक्षस्ततो धीमान्वीरशैवमतोऽपि सः।
पुत्रमित्रकलत्रादिसहितश्च स सागरः॥
पंचसंस्कारसम्पन्नो बभूव सुमहायशः।
राजांगुलीये श्रीराममुद्रां दृढतरां व्यधात्॥
श्रीराममुद्रा सर्वत्र तदा प्रभृति विश्रुता॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४८५

४. प्रपन्नामृत, पृ० ४७७

५ The Hazara Ram Temple, most probably the work of Virupaksha II is a more modest but perfectly finished example of this style. The inner walls of the temple are decorated in relief with scenes from the Ramayana
A History of South India
(K. A. Nilkantha Shastri) P. 464

अपने निर्माता की रामभक्ति का साक्ष्य दे रहा है।

प्रपन्नामृत में वर्णित परवर्ती आचार्यों की रामभक्ति सम्बन्धी अनेक कथाओं से यह ज्ञात होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक विकसित होते-होते श्रीसंप्रदाय के भीतर राम की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि आचार्य लोग उनके चरित का गुण-गान ही नहीं करते थे प्रत्युत उनकी विधिवत् पूजा और राममंत्र सहित पंचसंस्कार दीक्षा का भी प्रचार करने लगे थे।

ब्रह्मसंप्रदाय में रामोपासना

श्री मध्वाचार्य (११९९-१३०३ ई०) के ब्रह्मसंप्रदाय में रामभक्ति के सूत्र आरंभ ही से मिलते हैं। उत्तर भारत की दिग्विजय करके बदरिकाश्रम से वे दिग्विजयी राम की एक मूर्ति दक्षिण ले गये थे।[1] प्रसिद्ध है कि अपने शिष्य नरहरितीर्थ से, १२६४ ई० के लगभग, उन्होंने जगन्नाथपुरी से मूल रामसीता की मूर्ति मँगाई थी। संभवतः यही विग्रह उन्होंने अपने अष्ट शिष्यों में से एक को दिया था, जिसकी स्थापना उत्तरादिमठ मैसूर में 'मूलराम' के नाम से हुई थी। इसके अतिरिक्त उडुपी के 'फलेमारमठ' में प्रतिष्ठित रामविग्रह भी मध्वाचार्यप्रदत्त बताया जाता है। काशी में हनुमान घाट पर स्थापित 'मध्वाश्रम', मध्व संप्रदाय की रामभक्ति शाखा की मूल गद्दी—उत्तरादिमठ—से ही सम्बद्ध है।

मध्वाचार्य हनुमान के अवतार कहे जाते हैं।[2] 'मध्व विजय' में रामदूत हनुमान का यशगान किया गया है। सांप्रदायिक परंपरा में, हनुमान की राम-भक्ति सम्बन्धी एक छंद प्रचलित चला आता है, जिसका भाव यह है कि रामार्चन

---

१. वैष्णविज्म शैविज्म (भंडारकर), पृ० ६६

२. माध्व संप्रदाय में मूलराम विग्रह की वंदना का श्लोक नीचे दिया जाता है। इससे उसके प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है—

सीतायुक्तमजादिपूजितपदं श्रीमूलरामं विभुम्।
रामं दिग्विजयाख्यमेवममलं श्रीवंशरामं सुधी॥
व्यासाख्या प्रतिमाः सुदर्शनशिला श्रीविट्ठलाचार्या मुदा।
चक्राकानपि पूजयन् विजयते सत्यप्रमोदो गुरुः॥

३ राममंत्र निज कर्ण सुनावा। परंपरा पुनि तत्व सलावा॥
संप्रदाय विधि मूल प्रधाना। अधिकारी तामहँ हनुमाना॥
मध्व रूप सोई अवतरिया। मत अभेद जिन खंडन करिया॥

नृ० रा० मि०, पृ० ४५।

के लिए साम्प्रदायिक आचार के अनुसार अजलि मे पुष्प धारण करने में जितना प्रयत्न उन्ह करना पडता है, उतना सजीवनी बूटी समेत द्रोणाचल को उठाकर लाने मे भी नही करना पडा था।[1] माध्वमत मे हनुमान के साथ भीम की भी बडी प्रतिष्ठा है। हो सकता है, वायुपुत्र होने से हनुमान के वन्धुत्व के कारण ही उन्हे यह गौरव प्राप्त हुआ हो। उत्तरादिमठ की शाखाओं मे राम और हनुमान के साथ उनकी भी मूर्ति पूजी जाती है।

मध्वाचार्य विरचित 'द्वादश स्तोत्र' मे 'जानकीकान्त राघव' की वदना भाव-पूर्ण शैली मे की गई है।[3] माध्व-सम्प्रदाय मे रामोपासना के ये बीज आगे चल कर रामभक्ति की स्वतत्र परपराओ की स्थापना मे सहायक हुए। १८वी शती के विख्यात रामभक्त निम्बाचार्य 'रामसखे इसी मत के अनुयायी थे। अयोध्या तथा मैहर (मध्य प्रदेश) मे स्थापित गद्दियो की परपरा अब तक चली आती है। माध्वसम्प्रदाय मे रामभक्ति का प्रसार मात्र इसी शाखा द्वारा हुआ, जो उसके विशाल स्वरूप को देखते हुए नगण्य ही कहा जायगा। उसकी मुख्य धारा कृष्ण-भक्ति को लेकर चला, गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय अथवा चैतन्यमत भारतीय धर्म-साधना मे उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन है।

रामायत संप्रदाय की स्थापना

रामानुजाचार्य की परपरा के चारहवे आचार्य हर्यानन्द स्वामी के समय तक श्रीसम्प्रदाय के अन्तर्गत रामभक्ति का प्रचार दक्षिण भारत मे होता रहा। उत्तरी भारत मे रामगगा के भगीरथ बने स्वामी राघवानन्द। ये स्वामी हर्यानन्द के शिष्य थे, जिनका आविर्भाव आचार्य रामानुज की परपरा मे बारहवी[4] पीढ़ी मे हुआ था।

---

१. रामार्चने यो नयत. प्रसून द्वाभ्यां कराभ्यामभवत्प्रयत्न ।
एकेन दोष्णा नयतो गिरीन्द्र सजीवनाद्याश्रयमस्य नाभूत् ॥

२. प्रथमो हनुमन्नाम द्वितीयो भीम एव च ।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधक ॥

३. 'राघव राघव राक्षसशत्रो मारुतिवल्लभ जानकीकान्त'—द्वादशस्तोत्र (मध्वाचार्य), पृ० ६,४

४. रामानुजाचार्य—गोविन्दाचार्य—भट्टार्क स्वामी—वेदान्ताचार्य—कलिजित-स्वामी—कृष्णाचार्य—लोकाचार्य—शैलेशस्वामी—वरवरमुनि—देवाचार्य—पुरुषोत्तमाचार्य—हर्याचार्य—राघवानद। गलता गद्दी (जयपुर) की आचार्य

नाभादास के अनुवर्ती राघवदास ने स्वरचित भक्तमाल मे इस परपरा के विशिष्ट आचार्यों का परिचय देते हुए लिखा है—

इम रामानुज के पाटि, पटेतर देवाचारिय।
देवाचारिय के दिष्यो, हस हरियानद आरिय।
हरियानद करि हेत, राघवानद निवाजे।
ताकै रामानद महत, महिपुर मैं बाजे॥
अब राघौ रामानद के है, अनतानद मिप बडो।
येकादस सिप ओर है, आदि पधित अनुक्रम पढो॥[1]

स्वामी हर्यानद रामोपासक थे। उन्ही के आदेश से रामभक्ति का प्रचार करने के लिए राघवानद ने आचार्यपीठ से विदा लेकर उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया था। वहाँ पहुँचकर इन्होंने अयोध्या, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए स्थिति का अध्ययन किया और रामोपासना के प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। इसक पश्चात् दक्षिण को लौट गये। आचार्य पीठ मे पहुँचने पर इन्हे गुरु के देहावसान का समाचार मिला। गद्दी पर गुरुभाई को बैठे देख उनसे बडे प्रेम से मिले। यही इनकी माता भी रहती थी। उनका चरण-वदन किया। मदिर मे जब 'पगत' का समय आया तो वहाँ के कर्मचारियो ने इनका आसन पक्ति से अलग लगाया। जिसका कारण यह था कि राघवानन्द जी आचार-व्यवहार मे वैष्णवमात्र मे भेद नही रखते थे। उनका यह सिद्धान्त श्री वैष्णवो की उस गद्दी की सदाचार-परपरा के विरुद्ध पडता था। गुरुभाइयो के इस व्यवहार से खिन्न हो वे काशी चले आये और फिर आजन्म यही रह कर रामभक्ति का प्रचार करते रहे। पचगगा घाट पर इनकी मढी के अवशेष आज भी पाये जाते है। 'हरिभक्त रसामृत सिंधुवेला' नामक ग्रन्थ मे अनतस्वामी ने भी राघवानद के दक्षिण से आकर उत्तर भारत मे राममत्र प्रचार करने की चर्चा की है। इनकी

परपरा यही है। भक्तमाल मे दी गई परपरा से इसमें भिन्नता केवल ११वें आचार्य के नाम मे पाई जाती है। भक्तमाल के अनुसार हर्याचार्य देवाचार्य जी के शिष्य थे, किन्तु इससे वे पुरुषोत्तमाचार्य के शिष्य ठहरते हैं।

१. राघवदासकृत भक्तमाल, पृ० ५१

२. गद्दी पै अपर गुरु भाई को बैठे विलोकि,
करिकै प्रणाम मिले परस्पर धाइकै।
माता तहँ आई ताके पद सिर नाइ,
पाई सुखद असीस लह्यो आनद अधाइकै।
मदिर मे तीरथ लै पगति मे आये जब,
सदाचार रीति ते बैठारे बिलगाइ कै।

'सिद्धान्त पचतन्मात्रा'? नामक रचना इधर खोज मे मिली है। उससे ज्ञात होता है कि ये योगपरक-सगुण-रामभक्ति के प्रतिपादक थे। अतः इष्टदेव की पूजा मे आरती, अर्घ्य, चरणामृत आदि बाह्य उपचारो की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी आतरिक श्रद्धा को अधिक महत्त्व देते थे। प्रसिद्ध है कि काशी मे इन्होंने शाकरमतानुयायी, प्रयागनिवासी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण रामदत्त अथवा रामभारती[३] को राममन्त्र की दीक्षा दी। यही आगे चलकर रामानद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी रामानंद

स्वामी रामानद रामोपासना के इतिहास मे एक युग-प्रवर्तक आचार्य हैं। उसे एक सगठित तथा स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप देना इन्ही का काम था। इनके पूर्व श्रीसम्प्रदाय मे श्रीराम की प्रतिष्ठा होते हुए भी प्रधानता लक्ष्मीनारायण को ही दी जाती थी। आरभिक आचार्यों की दृष्टि मे दोनो समान रूप से पूज्य थे, किन्तु सम्प्रदाय के प्रसार के साथ उसकी कुछ शाखाओ मे भेदपूर्ण व्यवहार होने लगा था। इसके साथ ही वैष्णवाचार के निर्वाह की भी समस्या थी। श्रीसम्प्रदाय के भीतर रामभक्तो का वर्ग अपने सहधर्मी अन्य वैष्णवो की अपेक्षा आचार-व्यवहार मे अधिक उदारता का समर्थक था। स्वामी राघवानन्द को इसी कारण आचार्य पीठ से बहिष्कृत होने का दड मिला था। दोनो वर्गों मे कटुता का एक और कारण उपस्थित हो गया था। वह था रामभक्तो की विचारधारा पर नाथ पन्थ का प्रभाव। राघवानन्द जी की 'सिद्धान्त पचतन्मात्रा' मे उसकी पूरी छाप दिखाई देती है। 'सदाचार'-परायण तथा भक्तिप्रधान वैष्णवसम्प्रदाय से सामाजिक एव व्यक्तिगत आचार को अपेक्षाकृत गौण स्थान देने वाली इस ज्ञानमार्गी शैव साधना का परपरागत विरोध था। इस प्रकार के मौलिक मतभेदो के कारण अपनी मातृ-भूमि, द्रविड़ देश मे विकास की सम्भावना न देखकर, रामोपासना, आचार्य पीठ से से विदा हो, राघवानन्द के साथ उत्तर भारत आई थी। रामानन्द के हाथो वह सर्वांग समृद्ध बनी।

देखि अभिमान उर योग बलआन कहो,
करो शुद्ध वापी जल मधुर बनाइकें॥ र० प्र० भ०, पृ० ११.

१. वदे श्रीराघवाचार्यं रामानुजकुलोद्भवम्।
याम्यादुत्तरमागत्य राममंत्र प्रचारकम्॥
योगप्रवाह, प्रथम स० २००३, पृ० २२ (पाद टिप्पणी) मे उद्धृत।

२. र० प्र० भ०, पृ० १२.

३. श्रीमद्रामानंद दिग्विजय, भूमिका, पृ० २३.

सैद्धांतिक विशेषतायें

स्वामी रामानन्द ने श्रीसम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपत्तिसिद्धान्त का आधार लेकर रामायत सम्प्रदाय का सगठन किया । इसमे उन्होंने कुछ नये विचार रखे, जो पुराने मत के विरुद्ध पडने हुए भी सामयिक परिस्थिति के अनुकूल तथा लोकोपयोगी थे । इसकी प्रेरणा उन्हे राघवानन्द जी से मिली थी, इसमे सदेह नही । उन्होंने श्रीवैष्णवो के नारायणमत्र के स्थान पर रामतारक अथवा पडक्षर राममत्र को साप्रदायिक दीक्षा का बीज मत्र माना, बाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना मे आन्तरिक भाव की शुद्धता पर जोर दिया, जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भाव मिटा कर वैष्णव मात्र म समता का समर्थन किया, नवधा से परा और प्रेमासक्ति को श्रेयस्कर बताया और साप्रदायिक सिद्धान्तो के प्रचार मे परपरापोषित सस्कृत भाषा की अपेक्षा हिन्दी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी । एक आचार्य होने के नाते साप्रदायिक विचारो के निरूपण मे उन्होंने जहाँ एक ओर प्राचीन पद्धति का सत्कार कर 'वैष्णवमताब्जभास्कर' और 'रामार्चनपद्धति की रचना सस्कृत म की, वही दूसरी ओर रामरक्षास्तोत्र, सिद्धान्त पटल, ज्ञान-लीला, ज्ञान-तिलक, और योगचिंतामणि आदि हिन्दी रचनाओ में तत्कालीन आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितिया से उत्पन्न नवीन आस्थाओ और विचारो को भी स्थान दिया । शैव तथा शाक्त पथियो के प्रभाव से समाज म तत्र, मत्र, कीलक-कवचादि तात्रिक उपासना के अगो के प्रति लोगो का आकर्षण देख उन्होंने रामोपासना मे भी उसकी व्यवस्था की । रामरक्षा की रचना इसी उद्देश्य से हुई थी । इसी प्रकार नाथपथी उपासको क आदर्श पर सन्त जीवन के प्रत्येक कृत्य के लिए उन्होने पृथक्-पृथक् मत्रो की रचना कर सिद्धान्त पटल का निर्माण किया था । उनके ग्रन्थो की प्रामाणिकता मे बहुतो को सदेह है । तो भी इतना तो निश्चित ही है कि रामानन्द ने जनवाणी का सत्कार करते हुए सस्कृत तथा हिन्दी (तत्कालीन लोकभाषा) दोनो भाषाओ मे अपने विचारो का प्रकाशन किया था ।

यह सब केवल इस उद्देश्य से किया गया कि रामोपासना युगधर्म के अनुकूल बने और पथो के दलदल मे फँसी हुई जनता का उद्धार करके उन्हे उचित मार्ग प्रदर्शन कर सके ।

सांप्रदायिक सगठन

साप्रदायिक सिद्धातो के प्रवर्तन के पश्चात् उनके प्रचार की समस्या सामने आई । स्वामी रामानंद ने इसे जितनी सफलता के साथ हल किया उससे उनकी

अद्भुत सगठन शक्ति का परिचय मिलता है। इस्लामी शासन के आतंक से त्रस्त उत्तरी भारत के प्रमुख तीर्थों मे, उन्होने अपने केंद्र स्थापित किये। इस नवीन सप्रदाय के अनुयायी वैरागी कहलाये। ये तीर्थों मे जम कर रामभक्ति का प्रचार करने लगे। इससे यवन शासको की असहिष्णुता से प्रोत्साहित मुसलमानो द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये जाने से तीर्थों की रक्षा हुई। इसके साथ ही बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओ को रामतारक मन्त्र की दीक्षा देकर पुन. हिन्दू बनाने का क्रम भी चलाया गया।[1]

भविष्यपुराण में अयोध्या मे आये दिन घटने वाली इस प्रकार की घटनाओ का उल्लेख मिलता है—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानदप्रभावत.।
सयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्याया बभूविरे ॥
कठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।
भाले त्रिपुड चिह्न च श्वेतरक्त तदाभवत् ॥
भविष्य पुराण, ३/४/२१.

व्यक्तित्व की व्यापकता

स्वामी रामानद के द्वारा की गई देश और धर्म के प्रति इन अमूल्य सेवाओ

---

१. 'रामानंद की हिन्दी रचनायें' के विद्वान् संपादक डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का इस सम्बन्ध मे कहना है "हिन्दू धर्म से बिछुड़े हुए पूर्वजों को स्वामी रामानन्द ने फिर से हिन्दूधर्म की गोद मे स्थान दिया था। इसी प्रकार संयोगियों को जिन्हें फैजाबाद के नवाब ने बल से मुसलमान बना लिया था, उन्होंने हिन्दू बनाया' (रा० हि० र०, पृ० ३०)। यह विचारणीय है कि नवाब वंश के प्रथम सूबेदार सआदत खाँ बुर्हानउल मुल्क की अवध मे नियुक्ति १७३२ ई० मे मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने की थी और वह अयोध्या मे किला मुबारक (वर्तमान लक्ष्मण किला) नामक स्थान पर रहता था। उसके उत्तराधिकारी दूसरे नवाब शासक, अब्दुल मंसूरअली खाँ सफदर जग (१७३९-१७५४ ई०) ने, फैजाबाद को नगर का रूप देकर, उसे अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार रामानन्द जी के समय (१४१० से १५१० ई० अथवा १३५६-१४९२ ई०) और फैजाबाद मे नवाबी शासन के स्थापना काल मे ३०० से अधिक वर्षों का अंतर पड़ जाता है। अतएव डा० बड़थ्वाल का उक्त मत ग्राह्य नहीं है। हो सकता है अयोध्या के नवाब से उनका तात्पर्य वहाँ के मुसलमान सूबेदार से रहा हो।

ने सभी संप्रदायों के वैष्णवों के हृदय में उनका महत्व स्थापित कर दिया। भारत के सांप्रदायिक इतिहास में परस्पर विरोधी सिद्धांतों तथा साधना-पद्धतियों के अनुयायियों के बीच इतनी लोकप्रियता उनसे पूर्व किसी संप्रदाय-प्रवर्तक को प्राप्त न हो सकी थी। महाराष्ट्र में नाथपंथियों ने ज्ञानदेव के पिता विट्ठल पंत के गुरु रूप में उन्हें पूजा, अद्वैत मतावलम्बियों ने ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी के रूप में उन्हें अपनाया, वारकरीपंथ के संतों ने अपने संप्रदाय का प्रवर्तक मानकर उनकी वंदना की और कबीर के गुरु तो वे थे ही, इसलिए कबीरपंथियों में उनका आदर स्वाभाविक है। स्वामी रामानंद के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य, उनकी उदार एवं सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयवादी विचारधारा में निहित है, जिसकी प्रेरणा से सभी जातियों और वर्गों के जिज्ञासुओं को शरण में लेकर उन्होंने प्रकाशमय पथ पर अग्रसर किया था। हिन्दू-मुसलमान दोनों दीन के सत उनके उपदेशों से कृतकृत्य हुए। उपासना की सगुण और निर्गुण दोनों पद्धतियों को उनसे विकास की प्रेरणा मिली। उनके बारह प्रधान शिष्यों में इन दोनों प्रणालियों के प्रचारक संतों में प्रमुख थे—अनन्तानंद और कबीर। इनमें प्रथम से सगुण और द्वितीय से निर्गुण धारा का प्रसार हुआ। भारतीय संस्कृति की रक्षा और विकास में उक्त दोनों संप्रदायों का कितना योग है, यह किसी से छिपा नहीं है। अतः यदि उनके जन्मदाता की तुलना 'नाभादास' ने सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधि राम[1] से कर दी हो तो अत्युक्ति नहीं कही जा सकती।

रामभक्ति का प्रसार और रसिक साधना का सूत्रपात

इसी रामानंदीय वैष्णवपरंपरा में तुलसी का आविर्भाव हुआ। वे अनन्तानन्द जी के प्रशिष्य और नरहरिदास अथवा नरहर्यानन्द के शिष्य थे। यदि रामावत संप्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय स्वामी रामानंद को है तो जन-जन तक उनका संदेश पहुँचा कर लोकमानस में रामभक्ति की प्रतिष्ठा और रामचरित के प्रति श्रद्धा का भाव जागरित करना तुलसी का ही काम था। उनके 'मानस' से जो रसलहरी उठी उससे शताब्दियों के राजनीतिक उत्पीड़न, सामाजिक अनाचार और आर्थिक अव्यवस्था से संतप्त राष्ट्रहृदय तृप्त हो गया।

गोस्वामी जी ने रामचरित के जिस स्वरूप की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों

---

१. बहुत काल वपु धारिकै प्रणत जनन को पार दियो।
श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥
भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० २२८.

में की, वह ऐश्वर्य प्रधान है। उनके राम लोकमर्यादा के रक्षक, लोकविरोधी तत्त्वो के उन्मूलक और लोकधर्म के सस्थापक हैं। किन्तु तुलसी की समकालीन रामकाव्य-धारा मे रामोपासना के एक दूसरे पक्ष के अस्तित्व के भी चिह्न मिलते हैं, जिसका दर्शन स्वय तुलसी की कृतियो मे भी यत्र-तत्र हो जाता है—वह है रामायत सम्प्रदाय मे माधुर्यभक्ति का उत्कर्ष। रामोपासना की इस पद्धति का प्रचार भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष तक सीमित था। सिद्धान्तो की गोपनीयता के कारण उसका उपदेश केवल अतरग और दीक्षित साधको को ही दिया जाता था। अतएव उसका सारा साहित्य आचार्यपीठो के बस्तों मे बँधा, अप्रकाशित और अविवेचित ही पडा रहा। उधर तुलसीसाहित्य के प्रचार मे रामचरित के ऐश्वर्य प्रधान अथवा शुक्लजी के शब्दो मे 'शील, शक्ति, सौन्दर्य समन्वित रूप की प्रतिष्ठा लोकव्यापक हो गई। उसके आधार पर जनसाधारण क्या, साहित्य की गति-विधि से परिचित विद्वानो तक की यह धारणा बन गयी कि रामकाव्य का परपरागत स्रोत एकमात्र मर्यादाबद्ध अथवा ऐश्वर्यपरक भक्ति को ही लेकर चला है। माधुर्यविषयक जो रचनाएँ उसमे यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं वे अत्यन्त अर्वाचीन, अश्लील और अमर्यादित हैं।

परन्तु अनुसधान, स्थिति का एक दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। इधर इस माधुर्यधारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उससे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती रामोपासना इसी से ओत-प्रोत थी। वास्तव मे इस पद्धति के साधक कवियो की सख्या इतनी अधिक है कि तुलसी अपने समकालीन भक्ति क्षेत्र मे प्रस्तुत शृगारी रामभक्ति के एक अपवाद से प्रतीत होते हैं। यह दूसरी बात है कि इस सम्प्रदाय मे इतनी प्रखर प्रतिभा का कोई कवि अवतरित नही हुआ, जो सूर और मीरा की तरह जनसामान्य को भी इस दिव्यरस का आस्वादन करा सकता।

'युगल सरकार श्री सीताराम' की मधुर लीलाओ के ध्याता और गायक, ये सत 'रसिक' अथवा 'भाविक'[1] नाम से जाने जाते हैं। इस वर्ग के भक्तो की अपनी एक अलग साधना-पद्धति है और पृथक् भक्तमाल भी। परिमाण की दृष्टि से सपूर्ण

— —

१. दपति मधुर छवि छाके सख्य भाव बाँके,
श्रीमन्नृत्यराघव की कला भरे गात हैं।
भाविक सभा मे गुण आगर रसिक प्रेम,
सागर समान प्रेम सागर लखात हैं।

र० प्र० म०, पृ० ४८.

रामभक्तिसाहित्य का दो-तिहाई से अधिक भाग रसिक भक्तों द्वारा ही विरचित मिलता है और प्राचीनता के विचार से, साम्प्रदायिक विश्वासों के अनुसार, यह कम से कम उतनी ही पुरानी है, जितनी तुलसी की ऐश्वर्यप्रधान भक्तिपद्धति। इसके विकाससूत्रों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कालविशेष में किन्ही कारणों से इसका प्रवाह क्षीण भले ही पड़ गया हो, किन्तु स्रोत कभी सूखता नहीं दिखाई दिया।

रामोपासना की ये दोनों धाराएँ आज भी समानान्तर बह रही हैं। इनकी गद्दियाँ भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापित हैं। रामभक्ति के माध्यम से इनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी का अहिन्दीभाषी प्रदेशों में प्रचार तो होता ही है, प्रकारान्तर से भावात्मक एकता की स्थापना का भी पथ प्रशस्त हो रहा है। इस दृष्टि से रामभक्ति का आध्यात्मिक महत्त्व के साथ परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा में भी विशिष्ट अवदान है।

नाथयोग और रामभक्तिधारा

महायोगी गोरखनाथ भारतीय अध्यात्मसाधना के ज्योतिस्तंभ थे। उनकी आचार एवं विचार परंपरा से सारा मध्यकालीन साहित्य ओतप्रोत है। क्या निर्गुण और क्या सगुण दोनो भक्तिधाराएँ उनकी योग-साधना से प्रभावित हुईं और विषय तथा शैली दोनो क्षेत्रो में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर समृद्ध हुईं। कबीर और जायसी ने नाथसाहित्य एवं नाथपंथी साधको से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी, यह उनके दार्शनिक विचारो एवं साधनाप्रणाली से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु सगुण भक्ति साहित्य मे यह प्रभाव प्रतिक्रिया के माध्यम से परोक्षरूपेण अभिव्यक्त हुआ। भ्रमरगीत की रचना करते समय सूरदास के मानसनेत्रों के समक्ष अवश्य ही नाथपंथी योग-साधक रहे है। गोस्वामी तुलसीदास को तो नाथयोग का बढता हुआ प्रभाव देखकर लोकमानस से भक्तिभावना के सर्वथा लुप्त हो जाने की आशका हो चली थी। यह उनके निम्नांकित उद्‌गार से प्रकट होता है—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग सो सो केलि ही छरो सो है॥

किन्तु इससे यह भ्रम न होना चाहिए कि रामभक्तिधारा का योगप्रक्रिया से कोई प्रकृत विरोध था। वैष्णवधर्म के प्रधान उपजीव्य ग्रंथ भागवत मे योग की शारीरिक क्रियाओ को वैधी भक्ति मे और मानसिक प्रक्रियाओ को ध्यान मे पर्यवसित करके भक्तिसाधना मे योगपद्धति की महत्ता स्वीकृत की गई थी। नवधा के पश्चात् दशधा अथवा प्रेमाभक्ति की साधना आराध्य की रसमयी लीलाओं के ध्यान द्वारा ही होती थी। ऐसी स्थिति मे नाथयोग का प्रकट रूप मे विरोध करते हुए भी परोक्ष रूप मे उसके सिद्धातो का अनुसरण करने से वैष्णव भक्त, चाहे वे रामभक्त हों या कृष्णभक्त, अपने को रोक नही सके। इस नये सदर्भ मे योग उपासक-उपास्य के सम्बन्धस्थापना का सर्वोत्कृष्ट साधन बन गया।

रामभक्तिसाधना मे योगधारा का अजस्र प्रवाह स्वामी राघवानन्द के समय से मिलता है। उनके शिष्य रामानन्द तथा प्रशिष्य स्वामी अनन्तानन्द से इस भावना के प्रसार मे विशेष बल मिला। किन्तु वह पराकाष्ठा को पहुँची श्री कृष्णदास पयहारी की अलौकिक सिद्धियों के प्रकाश से। पयहारीजी की 'राजयोग'

नामक एकमात्र रचना प्राप्य है। इनकी मुख्य साधना-भूमि गलता और पुष्कर थी। नाभादास कृत भक्तमाल प्रियादास कृत उसकी टीका और रसिक-प्रकाश भक्तमाल मे इनकी सिद्धियो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन्होने जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के शासनकाल मे तारानाथ योगी को पराजित करके जयपुर दरबार मे राजगुरु का पद प्राप्त किया था।

महायोग के चार सोपानो—मत्र-योग, हठयोग, लययोग और राजयोग मे अन्तिम होने से राजयोग योगसाधना की परमोत्कृष्टावस्था है। राजयोग का साधक कुडलिनी शक्ति के जागरण द्वारा षट्चक्रभेदन कर अनाहतनाद का रसास्वादन करता हुआ ब्रह्मजीव की एकता का रहस्यज्ञान प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। पयहारी जी ने मुक्ति के लोकप्रचलित चार भेदो सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से परे पाँचवी मुक्ति 'ध्यानलीन दशा' की कल्पना की है और इस पथ के साधक की उसमे स्थिति बताई है। कबीर, दादू आदि निर्गुण भक्तो की भाँति उन्होने भी 'अनहदनाद' को रामनाम की अखड ध्वनि का पर्याय माना है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ निर्गुणमार्गी भक्त नाथपथियो के आदर्श पर मात्र ज्योति का दर्शन करता है वहाँ पयहारी जी उसके अतर्गत अपने आराध्ययुगल 'सीताराम' का भी दर्शन करते है—

आगे सुपताका उडत देखि। तहँ सेत छत्र छाया सुपेखि।
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि। चहुँ दिसि प्रकास नहिं बरन घूमि।
को बरनि सकत प्रभु को सरूप। रवि कोटि चद छवि ते अनूप॥
नभ नील मेघ द्युति स्याम गात। लखि पीत बसन विद्युत लजात।
इमि बसत राम निज सहित बाम। सब सत कहत जेहि परमधाम॥

पयहारी जी का अनुभव था कि इस स्थिति को प्राप्त करने से सारे भवबधन छूट जाते हैं। यही योग की परम उपलब्धि है—

तहँ गए मिटत है जन्म मरण। तेहि हेत जोग जेहि रामशरण॥[1]

'राजयोग' मे अपने शिष्य अग्रदास का वे इस योगसाधना का उपदेश देते हुए लिखते हैं—

प्राणहि अपान दृढ गाधि डोरि। कुडलिनि आव सम युक्ति जोरि।
तब चलत पवन जहँ ब्रह्मरध्र। तहँ छोडि जाहिं सब त्रिगुण बध॥
उलटे सु इला-पिंगला नारि। सुषुमना सुद्ध लीजे बिचारि।
पहुँचे सो जबै अनहद गेह। राखै सुएक हरि सो सनेह॥[2]

---

१. राजयोग छ० २५-२. २ वही, छ० ५-८.

आठ पहर चौसठि घरी । ररकार घहराय ।
सकल मोह दावा मिटै तब नाना ठहराय ।।[1]

यह सर्वविदित है कि गोरखनाथ जी अवतारवाद के विरोधी थे, अत. दशरथ-पुत्र राम के प्रति उनकी अनास्था स्वाभाविक थी—

दस औतार औतिरीया तिरिया, वै पणि राम न होई
कमाई अपनी उनहूँ पाई करता औरै कोई ।।[2]

किन्तु परम्परा से ब्रह्मरूप में सूर्यवंशी महाराज रामचन्द्र को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, उसकी मूक स्वीकृति 'गोरखबानी' के निम्नांकित छंद मे मिलती है । इतना ही नही पयहारी जी ने रामभक्ति की प्राप्ति के लिए योग-साधना की जिस प्रक्रिया की व्याख्या 'राजयोग' की उपर्युक्त पंक्तियो म की है, वह अविकल रूप से नाथयोग मे मिल जाती है—

मन रे राजा राम होइले नृदद ।।
मूलै कमले राजि ले रविचंद ।।
अनहृद भौंरो भँवै तृवेणी के घाट ।
पीयलै महारस फाटिलै कपाट ।।
चंदा करिले पूटा सूरज करिलै पाट ।
नित उठि धोबी धोवै, तृवेणी के घाट ।।
भरिलै नाडी पोडी, पूरिलै वंक नालि ।
बदत गोरषनाथ अवधू, इम उतरिबौ पार ।।

पयहारी जी के शिष्यो ने रामभक्ति शाखा मे इस योगमूलक सगुण-निर्गुण मिश्रित साधना का प्रचार किया । उनके पट्ट शिष्य कील्हदास इसके मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं ।[4] प्रसिद्ध है कि इनकी ध्यान-समाधि इतनी उच्चकोटि की होती थी

---

१ राजयोग : छं० २८. २. गोरखबानी : पृ ५४ ३. वही, पृ० ५५.

४. गागेय मृत्यु गञ्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहि काल बस ।।
रामचरण चितवनि रहति निसिदिन लौ लागी ।
सर्वभूत सिर नमित सूर भजनानन्द भागी ।।
सांख्ययोग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल ।
ब्रह्मरध्र करि गौन भए हरितन करनो बल ।।
सुमेरदेव सुत जग विदित, भू विस्तार्यो विमल जस ।
गागेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहि काल बस ।।
भक्तमाल (रूपकला) पृ० ३१५.

कि इस स्थिति मे ये सर्वथा बाह्यज्ञान शून्य हो जाते थे। इनकी परम्परा के अवधूतवेष धारण करने वाले लाखो विचरणशील एव स्थानधारी रामभक्त महात्मा आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशो मे पाये जाते हैं। नाथपथी अवधूतो से इनका पार्थक्य केवल तिलक की भिन्नता मे जाना जाता है। इस परम्परा से सम्बद्ध अवधूतसत मूँज की करधनी, अधारी, विशाल जटाएँ, वस्त्र के नाम पर मात्र केले के सूखे पत्ते, टाट अथवा छ अगुल चौडे कपडे की लगोटी धारण करते हैं। रामोपासना की यह योगाश्रयी शाखा गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी लोकसग्रही पद्धति से सर्वथा भिन्न ऐकातिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिसम हठयोग द्वारा शरीर और प्राण को वश मे करने के अनन्तर ब्रह्मजीव की एकात्म्यता का सम्पादन होता है। यही इनकी निर्विकल्प समाधि है। इस शाखा के साहित्य मे गोरखपथ और नाथयोग के सिद्धान्तो की न तो कही निंदा मिलती है और न उन्हे रामभक्ति के विकास मे बाधक ही माना गया है। रामभक्ति-धारा के प्रसार मे इसका विशेष योगदान रहा है। इसके विशाल साहित्य के अन्वेषण-परीक्षण से निश्चय ही मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य के अनुशीलन मे एक नई दिशा मिलेगी।

श्री कृष्णदास पयहारी की योगमूला भक्ति

श्री कृष्णदास पयहारी स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य और अनन्तानन्द के शिष्य थे। रामानदीय सम्प्रदाय का वर्तमान व्यापक रूप बहुत अश मे इन्ही की देन है।[1] वास्तव मे सम्प्रदाय प्रवर्तक के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये जिन चारित्रिक गुणो की अपेक्षा की थी, कृष्णदास के प्रभावशाली व्यक्तित्व मे वे पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान थे। उनके प्रशिष्य नाभादास के निम्नाकित शब्द इसके साक्षी हैं।[2]

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्‌ड्यो।
अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय कर छड्‌ड्यो॥
तेज पुज वल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरन सरोज राव-नाना भुवि जेता॥
दाहिमा वश दिनकर उदय, सत कमल हिय सुख दयो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन्न परिहरि पय पान कियो॥

ये राजस्थान के निवासी दाधीच्य ब्राह्मण थे। इनका गुरुप्रदत्त नाम कृष्णदास था। दीक्षा के अनन्तर योगसाधना मे प्रवृत्त होने पर इन्होंने अन्न त्याग कर केवल दुग्धपान का व्रत ले लिया था इसलिये तत्कालीन सतसमाज मे 'पयहारी' नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी मुख्य साधनाभूमि गलता थी।[3] भक्तमाल मे इनकी सिद्धियो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक बार इन्होने अतिथि रूप मे आए हुए सिंह की अभ्यर्थना अपना मास अर्पित करके की थी और इस प्रकार कलियुग में परोपकारी महर्षि दधीचि के आदर्श की स्थापना की थी। प्रियादास

---

१. रामभक्तों के ३७ द्वारों मे से २० द्वारे श्री कृष्णदास पयहारी की ही परम्परा के हैं। इनकी शताधिक शाखा-प्रशाखाएं देश के विभिन्न भागो मे फैली हुई हैं।

२. श्री भक्तमाल (भक्ति रसायनी व्याख्या-वृन्दावन)—पृ० २६५।

३. जयपुर नगर के पूर्वी भाग में सूरजपोल से गलता को मार्ग जाता है। यह स्थान वहां से थोड़ी दूरी पर पहाड़ी में स्थित है। पयहारी जी की गद्दी और धूनी का दर्शन करने प्रति वर्ष हजारों यात्री यहां आते हैं। इस आचार्य पीठ की परंपरा अब तक अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

४. गलते गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीच पाछे दूजो करी, कृष्णदास कलि रीति॥

ने अपनी टीका मे पयहारी जी की सिद्धाई के दो और उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—एक है कुल्लू (पजाब) क राजपुत्र की प्राण रक्षा कर उसे अपना कृपापात्र बनाना और दूसरा है एक स्त्री के गर्भस्थ बालक के विषय म सत्य भविष्यवाणी करना कि वह महान् सत होगा।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवाराम 'युगलप्रिया' ने गलता के अतिरिक्त पयहारी जी की एक दूसरी तपोभूमि पुष्कर का भी उल्लेख किया है और उन्हें माधुर्यभाव का रामोपासक कहा है।[5] उस ग्रथ के टीकाकार वासुदेव-दास से इनकी साधना क विषय मे कुछ अधिक विवरण दिए हैं। उनके अनुसार अनन्तानन्द से मत्रदीक्षा लेकर पयहारी जी तीर्थयात्रा को चले गए। लौटने पर उन्हे गुरु के देहावसान का समाचार मिला। गुरुपीठ म ही ठहर कर उन्होंने एक विशाल भडारा किया। इसक पश्चात् वे पुष्कर चले गए और वहाँ १४ वर्ष तक घोर तपस्या की। इस अनुष्ठान म छ वर्ष क भीतर ही उन्ह आराध्य युगल श्री सीताराम ने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार पुष्कर मे योग सिद्धि प्राप्त करके वे गलता लौट आये और वहाँ की रम्य प्राकृतिक शोभा से आकृष्ट होकर कुछ दिन ठहर गए। इस बीच आमेर नरेश पृथ्वीराज (सिंहासनारोहणकाल फाल्गुन कृष्ण ५ स० १५५६) का दीवान विद्याधर उनक

कृष्णदास कलि जीति न्योति नाहर पल वीयो।
अतिथि धर्म प्रतिपालि प्रगट जस जग मे लीयो॥
उदासीनता (की) अवधि, कनक कामिनी नहि रातो।
रामचरण मकरद रहत निसिदिन मदमातो॥
श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ०, ६१४.

५. कृपा अनतानद रसिक पूरन पयहारी।
कृष्णदास रसरीति उपासक सियव्रतधारी॥
पुष्कर छाया भजनभूमि प्रगटी सिय प्यारी।
पूर्व सूचिका धरी कथा प्रिय लेहु सुधारी॥
जिमि उलूक अरु काग रति, नित्य रास रस रूप गति।
आचारज शृङ्गार पथ, शिष्य अग्र से विमल मति॥
रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३

६ तारक जुगुल मत्रराज जप ठान्यो व्रत द्वादश जुगुल वर्ष हर्ष उर छाय कै॥
छठए बरस दिव्य दपति दरस पाय उठि हरषाय दडवत कीनी भाय कै॥
र० प्र० भ०, पृ० १३.

दर्शनार्थ आया। वह इनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने लौटकर महाराज को एक तपोनिष्ठ महात्मा के आने का समाचार सुनाया।

उन दिनो आमेर के राजगुरु नाथपथी योगी तारानाथ थे। उन्हें भी अपने अनुयायियो से यह सूचना मिली। वे तत्काल ही कुछ योगियो को साथ लेकर पयहारी जी के पास गये और उनसे गलता छोडकर अन्यत्र चले जाने का अनुरोध किया। कृष्णदास जी ने केवल एक रात ठहरने की अनुमति चाही, किन्तु वे न माने। शारीरिक बल प्रयोग करके इन्हे हटाने की इच्छा रखते हुए भी वे साहस न कर सके। अतः अपनी परम्परानुसार यन्त्र-मन्त्र तथा कृत्या द्वारा इन्हे विचलित करने का प्रयत्न किया। इन पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। उलटे विरोधी ही उसके शिकार बने। योगियो ने क्रुद्ध होकर, जिस स्थान पर पयहारी जी बैठे थे, उसके ऊपर की एक चट्टान लुढका दी जिससे इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय। किन्तु कृष्णदास जी अपने अद्भुत योगबल से उसे बीच मे ही रोक दिया। अन्त मे योगी तारानाथ सिंह बनकर गरजता हुआ सामने आया। पयहारी जी ने कमण्डल का जल अभिमन्त्रित करके उसके ऊपर फेका जिससे वह गदहा हो गया। इतना ही नही इनकी अलौकिक सिद्धि के प्रताप से सभी स्थानीय योगियो की कर्ण मुद्राएँ निकल कर उनके सामने एकत्र हो गईं। प्रातःकाल जब आमेर नरेश गुरु का दर्शन करने गए तो उन्हे मुद्राहीन देखकर बडे आश्चर्य मे पड गए। कारण पूछने पर गुरु तो लज्जावश कुछ न बोले परन्तु दीवान ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज पृथ्वीराज ने पयहारी जी की सेवा मे गुरु सहित उपस्थित होकर क्षमा याचना की। अन्य योगी भी आकर उनके चरणो पर पडे। पयहारी जी ने उन्हे क्षमा कर दिया। गदहा बने हुए नाथपथियो को अपना पूर्वरूप मिल गया। कर्ण मुद्राएँ भी सबको पूर्ववत् प्राप्त हो गईं। पयहारी जी ने उनसे गलता छोडकर किसी दूसरे स्थान पर अड्डा बनाने को कहा साथ ही उन्हे दड के रूप में नित्य पाँच बोझ लकडी धूनी के लिये पहुँचाने का आदेश दिया। कहा जाता है कि इसके पश्चात् योगियो की इष्टदेवी भी आई और कृष्णदास जी की शिष्या हो गईं। पृथ्वीराज ने तारानाथ से नाता तोडकर पयहारी जी का शिष्यत्व ग्रहण किया।

---

१ राज गुरु सेवरा ने सुनि एक सिद्ध आये देखि घबराए तेज कह्यो कहा कीजिए ॥
मिलि दस पांच गए कही ह्याते उठि जावो जायेंगे अवश्य आजु रैनर है दीजिए ॥
जंत्र मन्त्र मूठि काल कृत्या लै चलाई सब उलटि पठाई निज कियो फल लीजिए ॥
तब खिसियाय सिला ऊपर गिराई स्वामी अधर झुलाई कह्यो इन्है न पतीजिए ॥
रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३.

उन्हे पडक्षर राममन्त्र की दीक्षा के साथ ही साधु सेवा और सकीर्तन मे काल-यापन करते हुए नित्य रामनाम जप का उपदेश हुआ।[1] इसी समय से गलता पयहारी जी का प्रधान पीठ बन गया। यहीं पर कुछ दिनो बाद उन्होंने दो शरणागत बालको—कील्हदास और अग्रदास को पचसस्कार युक्त करके साधना मे प्रविष्ट किया। एक लम्बी आयु भोगने के पश्चात् गद्दी का दायित्व बडे शिष्य कील्हदास को सौप कर श्री कृष्णदास जी ने अपनी ऐहिक लीला सवरण की।

कील्हदास ने गुरु द्वारा उपदिष्ट साधनापद्धति का सम्यक् प्रचार एव संवर्द्धन किया। इनके विषय मे प्रसिद्ध है कि तत्कालीन देशाधिपति ने मथुरा प्रवास के समय इनकी *योगसिद्धि के परीक्षार्थ सिर पर लोहे की कील ठुकवा दी थी*[2]

---

१. सुनो पृथिराज कुश बंस में विदित जन्म,
पाय सीतानाथ भजौ क्यों न मन लायकें।
स्वामी हम संसृति भुलाने नहिं जानें कैसो,
वैष्णव धरम प्रभु कहौ समुझाय कें॥
सुनिकें प्रवृत्ति को निवृत्ति को स्वरूप कह्यो,
नाम को महत्त्व सुनि दियो शीष नाय कें।
द्वादश तिलक माला छाप नाम मंत्र ध्यान,
पायो सुख छायो भयो अभय बजायकें॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १४

नाभादास ने आमेर नरेश पृथ्वीसिंह की गणना तत्त्वदर्शी रामभक्तों में की है। पयहारी जो के प्रसाद से प्राप्त इनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

(श्री) कृष्णदास उपदेश परम तत्त्व परचौ पायौ।
निरगुन सगुन निरूपि तिमिर अज्ञान नसायौ॥
काछ्न बाच निकलक मनौ गांगेय युधिष्ठिर।
हरि पूजा प्रहलाद धर्मध्वजधारी जग पर॥
पृथीराज परचौ प्रगट, तन संख चक्र मंडित कियौ।
आमेर अछत कूरम कौ, द्वारिका नाथ दरसन दियौ॥

श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ० ६१६

२ कील कोल सिरदई नृपति तबहूं नहिं जागे।
प्रबल समाधी रसिक रामसिय छवि अनुरागे॥

र० प्र० भ०, पृ० १४

किन्तु उस स्थिति मे भी ये समाविस्थ रहे। ये सांख्ययोग के पारगत विद्वान् थे। इनके शिष्य द्वारकादास भी अष्टागयोग के निष्णात साधक थे। उन्होने अपना प्राण ब्रह्मरध्र से त्याग किया था। इसी प्रकार कील्हदास के छोटे गुरुभाई अग्रदास और उनके लोकविश्रुत शिष्य नाभादास के विषय मे भी अनेक चमत्कारिक घटनाओ का उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य मे मिलता है।[1]

पयहारी जी के देहावसान के अनन्तर भी उनका अद्भुत प्रताप भक्ति क्षेत्र को आच्छादित किए रहा और रामानदीय सम्प्रदाय के उपासक उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे। देवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के प्रसिद्ध महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पयहारी के विषय मे प्रसिद्ध है कि उन्हे सर्वप्रथम रामभक्ति का प्रसाद गज रूप में समागत श्रीकृष्णदास पयहारी द्वारा ही मिला था।[2] इस घटना के बाद भी उन्हे समय-समय पर पयहारी जी के स्वप्न मे दर्शन देते रहने की कथायें साम्प्रदायिक साहित्य मे मिलती हैं।[3]

एक समै सहज सुभाय मधुपुरी आए, यमुना सुनीर न्हाइ बैठे शुचि तीर मे ॥
श्यामल स्वरूप रघुनदन को हिए आयो, अचल समाधि लागी सतन की भीर मे ॥
देश दुनीपति पादसाह सुनि कौतुक ज्यो, पेषन को आयो नहिं जानै पर पीर में ॥
कील शिर दई कछू वेदना न भई रह्यो, अचल समाधि जैसी लागी रघुवीर मे ॥
र० प्र० भ०, पृ० १५

१ देखिये श्रीभक्तमाल (वृंदावन पृ० २७५-२७६ तथा
'भक्ति सुधा विन्दु स्वाद तिलक' (रूपकला) पृ० ४४-५०

२ जयपुर राज्य राज रजधानी। तहाँ अवतरे मुनि विग्यानी ॥
कृष्णदास पावन व्रतधारी। रहे कहावत श्री पयहारी ॥
बहुत काल तप कीन्ह कठोरा। नित्य दिवस रघुवंश निहोरा ॥
दिवस एक बन फिरत अकेला। धार्यो भेष महा गज मेला ॥
तेहि छन अचकार भइ भारी। दिखरायो महिमा पयहारी ॥
वेगवत होइ चला चिघारी। जहँ बैठा बालक ब्रह्मचारी ॥
लीन्ह चढ़ाइ कान्ह पर तिनहीं। अति स्यामल गज भय नहि जिनहीं ॥
दीक्षा दै कृतार्थ तेहि कीन्हा। सादर पौहारी पद दीन्हा ॥
दासा-तं पयहारिण परगुरुं रामस्वरूप मुनि।
गायत्री जप निर्मल गुरुवर श्री कृष्णदासाभिधः ॥
धृत्वाहस्तिवपुः सुदक्षिणपरैः पयहारिभि- स्थापितम्।
पंकौली नगरात्सुदूर विजने सान्द्रे सुरम्ये वटे ॥

३ हरिपूजन में कृष्णदास पुनि आइ मिले हर्षाई,
लक्ष्मीनारायण चेत करो यह मुक्ति की राह बताई।
अवध प्रसाद होईहैं तब गुरु ऐसो गिरा सुनाई ॥

पयहारी जी और उनके शिष्य-प्रशिष्यों के सम्बन्ध मे प्रचलित इन कथाओ से उनकी योग साधना मे असाधारण आस्था एव गति का पता चलता है। रामोपासना के अतर्गत यह योगप्रवृत्ति निरन्तर बढती गई। आगे चलकर उसने एक पृथक् साधनाप्रणाली का रूप धारण कर लिया और तपसी शाखा के नाम से अभिहित की जाने लगी। इसके प्रवर्तक थे पयहारी श्री कृष्णदास और साम्प्रदायिक सगठन कर्ता थे उनके उत्तराधिकारी गलता गद्दी के द्वितीय आचार्य कील्हदास। इस सम्बन्ध मे यह विचारणीय है कि स्वामी रामानद के नाम से प्रसिद्ध रामरक्षा, ग्यानलीला, ग्यानतिलक, योगचितामणि आदि रचनाएँ भी योगपरक ही हैं किंतु उनमें राजयोग की अपेक्षा हठयोग और सगुण की अपेक्षा निर्गुण साधना को प्रधानता दी गई है, उनके आराध्य ज्ञानियो के ही ध्येय हैं अपनी पराशक्ति सीता सहित परम धाम मे नित्य लीलारत, ध्यानमग्न भक्तो को लोकोत्तर आनन्द का रसास्वादन कराने वाले अवतारी राम नही। इसलिए स्वामी रामानद की प्राप्त रचनाओ से रामोपासना की इस शाखा विशेष का प्रकृत सैद्धातिक सम्बन्ध स्थापित होता नही दिखाई देता। बहुत सभव है उनकी कुछ हिंदी रचनाये साकेत विहारी राम विषयक भी रही हों, जो क्रूर काल के प्रवाह के साथ अनन्त मे विलीन हो गयी हो।

यह आज भी रामभक्तिक्षेत्र की एक सशक्त साधनाधारा है। प्रयाग, हरिद्वार, नासिक आदि तीर्थों मे कुभ के अवसर पर कोपीन, मूंज की करधनी और विभूतिधारी रामोपासक नागाओ के जो अखाडे बडी सजधज के साथ एकत्र होते हैं वे प्रायः इसी शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। इनको अनी और अखाडो मे सगठित करने का श्रेय महात्मा बालानन्द को है जिनकी गद्दी जयपुर म अब तक स्थापित है।[1] शैव नागाओं से इनकी विभिन्नता इस बात मे रहती है कि इनकी साधना भावयोग प्रधान होती है जब कि शैवो को हठयोग प्रधान। अब तक इस शाखा के उपजीव्य ग्रथो मे श्री कृष्णदास पयहारी तथा कील्हदास की कोई रचना प्रकाश मे नही आई है।

प्राचीन हस्तलेखो की खोज करते हुए मुझे कुछ दिनो पूर्व पयहारी जी का 'राज-योग' नामक ग्रथ प्राप्त हुआ था। यह एक छोटी सी रचना है जिसमें कुल २८ छद हैं—२७ रोला और एक दोहा। निम्नाकित पक्ति से ज्ञात होता है कि यह ग्रथ अग्रदास की शिक्षा के लिए लिखा गया था—[2]

---

१. रामभक्ति में रसिक सप्रदाय, पृ० ३८८.
२. राजयोग, छ० ९.

तब उहाँ अग्र। देखर मुधीर।
जनु भर्‌यो उदधि अति अगम नीर।।

इसके प्रतिलिपिकार, कील्हदास की परम्परा मे आविर्भूत, महात्मा कामद-राम के कोई अज्ञातनामा शिष्य हैं। ग्रथात मे दी गई पुष्पिका मे अपना परिचय देते हुए वे लिखते हैं—

"।।इति श्री स्वामी पयोहारि कृष्णदास कृत राजयोगम्। श्री राम।।"

"कृष्णदास कुल कील मत, सारुय घ्यान सिय राम।
श्री गुरु कामद राम निधि, राम बीज रट नाम।।"

इस छोटे से ग्रथ मे अभिव्यक्त विचारो से पयहारी जी की परपराप्रसिद्ध योग-साधना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। वे नाथपथियो की हठयोगी पद्धति के प्रतिकूल पातजलि की अष्टागयोगप्रणाली के प्रचारक थे। 'राजयोग मे' उनका तात्पर्य इसी साधना पद्धति से है जिसका तत्त्ववाद सेश्वर सांख्य है। नाभादास ने कील्हदास के प्रसग मे इसका उल्लेख किया है—[1]

रामचरण चितवनि रहत निसिदिन लौ लागी,
सर्वभूत शिर नमित सूर भजनानँद भागी।।
सांख्य योग मत सुदृढ किए अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरध्र करि गौन भये हरितन करनी बल।।

कील्हदास की कोई कृति उपलब्ध न होने से हमे इस सम्बन्ध मे उनके अनु-यायियो और नाभादास द्वारा प्रस्तुत तथ्यो पर ही निर्भर रहना पडता है। किन्तु पयहारी जी के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य अग्रदास की रचना 'ध्यान मजरी' से 'राजयोग' मे प्रतिपादित सिद्धातो का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। अग्रदास ने उक्त ग्रथ मे अपने 'ध्यानयोग' को गुरु (श्री कृष्णदास पयहारी) का प्रसाद बता कर प्रकारान्तर से इसकी पुष्टि की है[2]—

श्री गुरु सत अनुग्रहते अस गोपुर वासी।
रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकाशी।।
ध्यान मजरी नाम सुनत मन मोद बढावे।
श्री रघुबर को घ्यान मुदित मन अग्र सो गावै।।

अग्रदास रामभक्ति मे रसिक भावना के प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय मे सीताराम के युगल स्वरूप की उपासना विहित है[3]—

---

१. श्रीभक्तमाल (वृन्दावन), पृ० २७३
२. ध्यान मंजरी (अग्रदास), छ० ७६, ८०.
३. राजयोग, छ० १८, १६, २०, २१, २२

षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजैं।
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक लाजैं॥
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानद वामदिसि जनक कुमारी॥

'राजयोग' मे भी 'परमधाम' मे नित्यलीला मग्न, शक्तिसयुक्त, आराध्य का यही स्वरूप ध्येय बताया गया है[1]—

आगे सुपताका उडति देखि। तहँ सेन छत्र छाया सुपेखि॥
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि। चहुँ दिसि प्रकाश नहिं बरन घूमि॥
को बरनि सकत प्रभु को सरूप। रवि कोटि चन्द छवि ते अनूप॥
नभ नील मेघ इमि श्याम गात। लखि पीत बसन विद्युत लजात॥
इमि बसत राम निज सहित वाम। सब संत कहत जेहि परम धाम॥

पयहारी जी ने इष्टदेव के इस ध्यान में तल्लीन जीव-मुक्त भक्तो को शास्त्रानुमोदित चार प्रकार की मुक्तियो—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से श्रेष्ठतर पाँचवी 'ध्यानलीन' मुक्ति का अधिकारी बताया है[1]—

जे चारि मुक्ति वैकुठ मानि। ते भुक्ति मुक्ति फल लेहु जानि॥
तब पँचई मुक्ति पावो प्रवीन। जो रहत अहोनिसि ध्यान लीन॥

उनकी सम्मति मे योगसाधना रामभक्तिप्राप्ति का एक मात्र साधन है।—

तहँ गए मिटत है जन्म मरण। तेहि हेत जोग जत रामशरण॥

आमेर नरेश पृथ्वीसिंह के प्रसग मे नाभादास ने पयहारी जी को निर्गुण तथा सगुण दोनो तत्त्वो का पारगत आचार्य कहा है। राजयोग मे अग्रदास को उपदिष्ट निम्नाकित साधना प्रणाली इसका समर्थन करती है[3]—

प्राणहि अपान दृढ गाथि डोरि। कुडलनि आय सम युक्ति जोरि॥
तब चलत पवन जहँ ब्रह्मरध्र। तहँ छोडि जाहि सब त्रिगुण बध॥
उलटै सु इला पिंगला नारि। सुषुमना शुद्ध लीजे विचारि॥
पहुँचै सु जबै अनहद्द गेह। राखै सु एक हरि सो सनेह॥

इस स्थिति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय रामनाम का अखड जप है[4]—

१. वही, छं० २४, २६
२. राजयोग, छं० ५, ६, ७, ८
३. वही, छं० २५
४. वही, छं० २८,

आठ पहर चौंसठि घरी ररकार धहराय ।
सकल मोह दावा मिटै तब नाना ठहराय ॥

स्वामी रामानन्द का भी मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था[1] जिसे आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण एव सगुण ब्रह्म की ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दोनो के बीच 'चतुर दुभाषी' घोषित किया । पयहारी जी भी रामोपासना की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के पोषक थे । परवर्ती रामभक्त कवियो ने भी अपनी रचनाओ मे निर्गुण तत्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अन्य सगुणाश्रयी सम्प्रदायो मे प्राय. इसके विपरीत, निर्गुण भावना को सगुण के विरोधी रूप मे ही चित्रित किया गया है । कृष्ण काव्य की भ्रमरगीत परपरा मे इसके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं ।

कृष्णदास जी के शिष्यो ने रामभक्ति शाखा मे इसी उभय (निर्गुण-सगुण) प्रबोधक ध्यान योग का प्रचार किया ।[2] रामोपासना की प्रधान साप्रदायिक धारा आज भी इसी पथ पर प्रवहमान है । इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख्य है कि योग समन्वित रामभक्ति की यह स्रोतस्विनी गोस्वामी तुलसीदास की लोक-सग्रही उपासनापद्धति से सर्वथा पृथक् एकातिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिसमे बाह्य की अपेक्षा मानसी पूजा को प्रधानता दी जाती है । आराध्य और आराधक की तादात्म्यस्थापना के लिये इसके अन्तर्गत पचभाव सम्बन्धों की कल्पना की गई है। रामभक्तो का यह भावयोग ही रसिक साधना का मूलतत्त्व है, जिसका मर्म न समझने वाले छिछली प्रवृत्ति के साधक सम्प्रदाय को अपनी ऐहि-

---

१. मूरख तन धरि कहा कमायौ । राम भजन बिन जनम गँमायौ ।
राम भगति गति जाणी नाहीं । भंहू भूलौ धंधा माहीं ॥
रामानद की हिंदी रचनायें, पृ० ६

२. नाभादास ने श्रीकृष्णदास के प्रत्यक्ष शिष्यो की सख्या २४ बताई है, जिनकी नामावली इस प्रकार है—
कील्ह अगर केवल्ल चरन व्रत हठी नरायन ।
सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरिभक्ति परायन ॥
पद्मनाभ गोपाल टेक लीला गदाधारी ।
देवा हेम कल्यान गगा गगा सम नारी ॥
बिष्नुदास कन्हर रंगा चांदन सविरी गोविन्द पर ।
पैहारी परसाद तें सिष्य सबै भये पारकर ॥
श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ० २७३.

कता परक वृतियो से कलकित और सतृणाम्यवहारी आलोचक उन्ही के सिर इस धारा का प्रतिनिधित्व मढ कर अनेक भ्रान्तियो को सृष्टि करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने गोरखपथी सिद्धातो के प्रचार से तत्कालीन समाज मे शास्त्रो और महापुरुषो के प्रति फैलती हुई अनास्था की ओर इगित किया था। श्री कृष्णदास पयहारी ने इसके बहुत पूर्व ही अध्यात्मक्षेत्र मे बढती हुई इस भीषण व्याधि का निदान ही नही उपचार भी आरभ कर दिया था। मध्यकालीन भारत मे नाथपंथियो का मुख्य कार्यक्षेत्र राजस्थान था। वहाँ के निवासी जनसाधारण और सामन्तो को अपनी अद्भुत योगशक्ति से चमत्कृत करके उन्होने ही सर्वप्रथम हठयोग का दृढतापूर्वक प्रत्याख्यान कर साधको को भावयोग की ओर उन्मुख किया था। उनके शिष्य-प्रशिष्या ने घोर तपश्चर्या के साथ ही देशव्यापी प्रचार द्वारा इस अनुष्ठान को पूरा किया। इस दृष्टि से वैष्णव भक्ति के विकास मे पयहारी जी की सेवाये चिरस्मरणीय रहेगी।

———

मध्यकाल के अल्पख्यात रामभक्तों की कुछ नवप्राप्त रचनाएँ

रामोपासना की रसिक शाखा के सतो के जीवनवृत्त तथा रचनाओ के अनुशीलन की जो परम्परा 'राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय' मे स्थापित की गई थी, उस दिशा मे इधर उत्तरी भारत के अनेक विश्वविद्यालयो के तत्वावधान मे तथा स्वतत्र रूप मे कई महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हुए है। उनमे राममक्ति में शृङ्गारी उपासना की पृष्ठभूमि, उसका मनोवैज्ञानिक विवेचन, भारतीय धर्म-साधना की अन्य शाखाओं, विशेषत कृष्णभक्तो की माधुर्य भावना से उसकी तुलना आदि तत्वों का व्यापक रूप से निरूपण किया गया है किन्तु जहाँ तक साधना के सैद्धान्तिक एव तथ्यात्मक शोध का प्रश्न है, प्रगति अत्यन्त धीमी रही है। इसका मुख्य कारण क्षेत्रीय शोध की सुविधाओ की कमी और शोधार्थियो मे श्रमशीलता का उत्तरोत्तर ह्रास है। आदि एव मध्यकालीन साहित्य पर कोई कार्य उक्त दोनो कारणो के रहते हुए सार्थक हो ही नही सकता। यह बडे ही खेद की बात है कि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय शासन शोध कार्य के प्रोत्साहन के निमित्त जो आर्थिक सहयोग प्रदान कर रहे हैं, हमारे शोधार्थी उनका भी समुचित उपयोग नही कर पाते। इसी का यह परिणाम है कि उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य भारत के प्राचीन सग्रहालयो मे सुरक्षित कतिपय महत्त्वपूर्ण हस्तलेखों को अब तक प्रकाश मे आने का सुयोग प्राप्त न हो सका।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे सुरक्षित 'पदमुक्तावली' से उपलब्ध पूर्व-मध्यकालीन रामभक्त की रचनाओ का परिचय पिछले लेख में दिया जा चुका है। प्रस्तुत निबन्ध मे कतिपय अन्य स्रोतो तथा उक्त सग्रह मे उपलब्ध मध्यकाल के रसिक रामभक्तो की कुछ अप्रकाशित कृतियाँ उद्धृत की जायेंगी। इससे इनकी विचारधारा एवं भावसाधना का स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा। इन भक्तो मे विशेष उल्लेखनीय हैं—झाऊदास, बालअली, सूरकिशोर और हर्याचार्य। इनमें से प्रथम को छोडकर शेष तीन भक्तो का विस्तृत वृत्त 'राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय' मे दिया जा चुका है। अत यहाँ उनके जीवन की अद्यावधि अज्ञात एव विशिष्ट

बातें उनकी नवोपलब्ध रचनाओ के साथ दी जायेंगी । इनसे रसिक सम्प्रदाय के भक्तो की काव्यशैली मे एक विशिष्ट तत्त्व प्रकाश मे आता है और वह है चरितात्मक शैली मे रामकाव्य निर्माण मे इन भक्तो की अभिरुचि तथा गति । उदाहरण के लिए हर्याचार्य तथा सूरकिशोर की कृतियाँ ली जा सकती हैं । इनमें से प्रथम शृगारी साधक थे और द्वितीय वात्सल्यनिष्ठ भक्त । इनकी जो रचनाएँ अब तक उपलब्ध थी उनमे भावपूर्ण शैली मे आराध्य की रसमयी लीलाओ का वर्णन मिलता है । किन्तु नवप्राप्त रचनाओ मे उनकी लीला का इतिवृत्त बडी ही सयत और प्रवाहपूर्ण शैली मे प्रस्तुत किया गया है । हर्याचार्य का 'सीताराम-विवाह' वर्णन और और सूरकिशोर का 'रावण-अगद-सवाद' इसके प्रमाण हैं । इनसे यह विदित होता है कि कोमलकात पदावली के समान ही ओजपूर्ण छद रचना की भी इनमें अकूत क्षमता थी । साथ ही ये इस तथ्य के साक्षी हैं कि रसिक रामभक्त—चाहे वे माधुर्यासक्त हो या वात्सल्यनिष्ठ—अपनी कृतियो मे सामाजिक मर्यादा तथा व्यक्तिगत चारित्रिक आदर्शों की रक्षा का बराबर ध्यान रखते थे । इसी से पदमुक्तावली में सकलित इस सम्प्रदाय के सतो की सारी रचनाएँ उस घोर शृगारिकता से अछूती हैं, जिसके आधार पर इस शाखा के कवियो पर 'ईश्वरत्व की छीछालेदर' का आरोप लगाया जाता रहा है ।

हमारा विश्वास है कि इन कृतिया से रामभक्ति की रसिक शाखा की साधना एव साहित्य विषयक अनेक अज्ञात तत्त्व प्रकाश मे आयेंगे जिनसे अनुसधित्सुओ को इस क्षेत्र मे अग्रसर होने के लिए नयी प्रेरणा प्राप्त होगी ।

झाँझू दास

ये श्री कृष्णदास पयहारी के प्रशिष्य तथा हेमानद जी के शिष्य थे । जयपुर और उसके आस-पास पयहारी जी द्वारा स्थापित रामभक्ति परपरा के प्रसारक रूप मे इनकी बडी प्रसिद्धि है । इनका आविर्भाव जयपुर राज्य के उमाडा नामक ग्राम मे एक खाडल ब्राह्मण परिवार मे हुआ था ।[1] पिता का नाम पडित चोखाराम था । बालकाल से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्मोन्मुख थी । इसलिए इनके समय का अधिकाश पूजापाठ मे बीतता था । आरभ मे घर पर ही पिता ने अध्ययन की व्यवस्था की किन्तु उसमे इनका मन नही लगा । दैवयोग से किशोरावस्था मे ही इन्हे पयहारी जी के शिष्य स्वामी हेमानद का सान्निध्य प्राप्त हो गया और इन्होंने उनसे मत्रदीक्षा ले ली । इसके बाद गृहस्थी के जजाल से मुक्त होकर

१. कल्याण : वर्ष ३२ · अक ७ : पृ० १०८८ ।

ये जयपुर की पश्चिम दिशा मे स्थित जगली प्रदेश मे जाकर एक सरोवर के पास आश्रम बनाकर भजन करने लगे।

कुछ ही दिनो की साधना से इनके मन मे आराध्य के दर्शन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हो गई। ये उसी समय अन्तः प्रेरणा से भगवान राम की लीलाभूमि अयोध्या की ओर चल पडे। वहाँ पहुँचकर कुछ दिनो तक सरयू तटस्थ रामघाट पर भजन करते रहे। कहा जाता है कि एक दिन जब ये इष्टदेव के दर्शन के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, तो आराध्य ने सीता तथा लक्ष्मण सहित इन्हे दर्शन दिया। उनका चरण वदन करते हुए झाँझूदास ने दर्शन तथा नित्य सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। भगवान बोले 'कलियुग मे मेरा साक्षात्कार प्राप्त करना अत्यत कठिन है। किन्तु तुम्हे नित्य सेवा के लिए हमारा विग्रह सरयू मे प्राप्त होगा। उसे ले जाकर अपने पुण्यस्थल पर स्थापित करना, उसकी पहचान यह है कि जहाँ विग्रह भार प्रतीत हो, वही उसे पधरा देना। उसके उपलक्ष्य मे विजयादशमी के दिन एक महोत्सव करना। उस समय तुम्हें मेरा दर्शन नीलकठ के रूप मे होगा। झाझूदास को उसी दिन सरयू में स्नान करते समय तीन विग्रह प्राप्त हुए। उन तीनो को लेकर उन्होंने राजस्थान के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या जाते समय अपने आश्रम मे झाँझूदास ने बरगद की एक डाल यह कहकर रोपी थी कि अगर मेरे लौटने तक यह डाल हरीभरी हो गई तो इस स्थान पर एक गाँव बसाऊँगा। इष्टप्राप्ति के पश्चात् जब अयोध्या मे राजस्थान लौटते हुए वे उस स्थान पर पहुँचे तो उन्हे मूर्ति का भार बढा हुआ प्रतीत हुआ। वह डाल भी हरे-भरे वृक्ष के रूप मे परिणत हो गई थी। अत. उन्होंने वही मदिर बनाकर तीनों विग्रह पधरा दिये और दशहरा आने पर 'रावणवध लीला' का विशाल उत्सव आयोजित किया।[1] भगवान के कथनानुसार उस अवसर पर उन्हें नीलकठ के दर्शन हुए। यह उत्सव आज तक जयपुर से ३२ मील की दूरी

---

१. श्री रामानुजदास 'रूपसरस' ने 'गुरुपरंपरा' नामक अपनी रचना में इस घटना का विवरण देते हुए लिखा है—

पयहारी के शिष्य लखो सुचि हेमानन्दसु।
हेमानन्द के झंमूदास शिष्य जानु अद्वन्दसु॥
भक्तमाल में प्रगट नाम जिनको लख लीजै।
अब सुन जिनकी कथा मोद भरि हिये धरीजे॥
धाम बरस गये अवध में स्नान करत मूरति मिली।
श्री सीता रघुवर लखन की कज कोस बसु दल खिली॥१॥

पर स्थित हरसौली ग्राम मे बड़े धूमधाम के साथ दशहरा को मनाया जाता है, जहाँ हजारो की सख्या मे भक्तलोग नीलकठ के दर्शनार्थ इकट्ठे होते हैं। इनकी दिव्यधाम यात्रा साप्रदायिक मान्यता के अनुसार स० १५४२ में हुई। इन्ही की परपरा मे आगे चलकर रसाचार्य महात्मा सियासखी का आविर्भाव हुआ था।

श्री सरयू तट रामघाट जहँ दरसन दीन्हूँ।
श्री सीता रघुनाथ लखन जुत निज जन चीन्हूँ ॥
लखत पर्‌यो झुकि चरन लकुट इव तन सुधि भूल्यो।
मनभयो हर्ष अपार देह तन रव फूल्यो ॥
कर जोरे छबि निरखते नेह मयो चख धारि ढर।
विनय करत सिय राम सों गद्गद ह्वै रहे कठ स्वर ॥२॥
विनवत पद महाराज मोहि नित जान सगते।
किंकरता में करौं दिवस निसि अति उमग ते ॥
तव माया अति प्रबल बिनासै नाही कबहूँ।
सुमिरेहु चित्त रहौं नाम गुण धामोच्छव हूँ ॥
लखि किसोर वय भक्त कहे दया सिधु आसा दिये।
श्री रघुनाथ कृपायतन एवमस्तु बोलत भये॥ ३ ॥
सुनु शांभू! अति दुर्लभो मोर मिलन कलि माहि।
तेरी दृढ़ता बिबस किय यामे ससय नाहि ॥
नित सेवन हित प्राप्त होइहौं सरजू अतर।
ताहि खोजि एकांत माहि सुचि भूमि सुततर ॥
सुद्ध धरा किमि जानऊँ ? प्रभु बोले द्युति अटत।
जहाँ भार मो मे लखै तहाँ जानु अघ भ्रम कटत ॥ ४ ॥
तहँ लीला तुम रचो विजय दशमी दिन मेरो।
रावण वध दुख हानि खानि सुख भक्ति सु केरो ॥
दस अवतार उदार देखिवे जे जन आवहिं।
पद् ऋतु रहिहैं तहा नित्य रति माया पावहिं ॥
लीला मेरो इमि करहु मोर नाम ते जाय।
धाम रूप गुण हिय धरहु तहाँ न माया धाय ॥ ५ ॥
तिहि उत्सव के माँहि सदा मैं दरसन देहूँ।
कलिहित प्रगटूँ नाहि भेष इक ओट जो लेहूँ ॥

झाँझूदास के भक्ति सम्बन्धी कुछ फुटकर छंद मिलते हैं। एक पद नीचे दिया जाता है—

मंगल रूप लाडली लाल।
जननी जगावत कुँवर कोशल्या उठि पहिरो मुक्तामनि माल।
अँगुरी गह अगना पाँव टेको आरति अधिक उतारूँ चलि चाल॥
जाय सुरताया धेनु सकल के आज्ञा धो मेटहु तिहुँ काल।
झाँझूदास प्रभु रघुकुल मंडन अवधपुरी विहरत भूपाल॥

नील गांस को वरस ताहि दिन अति सुखदाई।
चित्र लिखावत फिरत तिनहि दुर्लभ कवि गाई॥
सो तनु धरि में आयहूँ उत्सव रति प्रति हेत।
रंचक भेद न दीजियो यह तव मम संकेत॥ ६॥
अस कहि अंतरध्यान भये सीता रघुनायक।
झांझू मूरति देव धारि छवि निधि निर्मायक॥
वचन प्रभू के मनन करत गये सरजू जल मे।
न्हात लखे त्रयमूर्ति कहो जिमि पंकज दल में॥
हाटक सिंहासन सुघट कंजपद कर गहि लयउ।
भई हृदय दृढ़ता अमित वाक्य सतगुनो सुख छयउ॥ ७॥
चले मूर्ति सिर धारि जथा आज्ञा पहिले भई।
पश्चिम दिसि त्रयकोस पर अचल होइ सो तहँ ठई॥
इच्छा लखि तहँ थान कियो सुचि ग्राम बसायो।
म्लेच्छ बौद्ध औ हीन नरन ते रहित सुहायो॥
स्थापित कर उत्सव कियो आयो प्रभु सोइ धारि तन।
विदित चरित कलिकाल में हरसोली लखिये नयन॥ ८॥
रैंवासा मद गालवासरम बिच हरसोली।
झाँझूदास को थान तहाँ महिमा सु अतोली॥
झाँझूदास के सिस्य भए द्वै गुन निधि जानूं।
रामदत्त जू बड़े सु लघु नरहरि दासानूं॥
गान माहिं नरहरि जये तानसेन आदिक गुनी।
अकबर सुघ्रता मानि भज वय किसोर इमि गति सुनी॥
—श्री सियाशरण जी (जयपुर) के सौजन्य से प्राप्त।

रूपसरस जी की उक्त रचना की अन्तिम पक्तियो से यह पता चलता है कि झांझूदास के शिष्य नरहरिदास उनके गुरु हेमानन्द जी की भाँति ही सगीत शास्त्र के प्रकाड पडित थे। उन्होंने अकबरी दरबार के तानसेन आदि प्रसिद्ध सगीतज्ञो को गानविद्या मे पराजित किया था और उनके प्रभाव से अकबर के हृदय में दैन्य का उद्रेक और युगलकिशोर श्रीसीता राम के चरणो मे आसक्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। इनको स्थितिकाल को देखते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की सभावना मे कोई कालदोष नही दिखाई देता। अकबर द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की मुद्राओ में अकित सीता राम के चित्र से भी उक्त उल्लेख की सार्थकता प्रमाणित होती है।

सिया सखी

महात्मा गोपालदास 'सियासखी' का राजस्थान के रसिक रामभक्तो मे विशिष्ट स्थान है। जयपुर से ३२ मील पश्चिम मे स्थित हरसोली नामक गाँव म इनका जन्म हुआ था। ये महात्मा झांझूदास की परम्परा मे ११वी पीढी मे आते हैं। इनके पिता महात्मा लक्ष्मणदास बुढाढरा गोत्र के खाडल ब्राह्मण थे। श्री रूप-सरस द्वारा रचित गुरु परम्परा के अनुसार इनका साकेतवास फाल्गुन कृष्ण ६, स० १८६७ मे हुआ—

मुनि योगीश्वर तथा वसु शशि सवत गनिए।
मास फाल्गुन कृष्ण पक्ष षष्ठी तिथि ठनिए॥
सीताराम समीप गये, नित सेवन हित स्वामि।

भक्ति तथा गान विद्या दोनो इन्हे अपने पिता महात्मा लक्ष्मणदास से रिक्थ रूप मे प्राप्त हुईं थी। ये हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत भाषा मे भी काव्य रचना करते थे। रामजन्म तथा विवाहोत्सव सम्बन्धी इनके ५०० के लगभग पद प्राप्त हैं।

---

१. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति मे रसिकसम्प्रदाय' पृ० ४१३। उक्त ग्रन्थ में इन्हें गौड ब्राह्मण लिखा गया है, जो बाद की खोजो से निराधार प्रमाणित हुआ। इसी प्रकार उनका जन्म स्थान बडागाँव बताया गया था, वह भी ठीक नहीं था। वहाँ इनके गुरु का नाम झांझूदास दिया गया था, वह भी भ्रांत था। इधर इनके जीवन सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। उपर्युक्त परिचय उन्हीं पर आधारित है।

चन्द्र अली

श्री बलदेवदास 'चन्द्रअली' सियासखी जी के छोटे भाई थे। ये उनके चित्रकूट चले जाने पर जयपुर मे चादपोल वाली गद्दी के महत हुए थे। इधर इनकी एक रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' प्राप्त हुई है। रसिक परम्परा मे ये यूथेश्वरी चन्द्रकला जी के अशावतार माने जाते हैं। इन्होने अपनी शृगारी भावना के अनुसार ३२ कुजो का निर्माण कराया था। रूपसरस जी ने आराध्य की अष्टयाम लीला पर इनके द्वारा रचे गये चार हजार छन्दो की प्राप्ति का उल्लेख किया है—

चन्द्रअली अवतार अज्ञतम नासक भानू।
अष्टयाम लीला ललित चतुर्सहस्र प्रमानू॥

'रामविवाह' विषयक इनका एक छन्द नीचे दिया जाता है—

जुगुल माधुरी रस बरसै री।
घन घमड दूलह शृगार पर भूषण दमक तडित दरसै री॥
नव सुपमा झर लग्यो महल में गान गर्ज कृत अलि सरसै री।
अद्भुत रससिंधु पूरित थिर भइ निमग्न सखि लगि चरसै री॥
लगी लगन अनुराग भरे सब परिजन मज्जन अँग परसै री।
'चन्द्रअली' लखि छबि विवाह की रोम रोम अति मनहरसै री॥

अपनी रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' के अत मे इन्होने 'युगल मजरी' नाम के एक रसिक सन्त का उल्लेख बडी श्रद्धा के साथ किया है। उससे पता चलता है कि भाव साधना मे इन्होने उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी।[1]

सूर किशोर

रसिक प्रकाश भक्तमाल मे इन्हें पयहारी जी के ज्येष्ठ शिष्य कील्हस्वामी का प्रशिष्य कहा गया है। ये भी जयपुर के निवासी थे। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह के व्यवहार से क्षुब्ध होकर जब मधुराचार्य गलता छोडकर चित्रकूट चले गये तो इन्होंने भी वह स्थान त्यागकर लोहार्गल सीकर को अपनी साधना भूमि बना ली। जानकीजी के प्रति इनका पिता का भाव था। ये इस वात्सल्य-निष्ठा का निर्वाह अपने दैनिक जीवन मे भी करते थे। पुत्री को सदैव गोदी मे लिए रहते थे और उसके मनोविनोद के लिए नाना प्रकार के उपाय करते रहते थे। अयोध्या आने पर इन्हे किस प्रकार दिव्यदम्पति का दर्शन प्राप्त हुआ, इसकी

---

१. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—रा० र० सम्प्रदाय, पृ० ४२७।

क्या लोकप्रसिद्ध है।[1] मामा प्रयागदास इन्ही के शिष्य थे। इनकी सर्वविदित रचना 'मिथिला विलास' है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। नीचे 'पदमुक्तावली' मे प्राप्त इनकी तीन रचनाएँ दी जाती है। इनमे प्रथम का प्रतिपाद्य 'अगद-रावण-सवाद' है। इससे विदित होता है कि सूर किशोर जी ने भावपूर्ण पदो के अतिरिक्त कुछ चरितात्मक रचनाएँ भी की थी। इस प्रकार की इनकी कोई रचना अब तक प्रकाश म नही आई थी। दूसरे छद मे जानकी चरणो मे अनन्य निष्ठा व्यक्त की गई है और तीसरे छद मे धनुपयज्ञ का वर्णन है—

आव रघुवीर की सरन अङ्गद कहै मानि मत मूढ बर बचन मेरौ।
जाहु रे जाहु जब कोपि लकेश कह्यो भुजनि मेरी बसै काल तेरौ ॥ टेक॥
सुर असुर नाग नर बली इते जगत मे इन्द्र ब्रह्मादि सबही नवाए।
यह अद्‌भुत बडी बात पीछै रही रीछ कपि लक गढ लैन आए ॥२॥
वाम कर की अलप अगुरी अक भरि लक छिनकमाँही ढहाँऊ।
कहा करौं नैंक मोहि सक रघुवीर की रक तुहि मारि अब ही उडांऊ ॥३॥
होंहि ऐसौ बली मुगध चपि काहि नैं बालि से बाप कौ बैर लीनो।
तात के भ्रात की पतनि माता करी शत्रु की सरन जाय मूँड दीनौं ॥४॥
हेतु ममतात मैं रावरे से लछिन धर्म की मैंड जिहि फोरि डारी।
परि है अब धूरि सुनि रावरेहू वदन राम अवतार बल डड धारी ॥५॥
सुनत ही बचन जानौ फनिग कौ पन चप्यौ सिंघ की पूंछ सोवत मरोर्‌यौ।
परजरी आगि उर बीस लोचन बिकल पटकि भुज उठत मिश्रन निहोर्‌यौ ॥
जोलो यहै ऐंड अभिमान मद की भरनि ग्रीव मैं बकि है द्रष्टि धीठी ॥
सरस रन बांकुरी भुजा रघुवीर की जोलौं मति मूढतैं नाहि दीठी ॥६॥
चपल बनचरन की जाति चर बोर अति कहा राजान सौ बोलि जाने।
छत्र की छाँह इद्रादि सर थर करे बकत नहिं-धीठ जहाँ सक आंने ॥७॥
करहुँ जिय सक जो अधिक ताकौं गनौ जौ कछू अपनपौ घटि बिचारौ।
भुजन सौं लपटि द्रढ-पाल सब दलमलौ धरनि नभ पत्र ज्यौं फारि डारौं ॥८॥
अवर भटभेर समसेर अघसेर तू आपनौ बल हीये नहिं बिचारे।
कहत परधान महाराज रावन बली मुग्ध कित आप सौ बाघ मारे ॥९॥
पर्‌यो बलि द्वार प्रतिहारि बावन गदा किंकरी कौर दै दै जिवायो।
तात मम पालणै आनि बाध्यौ तवै रहपटन मारिकै उबर ल्यायो ॥१०॥
यह मरम कै बचन सुनि पेद उर मैं भये चटपटी जीयें भ्रुकुटी चढावै।
है कोई सूर सावत मेरी सभा मारिल्यौ मुगध नहिं जान पावै ॥११॥

एक रहपट दीये मुकुट उडे जाहिंगे सभा सब चरन सो चापि डारों ।
बालि को पूत यह सोचि जीय मैं कहै सिच होय मीडकनि कहा मारो ॥१२॥
किहै अपराध उतपात छोटेन कौं बडन को क्षमा भूपन कहावे ।
जान द्यो दूत अबलौं न मारे कहूँ पसुन सौं लरत जिय लाज आवे ॥१३॥
कहै सूरकिसोर हँसि बालिनदन कह्यो कौन अब सीस तो सौं चपावे ।
नैक धरि धीर रणधीर रघुबीर भट देपि तरबारि कैसी बजावे ॥[1]

राग भैरु

जानकी पद रेनि की मोहिं जनमि जनमि आसा ।
अरथ धरम काम मोछि सब बन तेंऊ दासा ॥ टेक ॥
मदगयद अगद हनुमान सरन जासा ।
सिव को ध्यान निगम गान मुनिन को निवासा ॥१॥
सुरग भूतल जोग' भोग ब्रह्म लोक वासा ।
सूर किसोर सब सुष पट बिजन को निवासा ॥२॥[2]

राग पंचम

हठ्ये सिभु को चाप लिय सुभट सब,
पचि रहे तनकहूँ नाहि काहू उठायो ।
कह्यो सिर धुनि न्रिप जनक येह,
जगत मैं नाहि ऐसो वीर कोउ जननी जायो । टेक ।
सुनि बचन लषन म्रगराज मनुं, ऊछल्यो
अगि ऊफणी चली सुभट ताई ।
कह्यो कोदड कर षडि डारू असै,
वक अवलोकि भौंहैं चढाई ॥१॥
अनुज को राषि प्रभु बाँधि कटि, पीत पट,
नाय गुर सीस अनुसीस पाई ।
उदित भयो भाल सोभा अषिल भवन की,
अमित बल तेज गभीरताई ॥२॥

---

१. पदमुक्तावली : छद सख्या १६, ३६ अ, ब, ४० अ
२. पदमुक्तावली, छंद सख्या ८८

मच परभात के भान से जगमगे,
ऊमगिइ सुरज नहिं रह्यो छान् ।
जनक महाराजि मुपचंद कहु दुरि गयो,
ओर भ्रिप देषि ऊडगन मिलान् ।।३।।
उतरि छिबि सो चले अतिहि लागत भले,
कुरष ले दरभ ते जरे जाही ।।
ऐक ही वार दुष भाजि गयो सबन को,
रह गयो तनक सौ धनु तहां ही ।।४।।
अवनि पग धारते मदन मन मारते,
भाट चहुँ बोर ते बिरद बोलै ।
बिना बानेत रघुबस के बाँकुरें.
जनक दुपपाट ओर कौन पोलैं ।।५।।
फबी हैं अलक वह ललित मुष कवल परि,
माधुरी हँसनि सुप सबन दीन्हैं ।
मत गजराज भुज सुडि फेरन जटकि,
चरन लौ ललकि चित चोरि लीन्हैं ।।६।।
सावर कुँवर सिव चाप भजन चल्यो,
बात कहु जाय पुर मैं चलाई ।
पलन के ललन छाडे ललना सकल
कल न परि तनकुहू पल न लाई ।।७।।
रमती झमती अट अटनि मैं बहो,
घटनि मैं भानु छटा चिमक्के ।
हुलसती बगिसती निकसती देत छवि,
उडत अचल चपल अँग दमक्के ।।८।।
हे सषी ! हो सषी हो ननद आवरी
सास किवु भ्रात भगनी बुलावे ।
है वडो चावरी दमकि चलि आवरी
साँवरे धनस कैसें उठावैं ।।९।।
मानु आनद को मेह बरस्यो नगरि
तरजि भामनि चलीं गलिन माँही ।।
प्रेम जल तीर तुव हो तुरत आतुर,
चली अगि मुपन मुकर झलमलाई ।।१०।।

सुरवधू ठोर ही ठोर सब जाँनि चढि
प्रेम बेहवल भई अति सुहाई ।।
हरषती बरषती फूल रघुवीर परि
निरषिती बदन लेती बलाई ।।१६।।
रूप की रासि सीरमोर राजांन के
देषि सीये मान हीवरो सीराणू ।
ऐहु कुँवर लाडिलो होय जु कुँवरि को
सुफल करि जनम बड भाग मान्यो ।।२०।।
सीये कें सवति सकलप मेरे करनि
मात को पूत अैसो जनैगी ।
एहु म्रदुल कमल सौवेहु वज्र कठिन
सोहा दई बात कैसें बनेगी ।।२१।।
होहु जनि हारि कहु नारि धीर न धरे,
ज्यो ज्यों प्रभु धनसके निकटि आवें ।
आपनु आपनु पुन्य फल दान दे
लोग सब देव देवी मनावे ।।२२।।
कोहु देषौ न जान्यो नही कब गहयो
राम सिव चाप अैसे चढायो ।
अति विक्राल महासाल तिहुँ लोक को
तनक में तोरि धरनी गीरायो ।।२३।।
डोगमगे धरनि सिसि तरन हूँ थरसलै,
कमठ सिव सेसहू कलमलाये ।
सुरग पाताल द्रगपाल सागर झलकि
गाजि ब्रैहमड सब डगमगायो ।।२४।।
नगर नभ माँहि नीसान बाजन लगे
बीजे की रीति कुँवरि राम लीन्ही ।
जानकी आय परि पाय करि कूँवल सू
लाल कूँ माल पहराए दीन्ही ।।२५।।
उठि गये भूप सब बदन करि करि बुरो,
जनकपुर राम सीए व्याह ठान्यो ।
व्याहि प्यारो कुँवर आय कयसल नगरि
सूर किसोर तिहुँ लोक जान्यो ।।२६।।

हर्याचार्य

ये रसिक सम्प्रदाय की मूल गद्दी गलता के पीठाधिपति मधुराचार्य के शिष्य थे। सस्कृत तथा हिन्दी दोनो भाषाओ पर इनका समान अधिकार था। पहले गीत गोविन्द के आदर्श पर कोमलकान्त पदावली मे रचित 'जानकी गीत' नामक इनके ग्रथ का उल्लेख हो चुका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी मे इनके कुछ फुटकर पद ही प्राप्त थे। 'पदमुक्तावली' मे 'राम विवाह' शीर्षक मे एक खड काव्य भी है, तीन पद इसके अतिरिक्त हैं। प्रथम मे जनकपुर मे रामजेवनार, दूसरे मे आराध्य युगल का रूप लावण्य और तीसरे मे नखशिख वर्णन है। पूर्व प्राप्त दोनो पदो मे 'हरिसहचरि' छाप दी गई थी, किन्तु इन तीन पदो मे 'हरिया' 'जन हरिया' तथा 'हरिया सखी' छाप रखी गई है। 'राम विवाह' वाले प्रसग मे भी 'जन हरिया' छाप है। यह प्रसिद्ध है कि हर्याचार्य की 'रामविवाह' मे विशेष निष्ठा थी। कहा जाता है कि अपने जीवन काल मे इन्होंने रामविवाह के अवसर पर बार बार बडी धूमधाम से 'रामलीला' करवाई थी। प्रस्तुत चारो रचनाएँ इनकी उक्त प्रवृत्ति की पोषक हैं। अत उन्हे गलतागद्दी के विख्यात शृगारी रामभक्त हर्याचार्य की रचना स्वीकार करने मे कोई कठिनाई उपस्थित नही होती। उक्त चारो छंद यहाँ दिये जा रहे हैं—

राग सारंग

मिलि जीमत राम जनक मन्दिर बिचि सुन्दर नारि जिमावतु हैं।
च्यारौ भईया थाल जुरि एकै कवला लेत मुचि पावतु हैं ॥टेक॥
नवल-नवल मिलि नवल नागरी पुरवधू सब जुरि आवत हैं।
षवइन निरषि अति मन हरषत रस भरि गारी गावतु हैं ॥१॥
चतुरानन सिव सारद नारद जनह्नु के ध्यान न आवतु हैं।
कहै 'हरिया' त्रिया धनि जनक की हँसि-हँसि लाड लडावतु हैं ॥२॥[1]

अथ श्री सीताराम जी को स्वयंबर लिष्यते ॥

राग पर जमारू

श्री गुरु चरन सरोज को जू सुमिरि नवावूँ सीस।
पहिलैं गुरु परसन भये जू प्रसन्न हुये जगदीस ॥
प्रसन्न हुए जगदीस जगत गुरु श्रीपति रघुवर राई।
बाल चरित बरनौं सुभ जिनको पीछैं ब्याह बनाई ॥१॥

---

१. पद मुक्तावली, छंद सख्या ३१।

बहुर्यो श्री गुर चरन कवल कौं बेर-बेर सिर नाऊँ ।
चरित मनोहर श्री रघुवर कौ बाल केलि कौ गाऊँ ॥
छगन मगन प्यारौं राजवी जू जनक सुता हित दाय ।
किलकि-किलकि लरपरनि सौं चलत घुटरुवन धाय ॥
छगन मगन प्यारौं ही भाई जनक सुतनि हित दाई ।
बाल विनोद चाहि सब जननी आनन्द उर न समाई ॥
रतन जटित नृप सदन अजिर मधि विहरत बाल सुभाई ।
बाल केलि तिन की गति निरषत 'जन हरियौं' बलि जाई ॥२॥
प्यार कुँवर बडराईज जू प्यारौं अति सुकमार ।
राजिबनैन सुहावने जू बिहरैं नृप मन मझार ॥
दोय गोर दोय नील बनजतन राजत रूप उदारा ।
पीत झँगूली सीस चौतनी उर मोतिन कौ हारा ॥
कटि तटि किंकिनि रटत मनोहर पद नूपर झुनकारा ।
राय आँगन मैं राजकुँवर मिलि प्यारो करत विहारा ॥३॥
नृप दशरथ के लाडिले जू बिहरत अवधि मझार ।
सग सषा लीयैं जोरि कै जू सबही ऐक उनिहार ॥
बाल केलि के ललित विभूषन फवि रही छवि असभारी ।
कटि तूनीर पीत पट सोभित करवर कोदँड धारी ॥
सुर नर मुनि जन पुरबासिन कौं बिपुल सुआनन्दकारी ।
नृप दशरथ के कुवरन ऊपर 'जन हरियौ' बलिहारी ॥४॥
रघुकुल मणि प्यारौ राजई जू बिहरत सरजू तीर ।
कटि तटि भाथ सवनि रहे जू सारग धरे रघुबीर ॥
सारग धरे रघुवीर विभाकर सोहै गुण निधि गभीरा ।
जन मन करषत आनन्द बरषत बिहरत सरजू तीरा ॥
इहिं विधि विहरत निकर सषा लियैं निगमहूँ पार न पावैं ।
निरषि केलि कला श्री रघुवर को पुरजन मनहि सिहावैं ॥५॥
दशरथ सुत प्यारौ देषनैं जू आऐ रिष अवधि निकेत ।
राम लषन मन मैं बसे जू बरनत श्रुति सनेत ॥
तिन की कीरति गुन गरवाई बरनत श्रुति सनिकेतू ।
दई आसिषा रिषवर नृप कौं जीवे जिग सिधि हेतू ॥
बारे सुत रिषवर कौं देतैं सकुचे दशरथ राई ।
प्राननहूँ तैं अधिक पियारे तातैं दीये न जाई ॥६॥

तब बोले रिषराजजू जी कीये मुनि बेद उचार ।
सुनहु बचन बड भूपती जू करि नीहचै निरधार ।।
राकस कुल कौं जीति अवधिपति ये हरि हैं भू भारा ।
सिधि करें मम जिग कौं निहचें ऐ दोउ राजकुमारा ।।
कल कीरति रघुपति की भू पर ए करिहैं बिसतारा ।
इनमे गुण सु अपार अमल सुठि कहि कोउ लहत न पारा ।।७।।
इह सुनि कें नृप हरषियौ जू दीये सुत रिष कीहौ लार ।
'जन हरीयौ' तिन ऊपरें जू बार्यौ बारवार ।।
दशरथ भूप हरषि कें रिष को दीयो कुँवर दोउ भाई ।
चले हैं चाप असन धरि धरिकें सोभा बरनी न जाई ।।
पीत वसन गज तार हार उर भूषन अग छवि छाए ।
सुन्दर सुष की सींव मनोहर रिष सग लगत सुहाये ।।८।।
रिष कें सग मग मैं चले जू दोउ बर वीर उदार ।
बला अतिबला विद्या निपुन्य जू कीये दोउ राजकुमार ।।
ताही अवसरि नाम ताडिका आई बन करत बिहारा ।
श्री रघुवर अस लषी राकसी कीनौं धनुष टकारा ।।
अँचि वान उर वेध्यौ रघुवर मुष चली रुधिर की धारा ।
निकसे प्रान छिनक मैं ताके लागे मरम सुभारा ।।९।।
देषि पराक्रम राम को जू रिष हरषे बारवार ।
माधुरी मूरति बड हरष सौं जू लाये उर प्रान अधार ।।
अतुल प्रताप देषि रघुवीर को हरषे रिषवर राई ।
मम जिग्य कौ ये पुरन करिहै निहचै मन मैं आई ।।
जगत ईस तिनते सग लागे धन्य रिष भाग निकाई ।
कौसलेस के कुँवरन ऊपर 'जन हरीयौ' वलि जाई ।।१०।।
चलि आश्रम रिष कें गये जू सुन्दर वीर उदार ।
रिष आरम्भ जिग्य को कीयो जू आये और रिष अपार ।।
जिग्य मधि वैठे सब रिषवर कीनौं वेद उचारा ।
ताही छिन मिलि कें दोउ राकस आए दुपहरी बारा ।।
श्री रघुकुल मणि लेप निसाचर कीनो कोदड कर धारा ।
दोय बान लै साधे रघुवर वेधे भरम सुभारा ।।११।।
एक बान लग्यो मारीच कै जू डार्यौ सिंधु मँझारि ।
दूजो लग्यो हैं सुबाहु कै जू मरत न लाई बार ।।

मख उद्योग कीनो जग्य रक्षा बीरासन सउदारा ।
सात बरस के दशरथ नन्दन हरे राक्षस सू मारा ॥
पोहोप वृष्टि वृन्दारक कीनी बाजे दुंदुभि बाजा ।
हरषे गुर मुनिवर धनभागी गयो रिषवर को धामा ॥१२॥

हरषे हैं रिषवरराय जू जो भए मन भावनो मोद ।
श्री चतुरानन नां सहै जू सो रिष कीने गोद ॥
कीने गोदहि रिषवर जू ने नेह लागि दोउ भाई ।
कोसलेश के कुँवर सुन्दरवर पूजे रिषवर राई ॥
मिथलापुर मिथलेसुर जिग को हित सो कथा सुनाई ॥१३॥

जनक सुयम्वर ठानियो जू सीताजू को ब्याह ।
कुँवरि बिवाहन कारने जू कीयो नृप बहुत उछाह ॥
सुर जुरे रसाल भूतल के नर सूर बीर अधिकाए ।
धनुष जग सुनि जनक राज को देखन कों चलि आए ॥
देश देश के भूपति मिथुला आये जग्यउमाहे ।
शिवधनु धारि खेंचि कें सजै सोई कुँवरि बिवाहे ॥ १४ ॥

फिरि बोले रिषराज जू जी चलो हो तो देखन जाय ।
मिथुनेसुर बहु भाँति तें जू सनमुख मिलि है आय ॥
तुम कों लखि मिथुलेसुर भूपति पूछि है नेह सुभाई ।
भूपन मे रघुबंश राय जग बड़ि हैं अधिकाई ॥
मधुर बचन सुनि मुनिवर जू के हरषे दोन्यो भाई ।
मिथुलापुर के जिग्य की देखन मन मे ऊमजि आई ॥ १५ ॥

मुनि के संग मिथुला चले जू श्री अवधेश के लाल ।
पीत बरन कटि काछनी जू हाथ सर चाप रसाल ॥
करने कनक कली सीस चौतनी मृग मद तिलक रसाला ।
नाना रंग सुहावन सुन्दर उर कुसमनि की माला ॥
मुनिवर मन के मोद बढावन राजीव नैंन बिसाला ।
'जन हरियो' बलि सोभा ऊपर मानों मग चलत मराला ॥ १६ ॥

गौतम के आश्रम गये जू श्री रघुवर पाँवधारि ।
आश्रम देखि सुहावनो जू बोले बचन विचारि ॥
आश्रम रम्यो कौन को रिष जू कहिये विधि सुविचारी ।
विटपनि करि अति हरित मनोहर सोहै सुमन फलभारी ॥

अति रवनीक सुहावन आश्रम सब विधि आनद दाई ।
हीन रहत मृग पछी कुल बिन हम कौं कहौ सुनाई ॥ १७ ॥
तब बोले रिष राजजू जी कुवरन के हितकारी ।
आश्रम रिष गौतम कौ जु श्रापी अहल्या नारी ॥
चरन रति वाँछित है नित प्रति चलो सु यावौं तारी ।
कीरति होय तुम्हारी भूपर उधरिहै रिष की नारी ॥
मुनि वर नारी उधारी रघुवर पति पै लोक सिधाई ।
जन हरीया श्री राम चरन भजि अमलस्र आनन्द दाई ॥ १८ ॥
मिथुलापुर मुनिवर गये जू बैठे रिष वाटिक जाय ।
पूजा द्रव्य विधि सौं लिये जु आये मिथुलापुर राय ॥
करयौ प्रणाम भूप रिषवर कौं पूजो न्हैं विविध सवनाई ।
राम लखन दोउ देषि जनकजू पूछे रिषराज गुसाई ॥
कौन भूप के कुवर छबीले अतिसै आनन्द दाई ।
जिनही नाउ लगत सुहावन मुनिवर ए दोउ भाई ॥ १९ ॥
तब बोले रिषराज जु जी मन मैं अति मनिगाई ।
सुत दस अवधिपुवाल के जू मूरति ए दोउ भाई ॥
प्रथम निसारी नाम ताडिका रघुवर सर सैं मारी ।
मम सिष्य कौ दैन दुरत कीनो हति तारग दुखदाई ॥
धनु मौषि रिषवर पत्निनी को आसु मन कोदण्ड चाई ।
राम लखन हरि नाम धनन जू इनमें गुन गरवाई ॥ २० ॥
फिरि बोले रिषराज जू श्री निज को सकल सुनाय ।
धनि सरासन सम्भु को जू दिखो हमको आय ॥
यह सुनि के हरषे मिथुलेसुर दीने भट तुरत पठाई ।
रिषवर जू को नेह मानि के बोले बचन सुनाई ॥
चाप चढावै रामचन्द जू चाप तोरि को भाई ।
मम आज्ञा कुँवरि जानकी देहु इनको समता भाई ॥ २१ ॥
तब हरषे मिथलापुर को कुँवर गनेस गुसाईं ।
हँसि के राम उठाइ सो जू निज धिगरे दोउ भाई ॥
धुरन्धर हरषे अनन्द बाढ्ये मन मैं सब सुख मानो ।
धा बढ़ी रघुवर चाप चढ़ावै होत अमात्य सानो ॥
धनुष तूर बहु भाँति [illegible] करि [illegible] लाये ।
[illegible] कुँवर दशरथ के जिन्ह [illegible] ॥ २२ ॥

रघुकुल दीपा जिम्य मैं जू बैठे बड मच बिछाय।
रिषवर जू की गोद मैं जू लागत परम सुहाय॥
कोमल तन दोउ राजकुँवर वर सोभा बरनी न जाई।
सहस किरन कौं सग ले सोभित मानौ रवि जगे आई॥
तिहि अवसरि दोउ कुँवरन निरख रहे नर नारि लुभाई।
हरषि हरषि दोउ कुँवरन ऊपर जन हरीयौ बलि जाई॥ २३ ॥
देस देस के भूपत जू होने जिग्य मझारि।
महा सुभट सस्त्र धरैं जू आये साजि सिंगारि॥
करहिं रोष अति देषि चाप कौं धारैं भुजा पसारी।
चाप चलत नहिं नेंक अवनि तैं चल पचि पचि हारी॥
केते गये बिसारि दाप कौं भूप लजय मुखाई।
महा निलज ते लाज बिहूने रहे अभिमान धराई॥ २४ ॥
पच दस सहस्र भट लागि कैं जू ल्याये चाप चलाय।
बहु घटनि भूपित कीयो जू धर्यो है सभा मे आय॥
दससिर आदि सहस्र भुज से भट कोउ न सक्यौ उठाई।
भव बड दाप ताप तैं सकित केते गये पलाई।
भूप देषि ता महा चाप कौं केते भूप पलाए॥
जन हरीया ते पुनि पुनि सोचत जैसें बित्त गमाए॥ २५ ॥
सोचे हैं जनक भुवाल जी लीनें नृप भाट बुलाय।
सुमति विमति दोउ सुनत ही जू आये बेग चलाय॥
तिहि अवसरि दोउ भाट सभा मधि लीनी भुजा उचाई।
सुरगुर रसातल भूपालन सो बोले बचन सुनाई॥
सुनौं सभा के सबै भूप मिलि मिथुलेसुर पन सोई।
चाप चढावैं गिरजापति कौं सो कन्या बर होई॥ २६ ॥
सुभट नही कोउ तुम मही जू सक्यौं नही चाप चढाय।
काहे कौं तुम आईयेजू जैहौ लाज गमाय॥
सुनत ही बचन भाट को लजि कै भूप गये मुरझाई।
तिहि अवसर रघुकुल के मडन हरषे दोऊ भाई॥
रिषवर 'सहत कुवर दोउ हरषे भूप सबैं बिलषानैं।
हस उदैतें भौर भये मानौं सारँग फीक फिकानै॥ २७ ॥
भाट बचन सुनि रोष के जू बोले हैं लषन रिसाय।
रघुबसनि कौं सुनत ही जू अैसें कोउ कहत न काय॥

मो कौं आग्या दीजै रघुवर लैहौं तुरत चढाई।
छत्र क दड सम न जों सरासन तो हो बीर कहाई॥
तुम आग्या भगवान भुवनपति द्वयौं ब्रह्मांड उडाई।
जर जर जठर मनाक सम्भु कौ कौ अस कोदड आई॥ २८ ॥
श्री रघुवर तव लषन कौ जू वरजे हैं सहज सुभाई।
रिषवर आज्ञा पाइ कैं जू ऊठे हैं रघुवर राइ॥
श्री रघुबर अस जानि लषन कौं बरजे हैं सैन सुभाइ।
अग्या पाय राज रिष जू की उठे हैं रघुराई॥
उठे हैं रघुकुल बस बिभाकर हरषे हैं सत सरोजा।
कुमद बिमन भये अस्त अवनिपति मिटि गयौ सब को बोजा॥ २६ ॥
कोतुग देषन राम कौ जू आये पुर के नर नारि।
चढ़ि चढि मन्दिर मालिया जू त्रिय डारैं भूषन वारि॥
नैंन निरषि दोउ कुंवर लाडिले हरषें वारौं वारी।
मिथुलापुर की नारि नेह लगि तन की दसा बिसारी॥
चित्र समान भये नर नारी पल सौं पल नहिं लावैं।
मिथुलापुर जन भाग की महिमां ब्रह्मादिक नहिं पावैं॥ ३० ॥
छबीले कुँवर दोउ देषि कैं जू हरषी सब पुर नारि।
आनन्द उर न समांवई जू रघुवर रूप निहारि॥
रूप निरषि आनद भयो जू सब कै ज्यूं सफरी लह वारी।
भामिन दोऊ कुँवरन ऊपर तन मन करै सु वारी॥
रूप निहारि कुँवर रघुवर कौ जुवती अैसे आनैं।
कुँवरी कौ वर होहि सावरो जोर विधाता वानैं॥ ३१ ॥
नारी मनावें देवता जू हरिहर गणपति राय।
चाप चढ़ावै राम जू जी कीज्यौं सवही सहाय॥
आजि लगैं पूजे नाना विधि हम जो हेत लगाई।
चाप चढावैं श्री रघुवर जू कीज्यौ बेग सहाई॥
नारि सबै मिलि देव मनावैं बेर बेर सिर नावैं।
होय मनोरय पूरन हमरो रघुवर चाप चढावैं॥३२॥
सौचत पटनी जनक की जू सपीयन सहज सुभाई।
नेम कठिन भूपति लीयो जू जो कोउ वरजै जाई॥
कठिन नेम लीनौं बड भूपति जो कोउ वरजै जाई।
ललो जोग वर कुँवर सांवरो सब भूपन को राई॥

अैसें पिछताय जनक की रानी रघुवर रूप निहारी।
दीरघ धनुष कुँवर अति कोमल बनी कठिन अति भारी ।।३३।।
चतुर सषी बोली नेह सौं जू सुनो रानी बचन सुहाय।
कहाँ वारिनिधि बडो अगम अति कहाँ अगस्त मुनिराय।
कहाँ वारिनिध अति बडी जू कहाँ अगस्त मुनिराय।
सकति प्रताप सकल सरितापति अँचें गये सहज सुभाय ।।
सप्त दीप किन महा मेदनी वित रवि मंडल सोई।
व्यापि चराचर तेज दसौं दिसि अमल प्रकासक होई ।।३४।।
यौंही रघुवर धनुष को जू तोरि हैं लेहैं तुरत चढाई।
ससय मन मे जिन करो जू होयहैं जू यह सति भाई ।।
सषी बचन सुनि अति सुष पायौ उपज्यौ आनदभारी।
हरषी नारि जनक की मन मैं हरषी जनक कुमारी ।।
इहि विधि करत विचार जनक तिय रघुवर छबिहि निहारैं।
निज कुलदेव मनावत रानी तन मन धन सब वारैं ।।३५।।
कुँवरी झांकि गोषनै जू कर बर माला धारि।
रघुवर रूप निहारि कै जू रही मन सोच बिचारि ।।
सब सषीयन सौं कह्यौ कुँवरि यो कोमल वचन उचारी।
वरिहैं कुँवर साँवरो सुन्दर चाप चढावो कोउ धारी ।।
इहि विधि कुँवरि कह्यो जो तिन सो अस जो भूप दिखावा।
राजकुँवरि वर्यौ सांवरो कोउ दुदुभी बाजे हरषे हैं जनक भुवाला ।।३८।।
तब मैथुलपुरराजजू जी कह्यौ रिषवर सौं जाय।
अवधेपुर भूपाल कौं लीजे वेगि बुलाय ।।
मुनिवर कह्यौ जनक सौं इहि विधि कीजै वेगि उपाई।
नृप रिषवर की आग्या पाई पाती लिषी है बनाई ।।
स्वस्ति स्वस्ति रघुकुल के मंडन श्री कौसलपुर राई।
दोउ कुँवरन कौं संगि ले भूपति आवो जान बनाई ।।३६।।
पत्री लिषी है सनेह की जू दीयो नृप दूत पठाय।
चाल्यो दूत उतावलो जू अवधि पहूँचो आय ।।
पत्री आय भूप दशरथ कौं दीनी सीस नवाई।
बाँची हरषि नेह लगि हित सो श्री अवधेपुर राई।
कौसल्यादि मात सुन हरषी पत्री जनक पठाई।
हरषे फिरत सकल पुरवासी राम लषन सुधि आई ।।४०।।

बाजत अवधि बघावनी जू भूपति दशरथ द्वार ।
हाटक मणि गण दूत कौ जू राणिन दीनें हार ॥
पुर के तरुन जठर नर-नारी मन अनमोद न भावै ।
मगलचारु ब्याह कौ ग्रह ग्रह बाजत अवध बघावै ॥
सजी बड जान सुहावै अवधिपति सोभा बरनी न जाई ।
हय पय गय रथ विविधि भांति के चतुरग सेन बनाई ॥४१॥
बड गैंवर रथ राजई जू सजी नृप जान सुहाई ।
हय दल पय दल धुमराजू लागत परम सुहाई ।
धुजा पताका फरहरै छवि सौं परल निसाना घाई ।
इहि विधि रघुकुल मडन भूपति मिथुला पहुँचे आई ॥
हरपे फिरत जनकपुर वासी सजहिं समगल साजा ।
बड मगल यौं मिथुलापुर मैं बाजे मगल बाजा ॥४२॥
सोहेलौ अवघेस के जू आये मैथुलपुर राय ।
गज सिंधू रथ राजई जू बहु विधि साज बनाय ॥
पुरजन सगि गुरजन मिलि आये दरसन हेत सुभाई ।
बाजे विविधि बजावहिं गायक नटी अस नृतत चाई ॥
सोहिलै अवधेसुरजी वै श्री मिथिलापुर आये ।
परम उछाह सदन सोभा जुत तहा विधि सौं पधराये ॥४३॥
रिषवर कौं अवधेस जू मिले हैं अति हित लाय ।
रिषवर दोई राजई जू मेले भूप दशरथ पाय ॥
पदबदे मुनिवर के भूपति बेर बेर सिर पाय ।
राम लषन दोउ लाडिले लीनो उर सौं लाय ॥
दोउ कर जोरि भूप रिषवर की कीनी बहुत बडाई ।
नेह सगाई जनकराज की तुम किरपा सौं पाई ॥४४॥
मिथिलापुर मंगल भये जू हरखे सब नर नारी ।
बीथी बगर चौहटा जू रापे हैं सबन सुधारी ॥
धामीकर गच चित्र लेपना चौक पूरे सुत वारी ।
रगरमा सुक केकि कोकिला चित्र हैं निकर सँवारी ॥
भूपति भवन जगमगें जटि सोभा बनी अस भारी ।
तोरण मणिगण जटित कनक के रापे हैं गोपुर धारी ॥४५॥
तोरण चले है सलाडिले जू रघुवर राजकुमार ।
रतन जटित सिर सेहरा जू हीरा मोती सुबस सार ॥

पहरें कुवर केसर्या जामा उर मोतीयन के हारा ।
अस्व आरोहन दसरथ नदन जान बनी इकसारा ॥
मगल कलस सीस धरि भामनि नीराजने आई ।
तिहि औसर रघुकुल मडन पर जनहरीयो बलि जाई ॥४६॥
कुवरन को करै आरत्यो जू जौती जन बारीबार ।
भामिनि चढि चढि मालिया जू गावैं मगलाचार ॥
जलसुत कुवरन उपरें जू सुदरि मनु वरपे जल धारा ।
वृन्दारक पे निरपि हरषैकें वरषत कुसम अपारा ॥
तोरन बाँधि विपुल सोभा सौं फिरि जनवासें आये ।
जनकराय बड सोधि महूरत चार्यो कुवर बुलाये ॥४७॥
चौरी चढे हँसि लाडिले जू बैठे मडप तर जाय ।
वसिष्ठ मुनि त्रिस्वामित्रजू जी सतानद बैठे हैं आय ।
अवधेसुर मिथलेसुर दोऊ लीने भूप बुलाई ।
कुवरन बावें बोर वेद विध लाइ कुंवरि पधराई ॥
अतुलत छवि धरि कुंवर लाडिले बैठे मडप आई ।
दूलह दुलहिन सोभा ऊपरि जनहरीयो बलि जाई ॥४८॥
जनकराज बड हरष जू धोये रघुवर पाय ।
सो जल लैं निज सीस मैं जू धार्यो नेह सुभाय ॥
फिर बोले मिथलेसुर भूपति कोमल बचन सुनाई ।
मैं तुम को मम कुंवरि जानकी दीनी है रघुवर राई ॥
जनकराज बड अमल हरष जुत कीनी बहुत बडाई ।
च्यारो कुंवरि च्यारो कुंवरन को दीनी मैथुलराई ॥४६॥
सीता अरपी राम को जु उरमिला अरपी सेष ।
श्रुतिकीरति सत्रुधन को जू माडवी भरथ बसष ॥
इहि विधि भूप कुंवर को करगहि कुंवरी पाणि गहायो ।
भव चतुरानन दुर्लभ दरसन सो बर चौरी आयो ॥
बरनो कहा सो औसर को सुख भारती बरन न जाई ।
के जानै तिहि समय निकट जन कै दोउ भूपति राई ॥५०॥
वसिष्ट कहैं देषो जनक को जू धनि वड भाग विष्यात ।
सीता सी निज पुत्रिका जू रघुवर से जामात ॥
भव चतुरानन ध्यान न आवें निगमहु अगम बतायो ।
अकल अपार अनीह अगोचर सो बर चौरी आयो ॥

नीरस ज्ञानी लहै न सुपनै तपसी तप करि हारे ।
जनकराज निज कर पद धोये, तोय सुसीतल धारे ॥५१॥
वसन गाठि रिपराजजू जो दीनी है विधि सोवनाय ।
पाणिग्रहण कीनै परमपरजू लागत परम सुहाय ॥
कनक कलस विचि राप्यौ विधि सौ मुनीयन चौक पुराई ।
साकलिसमिध मगाय तिहूँ मुनि कीनौं हो मखु आई ॥
वेद रीति करि मुनिवर हित सौं पाणिग्रहण करवायौ ।
जातवेद कीयो जुगत मत्र करि फेरा कु कुँवर उठाये ॥५२॥
दुलहिन सग लेत भावरि जू दूलह राजकुँवार ।
बहु विप्रन को सग लीये जू करै मुनि वेद उचार ॥
अटनि झरोपा नवल भामिनी गावैं मगलचारा ।
हास्य करै नवछावरि मणिगण मुक्ता वारौवारा ॥
वेद रीति करि दई भावरी फिरि आसन बैठाए ।
भई हथलेवौ छोडन बिरिया मुनिवर जनक बुलाए ॥५३॥
हथलेवौ बहु विधि दियौ जू श्री मैथुलपुर राय ।
जनक कनक नग बहु दीयें जू बरनि सोकासौं जाय ॥
भूपति निरपि कुँवर कुँवरी कौं आनद उर न समाई ।
रानी हरप न मावैं मन मैं वेर वेर बलि जाई ॥
जनकराज गड वेदरीति करि हथलेवा सछुडाये ।
पत्नी कुँवरि मिथिलेसुर जू की अमर पहुप कर पाये ॥५४॥
भूपति बोले जीव नें जू श्री मैथुलपुर राय ।
धन मोला अति सोहना जू आसन दीये हैं बिछाय ॥
चौकी जटित रतन मणि मुक्ता धरी सब आगें आय ।
झारी भरी है नीर सीतल सौं मोबरन थाल सुहाय ॥
च्यारौं कुँवर सहत अवधेसुर सोभित जान सुहाई ।
मिथलेसुर माढे याहि विधि जीमन बैठे आई ॥५५॥
निकर नृपन को सग लीये जू परोसै तिरोहितराय ।
बहु पक्वान समालना जू गिनीय सोकारै जाय ॥
भश भोजि अर लेह जि चोपि गुरचि बहु भाँति बनाई ।
षट पट्टैनो तिरोहित पति की बो अस बरान सुनाई ॥
कनक जोराई मोयकोर कन्यौ हीरजोति सुपदासा ।
झिनवा दौन प्रमाद बमोदा सगरौ परम सुवासा ॥

मूगदारि औदारि उरद की तूरस दारि बनाई ।
दही चगर्या जम्यौं सरस अति चिवरा सकर मिलाई ॥५६॥
मुगोरी मन भावती जु पापर चनक पतार ।
दहिय वटक अरु बिन दही जू सालन अगिनत और ॥
नींबूं आब अरु केर अथाभो बहु विधि धर्यो बनाई ।
अदरष रुचिर अमरकद अरई वेसन भटा सुहाई ॥
किसमिस दाष केलि फल पारिख विविधि भाति धरे आई ।
अमृत फल सहतूत सेव फल कमरष अति रुचिदाई ॥
जनक रतन जटि बिजना ढोरैं नेह न बर्न्यौं जाई ।
जनक राय कें नवल नेह सौं जीमत रघुकुल राई ॥५७॥
दूलह रामलला तोहि गारी कहा कहै दीजे हो ।
दूलह राम लला तुमरो रूप निरषि कें जीजे हो ॥५८॥
दूलह राम लला तुम जबतें इहि पुर आये हो ।
दूलह राम लला हम धाम काम बिसराये हो ॥५९॥
दूलह राम लला ये तौ धनि पितु मात तुमारे हो ।
दूलह राम लला सो तो समधी भये हैं हमारे हो ॥६०॥
दूलह राम लला तुम तपस्या करी सँभारी हो ।
दूलह राम लला तैं चौरी चढे हमारी हो ॥६१॥
दूलह राम लला तुमरे मात पिता दोउ गोरे हो ।
दूलह राम लला तुम सावरे रूप किसोरे हो ॥६२॥
दूलह राम लला एक अचरिज देखत भारी हो ।
दूलह राम लला तुमरे वीर और उनिहारी हो ॥६३॥
दूलह राम लला रानी कहा पाय तुम जाये हो ।
दूलह राम लला भूपन के भूप कहाये हो ॥६४॥
दूलह राम लला कुमकुम कुल देव मनाये हो ।
दूलह राम लला सब देखत चाप चढाये हो ॥६५॥
दूलह राम लला जाको सकल भूप पचि हार हो ।
दूलह राम लला तुम पड षड करि डारे हो ॥६६॥
दूलह राम लला तुम सु तु सनधाने गारी हो ।
दूलह राम लला सो तो सत जनन क प्यार हो ॥६७॥
दूलह रामलला गारी गावैं जनक पुर नारी हो ।
दूलह राम लला तहां जनहरीयो बलिहारी हो ॥६८॥

जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावैं गारि सुहाय ।
सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष बरनि न जाय ।।
जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावैं गारि सुहाय ।
सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष वरनि न जाय ।।

समधानैं जीमत रघुकुलमणि भामनि गावत गारी ।
भूप कुवर सुनि अति सुष पायौ उपजत आनन्द भारी ।।
जीवँत राम जनक के मडहै नारि गारि दै गावैं ।
दस सत बदन निगम चतुरानन सोउ पार न पावैं ।।

भई सबउ ज्योनार सपूरण अचवन जनक करायौ ।
पनवारो श्री रामलषन कौ जनहरीयें तहाँ पायौ ।।६६।।
दूधा भाती पेलही जू जनक सुसदन मझारि ।
अति मीठी मन भावती जू गावै नूतमनारि ।।
पेलैं कुवरी कुवर सुदर बर बाढे सुष सुघ वारी ।
निरषत भामिन मन मैं वेर वेर वलिहारी ।।
जूवा पिलावैं सुदरि वहु विधि मगलचार सुगावैं ।
दूलह दुलहनि सोभा निरषत जुवती हरष न मावै ।।७०।।

दूलह दशरथ लाडिले जू बैठे नृप भुवन मझारि ।
नवल नवल मिलि ता गरी जू भई अति भीर समारि ।।
डोर छुडावै भामनि हित सौं गावैं रस भरि गारी ।
छोडै डोरि दुलहनी दूलह पुनि पुनि हरषै नारी ।।
भामिनि कहै हासि करि इहि विधि लेहुस डोर छुटाई ।
सीय डोरन चित्त चोरन रघुवर तुम पै छोरिन जाई ।।७१।।
छोडो हो रघुकुल के रांय छोडो हो सी जन सुपदाय छोडा जी दूलह डोरनु ।
जो नही छूटै डोरनु अपनी सब मात बुलाय अर्पनु ।
लाला तात बुलाय छोडो कुवर बर डोरनु ।।७२।।
जो नही छुटै डोरनौ अपनौ सब गोत बुलाय ।
अपरु कुल देव मनाई छोडो कुवर वर डोरनु ।।७३।।
जो नहीं छूटै डोरनो अपनी भुवा भैन बुलाय ।
दूलह हो लागो दूलहनि पाय छोडी रसिकव डोरनुं।।७४।।

नारि सबै मिलि हरष मुं जू गावत रस भरि गारि ।
उर आनद सनेह सो जू वारि वारि पीवत वारि ।।

मिथुलापुर की नारि सबै मिलि गावत रस भरि गारी ।
प्रेम बचन सुनि त्रिभवन नायक ईस्वरता जु बिसारी ॥
बोले अल बल नवल भामिनी कोमल बचन उचारी ।
जो नही छूटै डोर लाडिले तो बोलो महतारी ॥७५॥
छोडो डोरसु, लाडिले जु कर कछु बल उपजाय ।
डोरन चित को चोरनो जू तुम पैं छोड्यो न जाय ॥
पहन होय सारग लाल जू ताहि तुम लेहु चढाई ।
कै बोलो जननी कौसल्या कै बौलौ दशरथ राई ॥
इहि बिधि हासि करै जुवती जन गावत गारि सुहाई ।
डोरो हसि कैं दुलहनि कर सौ छोड्यो है रघुवर राई ॥७६॥
अरस परस छोडे डोरनौ जू रघुवर जनक कुंवारि ।
आनद उर न समाई जू हरपी जनक की नारि ॥
रघुवर बदन निहारैं रानी भागि सुफल करि पायौ ।
निकर नारि मिन्निन बिल नेह सौं कांकन डोर छुडायौ ॥
राम लछन अरु भरथ सत्रुघन परने-च्यारौं भाई ।
नृप दसरथ के कुवरन ऊपर जनहरीयौ बलि जाई ॥७७॥
रघुबसी दूलह लाडिले जू दुलह प्यारी बलिहारि ।
हरपि हरपि लीय वारना हो मिथुलापुर की नारि ॥७८॥
रघुबसी दुलह लाडिले हो सोमा थारी धन उनहारि ॥
मजुल मूरति माधुरी हो धनि इन नैन निहारि ॥७९॥
रघुबसी दूलह लाडिले हो दूलह थोरा धनि परवार ।
धनि दशरथ धनि कौसल्या हो जाये तुम राजकुमार ॥८०॥
धनि रिषि बांधनि जमकू जू हो आये तुम उनकै हो माय ॥८१॥
मिथुलापुर की नारि सबै मिलि सभरि बचन उचारैं ।
अपनौ भाग सराहत भामनि रघुवर बदन निहारैं ॥
नेह बिबस ह्वै उझकि झरोपनि प्रेम मगन भई नारी ।
जनहरीया दूलह रघुवर छवि पर बेरि बेरि बलहारी ॥८३॥
बोले है दसरथ माडहै जू श्री मैथुलपुर राय ।
प्यारि पिलग नग मनि जरे जू दीने मधि बिछाय ॥
च्यारो कुँवर दुलहनी प्यारौं बैठे हैं छबि सौं आई ।
रतन जटित सिर सेहरा मोहैं मातियन लूंब सुहाई ॥

वेद उक्त विधि जनक राय जू रचि वड रीति बनाई ।
रानी संग ले करि गठजोरो भावरि दीनी आई ॥८४॥
भूपति दोनो आवजो जू सोभा बरनी न जाय ।
कोटि एक दासी दाईजै जू दीये रथ अनेक सजाय ॥
अयुत अयुत सजि दीये तुरग वड गैंवर अयुत सजाई ।
कोटि एक दीये दास जनक जू सेवा करन सुभाई ॥
रिथ अरु जान सहत मिथुलेपुर अवधेसर पहराये ।
करी बहुत मनुहारि परसपर वेर वेर सिर नाये ॥८५॥
कँवरी गवनी सासरै जू नयन चलत हित वारि ।
बाल बैस की सखियन सैं जू मिलत हैं बाँह पसारि ॥
चेतनर्यां वे संग मिलि खेलन तात भुवन सुखकारी ।
बालकेलि सुधि आवत मन मैं सो नहिं जात बिसारी ॥
कोटिक सुख हू वै जो ससुरारि मैं रहै सपत्ति लपेटी ।
तात भुवन की बाल केलि को बिसरत नाहिन बेटी ॥८६॥
सीता सों मिलि नेह सों जू नैना नीर बहाय ।
जननी सरस सनेह की जू मो पै बरनि न जाय ॥
माता वचन सुनाय कुँवरी को समझावत बहु भाई ।
ससुरा सास की सेवा कुँवरी सिखयो नेह सुभाई ॥
भयो उछाह जनकपुर अतिही को अस बरनि सुनाई ।
इहि विधि भूपति विदा मोद सों आये अवधि चलाई ॥
हरष फिरत अवधिपुर बासी मन अनुमोद न मावै ।
भवन नारि मिलि मंगल गावै मंगल कलश बधावैं ॥८७॥
निरखि नारि चढ़ि अटनि पर जू हरषे वारंवार ।
जय सुर कुसुमन डारे जू मानों बरषे जलधार ॥
अटनि झरोखन चढ़ि भामिनी बरषत सुमन अपारा ।
बिधुवनिता तजि मनहुँ व्योम को आई करन विहारा ॥
बाँधी बन्दर चोहटा भामिनि मंगलचार सु गावैं ।
भूपति नगर माझि सब सुंदरि भूप भवन को आवैं ॥८८॥
भीतर भवन सिधाईजू प्यारो राजकुमार ।
कौसल्या करें आरतो जू मोत्यौं भरि कंचन थार ॥
बधु सहित लखि माता सबै ही हरषे बारो बार ।
रानी हरष न मावै मन मैं बाढ्यो हरष अपारा ।

हरषि हरषि अंतहपुर रानी दुलहनि बदन निहारें ।
हाटक हीरा मणिगण मोती वधू मुतन परि वारें ॥८६॥
रिषवर कौ अवधेस जू जी पूजे हैं विधि सब नाय ॥
रानी रिषवर राज कें जू पुनि पुनि लागें पाय ॥
श्री कौसल्या रिषवर जू सौं कहति है बचन सुनाई ।
विद्यानिपुन कीये कुवर दोउ ल्याये दुलहनि ब्याही ॥
पद बंदे मुनिवर के रानी बेर बेर सिर नाई ।
हीरा मोती कनक थाल भरि पूजेहैं रिषवर राई ॥६०॥
कांकनडोर डुलावही जू श्री रंग मंदिर जाय ।
च्यारो कुवरनि रंगराज जू बंदे हैं सिर नाय ॥
छोड़ो डोर कुवर व्यारो ही श्री रंगमंदिर जाय ।
मोतीयन चौक पुरावें रानी पुनि पुनि मंगल गाय ॥
कांकन डोरि छोडि रंगमंदिर भीतर भवन सिधाये ।
हरष्यौ फिरत तहां जनहरीयो बाजत अवधि बधाये ॥६१॥
बाजत अवधि बधावना जू भूपति दसरथ द्वारि ।
धर धर मंगल बधावना जू मंगल गावें नारि ॥
मागध सूत भाट बंदीजन बोलत करि कै बारी ।
दान मान दीये भूप सबन कौ दीनें कंचन भारी ॥
मंगलवर ब्याह रघुवर कौ संत जनन सुषदाई ।
मति अनुसार कह्यौ जनहरीयो श्री गुर कौ सिरनाई ॥६२॥

॥ इति पौषे रामायणे महा मुक्ति मारगे सीताराम
विवाह सम्पूर्ण ॥[1]

(३) राग ललित

राजत अवधेस लाल कंज बदन तिलक भाल ।
अरुणांबुज अछि विसाल अदबुत छवि छाई ॥ टेक ॥
नासा नग बनि सुदेस सोभित सिरि कुंटलकेस ।
जलज निकट निकर मधुप अवली मनु आई ॥१॥

---

१ पदमुक्तावली : छंद संख्या ६२.

नव घन तन दुति विसाल मुक्ता उर लसत माल ।
सुत्री कटि तटि रसाल रुण झुण चलि जाई ॥२॥
देपत जब भूप नारि तन मन धन देत वारि ।
अतिसै सिसु केलि राम सुपन वरणो जाई ॥३॥[1]

(४) राग सूहो

मानकुल दीपग छत्रीले रगीले रघुनदन ।
ध्यान धरि निस दिवस अैसो कटै भव दुप फदन ॥१॥
चरननप अगुरनि मिलियो दुहन की सोभा बनी ।
भानु प्रफुलित कवल परि उगैहैं दस रजनी घनी ॥२॥
पीन जान सुचार अनुपम लसत अदभ्रुत धोवती ।
कटिसूत्र कटिपट पीत कटि किंकनी मन को मोहती ॥३॥
बाजुबन्ध जराय के पहोंचें रतन पोंची भली ।
अस्ट दोय अँगुरनि अँगूठी यों भाँन की दुति दलमली ॥४॥
मणिहार मुक्ताहार सुदर स्याम अग परि राजई ।
मानु नवघन मैं सरस तारन की पाति सभ्राजई ॥५॥
ववु कढर अरन अधर सुनासिका अपीयाँ बडी ।
मनमत्य मन मथ कौ करत भौंहे कसी भ्रकुटी चढी ॥६॥
श्रवनन मैं कुडल लपि ललित छबि मैन की सुकची जीए ।
अलिकन की हलकनि ग्रीव चलनि सुपो वारि केसरि की कीए ॥७॥
सिरि मुकट अग सुवाम राजत जनकी की सुदर लली ।
मानु हरीव वैन्य कटि वैठा कवल की अदवुत कली ॥८॥
चलि सुपथ तजि के विपै भजि ऐसे रामगुपाल कौं ।
मन वच क्रम करि प्रीनिश्चिढि हरीया मखी प्रतपाल कौं ॥९॥[2]

(३) चरणदास

ये अग्रदास जी क शिष्य विनोदी जी अथवा विनोद स्वामी के पौत्र शिष्य थे। अब तक इनका कोई छन्द प्रकाश में नहीं आया था। 'पदमुक्तावली' मे पहली बार इनका एक पद देखने मे आया है जिसमे प्रात समय की उत्थापन आरती का वर्णन है—

---

१. वही, छद सख्या ६३
२ पदमुक्तावली : छद सख्या ६६ ।

राग भैरू

जागीए श्री राम नृपति चुडामनी,
रवि कीयौ आगम निसि बिहानी ।।टेक।।
सूत माग बन्दीजन ऐ करें आसिषा ।
नीति अविचल रहौ राजध्यानी ।।टेक।।
केऊ सषी कर कनक झारी लाए सुगध,
कोऊ वासीद लीए सरजु पानी ।
केऊ सषी विवध्य के देत सोय लीए,
कोऊ अद्रस लीए खरी सयानी ।।१।।
जुग सषी छात्र लाये, कोऊ सषी चवर लीए,
कोउ मिलि जुगल के बसन आँनी ।
केउ सषी मधुर सुर राग पचम करें,
सपत सुखानि लीऐ सुलप बैनी ।।२।।
श्री जनक नदनी जी कैं श्रवननि धुनि परी,
जागि परि पिलग तें द्रग घुलानी ।।
मानु एह कवल मुदित भए रैनि कै,
मित्र की बात सुनि फुल फुलानी ।।३।।
अवधिवासी सबै दरस की तरस करै,
दुवारि ठाढे कहै गुन कहानी ।
जागीए श्री धीर रघुवीर करुनामई,
दास दासी परे चरन आँनी ।।४।।

(४) बाल अली

इनका व्यावहारिक नाम बालकृष्ण नायक था—बालअली इनके साधन देह की सज्ञा थी। ये अग्रदास जी की पाँचवी पीढ़ी मे आते हैं। 'ध्यान मजरी' की रचना स० १७२६ मे हुई। अत यही उनका उपस्थितिकाल माना जा सकता है। इनकी ८ रचनाओ का पता लगा है। उनमे 'नेह प्रकाश' तथा 'सिद्धान्त तत्व दीपिका' विशेष महत्व की हैं। 'पदमुक्तावली' मे इनके दो पद सकलित हैं। एक मे आराध्ययुगल की प्रात कालीन शोभा का वर्णन है और दूसरे मे प्रिया प्रियतम की परस्पर आसक्ति का चित्रण है—

---

१. पदमुक्तावली, छन्द सख्या ६५ ।
२. वही, छद सख्या ८६ ।

(१) प्रात समैं रघुनन्दन की छवि देषि सषी अपने भरि नैन ।
आलस भरे जो भाँति ऊनींदे बोलत हैं कछु अटपटे बैन ॥टेक॥
वामैं अग श्री जनक नन्दनी बसन मरगजे भरे छवि अैन ।
नेह भरे मुसकात परसपरि बालअली हीए अति सुप दैन ॥
(२) भौरे ही रँग भरे दोऊ जागे ।
रग महल मैं श्री जनकनन्दनी रघुवर अति अनुरागे ॥ टेक॥
आलस भरे जु भाति उनीदे अरन नैन रस पागे ।
बालअली प्रभु रस बसि कीन्हे जैसे कनक सुहागे ।[1]

इन प्रसिद्ध रामभक्तों के अतिरिक्त उक्त सग्रह मे अन्य साधको के भी पद सकलित हैं । ये हैं—कवलानन्द (२, २५), बीठलदास (३०, ५५), गोकुलदास (५४), व्रजपुरी (७४), बिजैराम (७६), (७६), लघुकेसव (६८) और लाल गुलाम (६७, ६८) ।

नीचे इनका सक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) कवलानन्द

भक्तमाल तथा अन्य भक्त चरितो मे इस नाम के किसी रामभक्त कवि का उल्लेख नही मिलता । साम्प्रदायिक परम्पराओ मे स्वामी रामानन्द के शिष्य सुरसुरानन्द के एक शिष्य केवलानन्द का नाम आता है ।[2] ये बालानन्द जी की गद्दी (जयपुर) के पूर्वाचार्यों मे हैं । निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि पद-मुक्तावली मे प्राप्त पद इन्ही का है या कवलानन्द नामधारी किसी अन्य सत का । ये रामभक्त थे यह निम्नांकित दोनो पदो के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से माना जा सकता है—

(१)

राग आसावरी

नौंमी कै दिन नौवति बाजै सुत कौशल्या जायौ री ।
मान घडी दिन बीति गयौ सब सखियन मगल गायौरी ॥टेक॥
सबै बुलाय सोधना कीनी अपे भडार लुटायौ री ।
घडीक सौचि निगम यौं भाष्यौं रामचन्द्र ग्रह आये री ॥टेक॥

१. पदमुक्तावली : छन्द सख्या ६० ।

कचन के बहौ कलस बधाये मोतिन चौक पुराये री।
दसरथ मन आनन्द भयौ कोइ रघुबसी ग्रह आये री ॥ २ ॥
घर घर की सब बधू बुलाई मगल गावति आई री।
राइ आँगन बिचि डारि दुलीचो आदर करि बैठाई री ॥ ३ ॥
कप्यौ सिंधु कागरा पडिया आगम अगम जनायौ री।
सोच पड्यौ सबही लका कोई राज विग्रहै आयो री ॥ ४ ॥
दसरथ उठि भडार पधारे साडी सुरग मगाई री।
जो जाके मन हुती कामना सो ताकौ पहराई री ॥ ५ ॥
पाट पटवरपा सासूंना त्रिय जाके मन भावै री।
कवलानन्द कहाँ लौ बरनौं तीन लोक जस गावैं री ॥ ६ ॥[1]

(२)
राग बिलावल

करौ कलेउ प्रात ही मिलि ब्यारौं मईया ॥ टेक ॥
दधि मेवा लाडू मोद सौं ले आई मईया।
यै पीवौ प्रभु कल्याण के मथि लीनौ घईया ॥ १ ॥
बान धनिया कित्त धरी दे दै री मईया।
तेरी सौं अगना पेलि हैं हम ब्यारौ भइया ॥ टेक ॥
कालि दूर ताने गये सब सखा बुलईया।
दोय बान पोए हुते सरजू तटि पईया ॥ १ ॥
रुचिर बाग बैसक बनी चगे फल बिछईया।
नाना विधि के पछी बौलिहै खनीक सुहईया ॥ २ ॥
नीर निकट नाहिन गये दाउ की सो हौ री।
कवलानन भरथ बुलाय कै जो हौ झूठ कहौं री ॥ ३ ॥[2]

(२) बीठलदास

जाति के रैदास (चमार) होने हुए भी इनकी गणना श्री सम्प्रदाय के विशिष्ट रामभक्तो मे की जाती है। ये बडे ही विरक्त एव स्वाभिमानी महात्मा थे। सत्संग एव इनका सतसेवा व्रत था। उसके लिए धन की आवश्यकता पडती थी किन्तु

---

१ पदमुक्तावली, छद सख्या २।
२ वही, छद सख्या २५।

भगवान की कृपा से उसमे कभी बाधा नही पडी। सासारिक वैभव इन्हे कभी आकृष्ट नही कर सका। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी घमडी सेठ को इन्होंने फटकार दिया था। पहले वह नियमित रूप से इनकी सहायता करता था किन्तु उस घटना के बाद होने वाले वार्षिक महोत्सव मे उसने हाथ खीच लिया। कहा जाता है कि उत्सव के निकट आने पर स्वय भगवान ने एक वैश्य के रूप मे आकर तीन सौ अशर्फियाँ उक्त कार्य के लिए समर्पित की। सेठ ने जब इस घटना की चर्चा सुनी तो पानी पानी हो गया। उसने आकर क्षमायाचना की। नाभादास के अनुसार बीठलदास जी ने अपना शरीरत्याग आराध्य की लीला विषयक पद गाते हुए किया था।[1] इससे उनका कवि होना स्वतः सिद्ध है। इस नाम के किसी अन्य रामभक्त का अब तक पता नही चला है, अतः नीचे लिखे पद को इनकी रचना मानने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती—

भोजन करो सीताराम।
सावग्राही भावग्राही प्रीतिग्राही राम ॥ टेक ॥
दछिन दिसि आनद करि सोहैं जनक सुता अभिराम।
पवन सुत सनमुष विराजत रटत नित नौ नाम ॥१॥
च्यार विधि के भच्छ भोजन लेत रुचि सुचि स्याम।
मेलि मिश्री पहुप छीवरि मेर दाप विश्राम ॥२॥
भक्ति हेत आरोगजे प्रभु सकल पूरन काम।
दास बीठल दरस पावैं करन परमनिधाम ॥३॥[2]

(३) गोकुलदास

इनके स्थितिकाल तथा जीवन के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही है। राम-भक्तो की परम्पराओ मे भी इस नाम के किसी कवि का उल्लेख नही

---

१. आदि अंत निर्वाह भक्त पद रज व्रत धारी।
रहतो जगत सो ऐंड़ तुच्छ जाने संसारी॥
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी।
महत सभा में मान जगत जानैं रैदासी।
पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोविंदु जुग फल दिया।
बीठलदास हरिभक्ति के दुहूँ हाथ लाडू लिया।
—श्रीभक्तमाल, छप्पय सं० १७७, पृ० ८६४.

२. पदमुक्तावली, छंद संख्या ३०.

मिलता। प्रस्तुत हस्तलेख मे इनका एक पद सग्रहीत है, जिसमें रामचन्द्र जी के व्यालू अथवा भोजन करने का वर्णन है—

॥ राग विहागडो ॥

रघुवर सुषनिधि करत वियारी।
मधु मेवा पकवांन सरस रस प्रेम सहित पुरसत महतारी॥ टेव॥
गूझा लाडू उज्जल फैनी पुरी सुपपुरी पूवा सुहारी।
घेवर पापर तात जलेबी मिश्री सीरा सरस सवारी॥
सूरन आब करौंदे सीवन आदो नीबू अति रुचिकारी।
औट्यौ धर्‌यौ लै आगें पीवौ मेरे लाल जननी जाय वारी॥ २॥
अति सुगध सरजू जल सीतल रतन जटित भरि ल्याई झारी।
भोजन पाय करौ प्यारे अचवन राजीव नैन मैंन बलिहारी॥ ३॥
बीरी देत सीयाजू कर अपनै गिरी कपूरर लौंग सुपारी।
गोकलदास आस इम ठाढो पावै जूठि रहो कछु थारी॥ ४॥[1]

(४) व्रजपुरी

इनके सम्बन्ध मे भी कोई जानकारी प्राप्त नही है। प्रस्तुत हस्तलेख मे सग्रहीत पद से केवल इतना विदित होता है कि ये रामोपासक थे—

जीभ तेरे मुष माहि षरच कछु लागै नाहि,
राम राम लेत तेरो कहा जु घटत है।
साच झूठ आठों जाम बोलत फिरै निकाम,
हरि के भजन मैं कहा आलस करत है।
जोलौ घट माहि जीव नारी कहै मेरौ पीव,
मात तात बेटा बेटी आनि लपटत है।
अतकाल भयौ आय तब कोउ न करै सहाय,
कहै व्रजपुरी सो बटाउ चल्यौ जात है॥[2]

(५) बिजैराम

इनका कोई लौकिक वृत्त ज्ञात नही है। हस्तलेख मे सग्रहीत पद का प्रतिपाद्य है भवसागर मे डूबते हुए जीव का अपने अशी राम को पहचान के लिए उद्‌बोधन—

---

१. पद मुक्तावली, छद सख्या ५४,
२. वही, छद सख्या ७४

देह कौं आनि जुरा जकरी लकरी पकरी तौहू राम न जान्यौ ।
बालपनौ षोयौ ष्याल ही ष्याल मे जोबन जोर तिया रति मान्यौ ॥
स्याही गई सिर आये है सेत अचेत भयौ गुर ग्यान न जान्यौ ।
बूडत है भवसागर माझ कहै 'बिसैराम' धनी न पिछान्यौ ॥४॥[1]

(६) लघुकेसव

केशव नामधारी पाँच भक्तों का भक्तमालकार ने उल्लेख किया है—केशव-भट्ट, केशव, केसौ, केशव जी लटेरा और केशव जी दडौती । इनमे से प्रथम तथा अन्तिम कृष्ण भक्त थे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ रामभक्त । दूसरे केशव राम-चन्द्रिका के रचयिता थे, तीसरे केशव (सम्भवतः) रामभक्ति शाखा के स्थानधारी सत थे, और चौथे केशव रामानंद जी के शिष्य सुरसुरानद की परपरा के थे । हस्तलेख मे 'लघु' शब्द प्रसिद्ध (बडे) केशवदास से प्रस्तुत पद के रचयिता की विभिन्नता दिखाने के लिए प्रयुक्त हुआ है । मेरा अनुमान है कि हस्तलेख मे उद्धृत पद इनमे से तीसरे या चौथे का हो सकता है । इसमे निरूपित तथ्य रचयिता की शृगारी रामभक्ति के द्योतक है—

श्रवना न सुन्यौ रसना न गुन्यौ, नही ध्यान धरौ न नच्यौ हरि आगे ।
अरचा न करी चरचा न करी, सुमरो नही राम हिरदै अनुरागे ॥
तन मन अरपि न दास भयो हरि भक्ति के हेति जग्यौ नही जागे ।
लघु केसो कहै जम दोस कहा, नवधा मधि एक गही न अभागे ॥[2]

(७) लाल गुलाम

रामभक्तो के चरितसग्रहो तथा साम्प्रदायिक परम्पराओ मे यह नाम अपरि-चित है । हस्तलेख मे संकलित पद से मात्र इतना पता चलता है कि उसका रच-यिता रामोपासको की माधुर्य धारा से सम्बद्ध है—

राग पचम

आये राजरिषि मषि सषी कुँवर मनभावतो,
आवते देषि हिवरो सिरानौं ।
मेरे मनि आनि सषी बात ऐसी ठनी,
ये ही वर सीया के विधि ही थानो ॥ टेक ॥

---

१. पद मुक्तावली, छंद संख्या ७९
२. वही, छंद सख्या ९८

विवधि भूषन कीये मुकति माला हीये,
तिलक की क्रान्ति बरनी न जाई।
वाम कर धनक कटि माथ सोभो दीये,
दाहिनें कर सर सोभा सुहाई ॥ १ ॥
ताडिका मारि सुबाहु बल जीति कै,
असुर सधारि जग पूर कीन्हौं।
चरन की रेनिका अहल्या उधारि,
झीवर कुल त्यारि पुर गवन कीन्हौं ॥ २ ॥
राय समझाय अब ही कह्यो जाय कै,
धनक पन छाडि सीया वरही आए।
आगिले जनमि एह पुत्रि तीवर कीयो,
ताहि परताप अैसे कुंवर पाए ॥ ३ ॥
सबन के मन ही की आनि सारगधर,
तनक ही तानि धनु तोरि डारौ।
बडे बडे भूप सावत अति महाबली,
सिंघ ललकारि भ्रग मान मारौ ॥ ४ ॥
निम कुल जुवति नर नारि आनद मैं,
सुनत एह बात मगल उचारे।
लाल गुलाम अब सत को सरन गहि,
चरन की रति लहै प्रान वारे ॥ ५ ॥

देषि री देषि कुंवर सुन्दर दोऊ,
नृप के जिग मैं आनि ठाढे।
कोटि कद्रप की हीन दुति करत ही,
अनिहि छवि रूप गुनवत गाढे ॥ टेक ॥
पीत पट दामनी दमक लज्या करत,
जरकसी पाघ सिरि अति सुहाई।
अटनि चढि भामनी नैन मधुपान करि,
साँवरे - गवर हिरदै वसाई ॥ १ ॥
एहु कुंवर लाडिलो होय जो कुँवरि को,
सब करैं गवरि स्यौं विनय भारी।

जब ही मनि आनिहै सुफल क्रति जानिहै,
होय वर एह आनन्दकारी ॥ २ ॥
नग्र की नारि मन माहि कलपन करैं,
एह कर सम ही धनक भारी ।
कुँवर महाराज सब अस हरि नृपन कौ
मुनि गहै रहै अति बलाकारी ॥ ३ ॥
जनक नृप देषि रघुवीर कू मन ही मैं,
कहा बपरीत मन मैं ज कीन्हौं ।
धनही कौं ब्याहिहौं सुजस जुग पायहौं,
अवनिपति यौं कहैं पलट कीन्हौं ॥ ४ ॥
राय सब नृप्पन सु बोलि एह बात कह
धनक कोऊ तोरो एह आत दीन्हौ ।
धनही लग जाय कैं अवनि सिर नायकै,
अजुली के बारि ज्यौं गवन कीन्हौ ॥ ५ ॥
निमकुलवस की अवनि के नृपन की,
धनक सब लाज ले ग्रस्व धारो ।
साँवरो कुँवर सिर नाय रिषराज कौं,
गहे चग्न चापि धनु तोरि डारौं ॥ ६ ॥
पुसप वरषन लगे देव दुंदभी बजे,
मगला सब ही मिलि गीत गावै ।
लाल गुलाम अब संत की सरन गहि,
दास धरि अवधिपुर सुजस गावै ॥ ७ ॥[1]

---

१ पदमुक्तावली, छन्द सख्या ६७

स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली

रसिक रामभक्तों के आद्याचार्य अग्रदास[1] का आविर्भाव स्वामी रामानंद की चौथी पीढ़ी में हुआ था। ये राजस्थान मे वैष्णवो के प्रथम पीठ, गलता के संस्थापक श्रीकृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इनके आरंभिक जीवन के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के किसी गाँव में १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हुआ था। पयहारी जी के संपर्क मे ये बाल्यकाल मे ही आ गए थे। बडे गुरुभाई कील्हदास के साथ गलता मे बहुत दिनो तक निवास करके गुरु के परलोकवास के अनंतर ये अपने प्रिय शिष्य नाभादास के साथ रैवासा चले गए और वहीं अपनी गद्दी स्थापित की।[2]

---

१. रसबोध बिपुल आनंदघन अग्रस्वामि बानी बिसद।
अक्षर पद अनुप्रास मधुरता बाल्मीकि सम।
आसय गूढ़ उपाय प्राप्ति रसिकन की संगम।
रैंवासे जानकीवल्लभी रहसि उपासी।
ललितरसाश्रय रंगमहल बसकुंज सुवासी।
आचारज रसरास पथ रसिकवर्ज रसिकन सुखद।
रसबोध बिपुल आनंदघन अग्रस्वामि बानी बिसद॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

२. कोई देसकाल जानि कील जू की आज्ञा मानि,
सिष्यन समेत श्री रैंवासे स्वामी आए हैं।
तहाँ रमनीय जल भूमि द्रुम लता बेलि,
मंदिर बनाय लली लाल पधराए हैं।
बिनय बिबेक सुभ सील दया नेह गेह,
नाभा जी को देखि संत सेवा में लगाए हैं।

नाभादास ने गुरुसेवा करते हुए अपना सारा जीवन यही व्यतीत किया। इसी स्थान पर आचार्यचरणो से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होने अपने लोकप्रसिद्ध ग्रथ 'भक्त-माल' की रचना की थी।

नाभादास ने अन्य सतो की भाँति अपने गुरु अग्रदास के भी लौकिक जीवन पर कोई प्रकाश नही डाला है। 'भक्तमाल' से इतना ही विदित होता है कि वे एक उच्चकोटि के आचारनिष्ठ सत थे और अहर्निश इष्टदेव सीताराम की आराधना मे लीन रहते थे। वाटिका से उन्हें बडा प्रेम था। अपने रैवासा स्थित आश्रम से सलग्न भूमि मे उन्होने 'प्रसिद्ध बाग' नाम की एक फुलवारी लगा रखी थी, जिसका सारा कार्य वे अपने ही हाथो से करते थे। वाटिका मे काम करते समय भी उनका नामजप अखड रूप से चलता रहता था। आचार्य श्रीकृष्णदास पयहारी की कृपा से उन्हे अविरल रामभक्ति का वरदान मिला था। इस प्रकार अपने जीवन का एक भी क्षण अग्रदास जी ने आराध्य युगल के ध्यान तथा उपासना विना नष्ट नही होने दिया।[1]

प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका मे अग्रदास के जीवन से सबद्ध कुछ नए तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने आमेरनरेश मानसिंह के स्वामी जी के दर्शनार्थ रैवासा जाने की चर्चा करते हुए लिखा है कि जिस समय महाराज उस आश्रम पर पहुँचे स्वामी जी वाटिका मे थे। यह समाचार पाकर मानसिह अपने सेवको तथा साथियो को बाहर ठहरने की आज्ञा देकर स्वय बाग के भीतर चले गए। इसके थोडी ही देर बाद स्वामी जी वाटिका मे पडे हुए सूखे पत्तो को फेंकने के लिये बाहर निकले। द्वार पर अपरिचित लोगो की भीड देखकर वे वही एक आम के पेड के नीचे बैठ गए। उधर वाटिका मे बहुत देर तक अग्रदास जी के लौटने की प्रतीक्षा करने के बाद मानसिह भी बाहर चले आए। द्वार पर आचार्यचरणो का साक्षात्कार कर वे कृतकृत्य हो गए।[2] रीवाँनरेश रघुराजसिंह ने अग्रदास और मानसिह मे गुरुशिष्य का सबध बताया है और मानसिह की गणना अग्रदास के अत्यत प्रिय शिष्यो मे की है।[3] सभवत यह सूचना उन्हे जयपुर दरबार से

आपु सो कियो उपाय काल मृषा न बिताय,
अष्टयाम सेवा को रहस्य मन लाए हैं॥ —वही, पृ० १६।

१. भक्तमाल (टी० रूपकला), पृ० ३२८।

२. श्री भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ३२०।

३. मानसिंह जैपुर को राजा। सो अपनी लै सकल समाजा।
अग्रदास गुरु आज्ञाकारी। रहै समीप धरमरज धारी॥

अपने निजी स्रोतों द्वारा प्राप्त हुई होगी। इसके अतिरिक्त अग्रदास के सासारिक जीवन के सबध मे कोई वृत्त उपलब्ध नही है।

साम्प्रदायिक साहित्य मे इनके द्वारा प्रवर्तित रसिकसाधना का विशद विवरण मिलता है।[1] नाभादास ने अपनी शृंगारी रामभक्ति को इन्ही का प्रसाद माना है[2] और सखीभावना मे इनकी लोकोत्तर तन्मयता की मुक्तकठ से प्रशसा की है।[3] इसी भावसिद्धि के कारण परवर्ती रसिक रामभक्तिसाहित्य मे इन्हे चद्रकला सखी का अवतार होने की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। रसिक-प्रकाश भक्तमाल के रचयिता युगलप्रिया जी ने 'मानस' के पुष्पवाटिकाप्रसग मे निर्दिष्ट सीता जी की पथप्रदर्शिका सखी से इनका तादात्म्य स्थापित किया है।[4] अग्रदास ने स्वय अपनी कृतियो मे 'अग्र अली' तथा 'अग्रसहचरी' छाप देकर

एक समय दस सहस सवारा। मानसिंह नृप लै पगु धारा।
अग्रदास दरसन के हेतू। गुरु दरसन किये मोदनिकेतू ।।
दस कदली फल गुरु तेहि दीन्हो। सादर पदवंदन करि लीन्हो ।।
नाभा के पुनि अग्र के यहि विधि चरित अपार।
मान महीपति के तथा, को कहि पावै पार ।।
—रामरसिकावली (रघुराजसिंह), पृ० ५७५-८०।

महाराज रघुराजसिंह ने स्वामी अग्रदास को गलता की गद्दी का आचार्य बताया है। किन्तु साम्प्रदायिक परंपरा के अनुसार गलतागद्दी पर श्रीकृष्णदासजी पंहारी के बाद कील्हदास जी बैठे थे। ये अग्रदास के बडे गुरुभाई थे। अग्रदास की गद्दी जयपुर के समीप ही रैवासा मे स्थापित हुई थी।

१. आचारज रसरासपथ, रसिकवर्ज रसिकन सुखद।
रसबोध बिपुल आनंदघन, अग्रस्वामि मानो बिसद ।।
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

२. श्री अग्रदेव करुना करी, सियपद नेह बढ़ाया।
'नाभा' मन आनद भो, महल टहल नित पाय ।।
—अष्टकालचरित (नाभादास, पत्र ४२)।

३. श्री कृष्णदास गुरुकृपा ते नित नव नेह नवीन।
अग्र सुमति सियसहचरी जुगल रूप रस लीन ।। वही।

४. अग्रस्वामि श्री अग्रसहचरी जनकलली की।
पुष्पवाटिका मिलन हेतु प्रिय भाँति भली की ।।

प्रकारांतर से इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे सीताराम की माधुर्यलीलाओ के उपासक थे और व्यावहारिक रूप मे राम के प्रति दास्यनिष्ठा रखते हुए भी उनकी अंतरग साधना शृगारी भाव की थी। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'ध्यानमजरी' शताब्दियो से रसिकसाधको की गीता मानी जाती है।

अग्रदास जैसे उच्चकोटि के साधक थे वैसे ही असाधारण प्रतिभासपन्न साप्रदायिक सगठनकर्ता भी। उत्तरी भारत मे रामोपासको की अधिकाश गद्दियाँ उन्ही के शिष्य-प्रशिष्यो द्वारा स्थापित की गई हैं। अयोध्या, चित्रकूट और मिथिला के अनेक प्रमुख पीठ इन्हीं की परपरा से सबद्ध हैं। इनके सतपरिवार के विस्तार का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वैष्णवो के ५२ द्वारो मे ११ द्वारे अकेले इन्ही के हैं। इनकी शाखा नाभादास, बाल अली, देवमुरारि, पूर्ण बैराठी, दिवाकर, हनुमान हठीले, भगवन्नारायण, प्रयागदास जगी, विदुकाचार्य रामप्रसाद, रसिकाचार्य रामचरणदास, रसिक अली तथा रघुनाथदास जैसे तपस्वी एव लोकसग्रही महात्माओ से विभूषित है।[1]

अग्रदास की महत्ता का सबसे बडा कारण है रामोपासना मे शृगारिता को प्रश्रय देते हुए भी आदि से अत तक सदाचारनिष्ठा के सम्यक् निर्वाह की व्यवस्था करना। क्रियाप्रधान बहिरग पूजा की अपेक्षा ध्यानप्रधान अतरग अथवा मानसी सेवा को अधिक महत्त्व देकर उन्होने उसे कालातर मे दूषित प्रवृत्तियो का शिकार होने से बचा लिया। शृंगारी रामभक्ति के लोकप्रचार का निषेध तथा विशिष्ट भावसपन्न सात्विक साधको को ही उसका अधिकारी घोषित करते समय उनके मन मे कदाचित् यही भावना काम कर रही थी—

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहिं।
तुलवे को कोउ नाहिं सोई अधिकारी जग मैं।
कचन कामिनि देखि हलाहल लागत तन मैं॥
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वदा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनदा॥

अग्रवल। प्रिय नाम स्याम सिय बस करि राखो।
प्रगटि स्वामिपद लह्यो ध्यान रस मन मन चाखो॥

रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

१. विशेष विवरण के लिये देखिए 'रामभक्ति में रसिकसप्रदाय' के अंतर्गत 'रामभक्ति में रसिकसाधना का विकास' तथा 'परंपरा और तिलक' शीर्षक अध्याय।

नही 'अग्र' अस सत के सरि लायक जग माहि ।
रस सिगार अनूप है तुलने को कोउ नाहि ।।

अब तक खोज मे इनके द्वारा विरचित केवल चार ग्रथ उपलब्ध हो सके हैं—ध्यानमजरी अथवा रामध्यानमजरी, कुडलिया अथवा हितोपदेश उपपाण-बावनी, रामाष्टयाम और रामज्योनार । इसके अतिरिक्त साप्रदायिक ग्रन्थो मे अग्रदास की दो अन्य कृतियो का भी उल्लेख मिलता है । ये हैं—अग्रसागर अथवा शृगार-सागर तथा पदावली । इनमे से प्रथम तो अब केवल नामशेष रह गई है । बहुत खोज करने पर भी उसकी किसी प्रति का पता नही लग सका । किंतु दूसरी रचना का एक हस्तलेख इन पक्तियो के लखक को प्राप्त हुआ है ।

तुलसी के पूर्ववर्ती रामभक्तिसाहित्य मे अग्रदास की इस 'पदावली' का विशेष महत्त्व है । इसमे कुल ५१ पद सकलित हैं जिनमे एक (पद स० १०) नाभादास का है ।[1] इसके अतिरिक्त लेखक के निजी सग्रह मे अग्रदासविरचित सात पद अन्य स्रोतो से सगृहीत है । उन्हे लेकर अग्रदास के पदो की सम्पूर्ण सख्या ५७ हो जाती है । ये सभी 'अग्र' छाप से युक्त हैं । यह दूसरी बात है कि अपनी भावनानुसार उन्होने किसी मे दास्यनिष्ठापरक 'अग्रस्वामि' अथवा 'अग्र-दास' छाप रखी है और किसी मे माधुर्यनिष्ठाव्यजक 'अग्र अली' 'अग्रसहचरी'। यह उल्लेखनीय है कि 'अग्रदास' छाप 'अग्रअली' की भांति दास्य तथा शृगारी दोनो भावो की रचनाओ मे पाई जाती है । इससे अग्रदास' और 'अग्र अली' की अभिन्नता स्वत सिद्ध हो जाती है ।

शृगारी रामोपासको की परम्परागत आस्था के अनुकूल इन पदो मे केवल आराध्य युगल की कैशोर लीलाओ का ही वर्णन हुआ है । कवि की वृत्ति दम्पति की माधुर्यक्रीडा तथा शृगारी चेष्टाओ के अकन मे ही विशेष रमी है । ये प्रसंग हैं—धनुषभग के पूर्व सीता की उद्विग्नता, सीता का अलौकिक रूपमाधुर्य, सीता सौभाग्य, मिथिला म प्रियाप्रियतम की हिंडोललीला, अयोध्या मे होलीलीला, प्रमोदवनविहार, सरयू मे दम्पति का जलविहार, राम का एक पत्नीव्रत एव प्रियापराधीनता, सुरतात वर्णन, चन्द्रकला, विमलादि सखियो द्वारा युगलविहार-दर्शन, सत्सग एवं रामभजन महिमा, अनन्यशरणागति का महत्त्व आदि । रचयिता

---

१. 'पदावली' में सकलित नाभादास के इस पद से यह विदित होता है कि अग्रदास की परम्परा के किसी सत ने उसको वर्तमान रूप रचयिता के दिवगत होने के बाद दिया । सम्भवत आचार्यनिष्ठा से ही उसने उनके पट्टशिष्य नाभादास को रचना को भी उसमे स्थान दे दिया ।

ने दो-तीन को छोड कर शेप सभी पदो के साथ रागो का स्पष्ट निर्देश कर दिया है। पदावली मे उल्लिखित इन रागो की सख्या १३ है मारू, कान्हरा, टोडी, केदारा, जैतिश्री, ललित, देवगधार, बिलावल, धनाश्री, कल्यान, सारंग, मलार, और वसत। इनके अतिरिक्त 'सगीतरागकल्पद्रुम' मे सग्रहीत अग्रदास के पदो म ख्याल[1], विभास, विहाग[3], सिंधु तथा होली —पाँच अन्य रागो का भी प्रयोग हुआ है। ये रचनाएँ पदावली' मे नही मिलती। इससे यह विदित होता है कि अग्रदास के पदो का बहुत पहले से सगीतज्ञो के बीच व्यापक प्रचार था। कृष्णानंद रामसागर ने सभवत इसी लोकप्रियता के आकृष्ट होकर उन्हे 'सगीत-कल्पद्रुम' मे स्थान दिया था। हो सकता है ये पद सगीतज्ञों के माध्यम से ही सकलित किए गए हों।

अथ श्री अग्रस्वामीकृत पदावली प्रारम्भः

राग मारू

अरी हो रामा रग रची।
वात हमारे पन कियो तोरन धनुप कठोर।
कोमल करतल साँवरो सखी मूरति मधुर किसोर॥
राज सभा असी भई ज्यो उडगन मे चद्र।
विधिना विधि सो निर्मियो अली मोहनमनको फँद॥
लोक वेद की लाज सखी री जद्यपि दुस्तर आहि।
रूपनिधान देखि रघुनदन धीरज धीरज नाहि॥
असी मो जिय ऊपजी चाप चढ़ावो कोइ॥
'अग्रस्वामि' के हाथ बिकानी होनी होइ सो होइ॥ १॥
सखी मोहि राम भावै।
नरपतिनिकर निरस सब लागे कोऊ दिष्टि न आवै॥
उड्गन उदय होत ज्यों आली चकोरी चैन न पावै।
एवै है अमृत को श्रावक थदा तपनि बुझावै॥

---

१. सगीतरामकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ६४।
२. वही, पृ० २३८।
३. वही, पृ० ५३१।
४. वही, द्वितीय भाग, १४४।
५. वही, पृ० २३६।

राजा बनराजी से लागत पौरुष नहि दरसावै ।
रघुनदन चन्दन द्रुम मानो अन्तर जरनि जुडावै ॥
भावै नही पिताप्रन सजनी सारँगपानि सोहावै ।
'अग्रस्वामि' मोहनी मत्र लिये चितवन चितहि चोरावै ॥ २ ॥

राग कान्हरा

तात प्रन काहे को कियो ।
कठिन पिनाक राम कर कोमल धीर न धरत हियो ॥
मधुर मुरति आनदकद सम नाहिन और बियो ।
बक्र चितवनी साँवरे सखी चित बित चोरि लियो ॥
रघुपति तजि जे रति करैं धृग धृग जिवनहि जियो ।
'अग्रस्वामि' रस बस भई मैं मन मोह लियो ॥ ३ ॥

राग टोडी

देखु री नीके रघुनन्दन ।
सीता कहनि सखी अपनी सो रसिकराय सिरमौर स्याम तन ॥
चितवत दृष्टि चलत नहि इत उत रूपरासि मो मो मन फदन ।
'अग्रस्वामि' सो मोह बढ्यो अति ज्यो चकोर चदहि अभिनदन ॥ ४ ॥
देहरी धँसत जब जे हरी देखि मन गहि गयो उठे उर लाई ।
अति आदर सौ भरि अँकवारी प्राननाथ पलका पधराई ॥
आगत स्वागत बारि बारि तन बीरी मुहाथ बनाइ खवाई ।
बार बार आलिगन चुबन मनहुँ रक निधि पारस पाई ॥
बचनामृत सो सीचि बिबिध भाँति जनककुँवरि रघुनाथ लडाई ।
जालरध्र कै निरखि 'अग्र' अति कामकेलि सुख बरन्यो न जाई ॥ ५ ॥

राग केदारा

लाल भयो रोमांच प्रिय को आगम जान्यौ ।
अनग रौर गए दौरि अजिर मे अति आतुर ह्वै अग राम पहिचान्यौ ॥
मेघागम ज्यो नृत्य कपाली नूपुरधुनि मन मान्यौ ।
सुख समाज सो मिली 'अग्र' प्रभु तन मन एकता सान्यौ ॥ ६ ॥
सुख सेज पौढ़िये राम सीतारवन ।
राग रग रुचिर सौरभ सौज बीटिका चित्र चँदवा बिबिध सुन्दर भवन ॥
रूपलावन्य गुन कोकबिद्या कुसल बचन रचना बिदुष पिया पारस गवन ।
जानकीजी राजीवनयनकी मैनछबि 'अग्रसहचरी' सुगम और जाने कवन ॥७॥

राग जयतिश्री

सुरतात प्रिया पति दोऊ अतिसय करि निद्रा अधीना ।
जस्त कर्दम चचुकी सिपाउर तामें भँवर भयो यक लीना ।।
बासलुब्ध को सब्द श्रवन सुनि सभ्रम राम बिलोकत बाम ।
रही पुष्प अवसस हृदय मो साखि कसदि मारि गयो काम ।।
प्रेमविकल परतीति न मानत वैदेही हित पावत खेद ।
'अग्रस्वामि' आधीन तिया के मिथ्या दुख आयो तन सेद ।। ८ ।।

राग ललित

रजनी अल्प राम उठि बैठे सोय गई सीता आयो भोर ।
बार बार विधुबदन बिलोकत मानो पीवत सुधा चकोर ।।
हरे हरे चुवन चमक्न उर कर सो चिबुक चाह टकटोर ।
जागि परी जानकी तेहि छन आलसपगे नयन की कोर ।।
बहुरि अक आरोपि पिया को गौर स्याम सोभित एक जोर ।
'अग्र अली ऐसी छवि छांडि धिग जाको आवै उर और ।। ९ ।।

रघु निरख न मुख कुँवरि को
नकवेसरि अटकी लट श्रीकर आप सँवारी ।
सुन्दर सुहागनिधि जस पूरि रह्यो विस्वमध्य
स्ववम किये रामचद्र नहिं त्रिभुवन ऐसी नारी ।।
गौर स्याम मनभिराम वारि फेरि कोटि काम
जीवनफल देखि देखि 'नाभो' बलिहारी ।।१०।।[1]

राजकुँवरि पूजति मजारो ।
कहा न कीजै अपने काजे गूढ़ भाव एक बात विचारी ।।
निसा घटत सुख हानि होत है वाल बैर कोनो तमचारी ।
याही दोष बिलारी पाली पय प्यावत राघव के प्यारी ।।
जो चुप किये रह वह कुक्कुट तौ कत भोर होय हिय हारी ।
निद्रा भग ममर रस समित 'अग्र' अदूषित जनकदुलारी ।।११।।

राग देवगधार

रजनी जागे भामिनी आवत मग मधुर उचरत जय गान ।
डगमगात पग धरत धरनि पर राम अधररस कीनो पान ।।
आलस भरे अँहात जानकी मुदित मगन राखो पिय मान ।
अग अग ऊँघाहि देत सब गर्वमु अपि लिये रतिदान ।।

---

१ पदावली में सकलित यह पद अग्रदास का न होकर उनके शिष्य 'नाभादास' का है, यह 'नाभो' छाप से ही स्पष्ट है ।

सुबस किये सुंदर बर रघुपति त्रिभुवन जुवती नहिन समान।
सहचरि सबै बिलोकि बिबस भईं 'अग्र अली' बलि वारति प्रान ॥१२॥

राग बिलावल

जीति आई कामकली रागरग राती।
जागी निसि चारि याम बार बार जँभाती॥
पलटे पग धरनि धरत अधर सुधा माती।
मडल भुज जोरि मोरि अग अग अँगराती॥
टूटेउ उरहार चिकुर कचुकी उलटाती।
अधरनि छबि कल कपोल बनी पीक पाँती॥
नख सिख हरषात गात बानी तुतराती।
सीताछबि निरखि सखी 'अग्र अली' जुडाती ॥१३॥

कीर निसा की कहति केलि।
गुरजन सुनत सकुचित सीता भूषन चापि चून दई मेलि॥
हारचो व्याज बीज कह्यो मुज्यौ तौ बदि जानो ज्यो स्वाद।
सुक सभ्रम मै परचो बिमापनि भूलि गयो पूरब अनुवाद॥
नागरि उक्ति यह उपजी सखी रीझि रही बदन निहारि।
'अग्र अली' कहे अचरज नाही वैदेही राजा कुँमारि ॥१४॥

राग बिलावल

एक नारि व्रत न्याय धरचो।
अखिल भुवन अचुत नहि हरि को निरखै यह रघुनाथ करचो॥
बनिता रतन सिरोमनि सीता सील सुजस सबही प्रचरचो।
ता तन मगन भये तन मयना पैसि राम नहि निकरचो॥
कहा भयो जो कोटिक पत्नी सुख स्वारथ एकौ न सरचो।
रूप उदार विनय लावन्य गुन 'अग्रस्वामि' मन रह्यो भरचो ॥१५॥
जुवती गुन जानकी पतिव्रत भाग सुहाग सुभगता सागर।
सत्य सौच जित क्रोध दया जुत कीरति बिसद लाज मृदु आगर॥
एक नारी ब्रत न्याइ अमित गुन रिझय राम नयना बर नागर।
त्रिया तिलक बिदूषन भूषन 'अग्र' स्वामिनी जगत उजागर ॥१६॥

राग धनाश्री

रामरवनि गजगवनि अवनिजा चपकबरनि मीन मृग नयनी।
बदन इदु अरविंदु कुद द्विज अधर बिंब बिद्रुम पिकबैनी॥

सीता के सौंदर्ज सील धुत उपमा सकल सकुचि भई गैनी।
बनिता वर त्रैलोक उजागर 'अग्रस्वामि' आनँद दैनो ॥१७॥

राग टोडी

राम सो राम सीता सो सीता।
सिव विरचि सारदा सेस सुक पटतर खोजत कलप वितीता ॥
सुदर सील सुहाग अमित गुन अखिल लोक नर नारी जीता।
श्री 'अग्रस्वामि' स्वामिनी उजागर नेति नेति श्रुति गावत गीता ॥१८॥

राग कान्हरा

सिया अस्नान उजटि नाते आज कीन्हो वेतिक उत्तम नारी।
तेई सील सुदर सौभागिन बहुत गुनन के भारी ॥
जानकी अग तीरथ में न्हाई वाम भई जग उजियारी।
वनिता श्री रघुवीरवल्लभा 'अग्र' स्वामिनी नहि कोउ सारी ॥१९॥
जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम करत सीता को सुमिरन।
रामचद्र को ध्यान धरत मुनि बसति जानकी रामचद्र मन ॥
सिव बिरचि के धनुपधरन धन रघुवर के मैथिली महाधन।
परमहस कुल राम भजन मर 'अग्रस्वामि' एक पत्नी को पन ॥२०॥
साँचो सोहाग जानकी तेरो रघुपति रसबस कीन्हो री।
तोसी नारी नहि त्रिभुवन मे पिया प्रेमरस भीनो री ॥
'अग्रस्वामि' मन बचन कर्म तोको रीझ आलिगन दीन्हो री ॥२१॥
मेरी स्वामिनी सुहाग भाग अद्वितीय पटरानी।
रघुपति को और नारि सपने नही सोहानी ॥
जाकी लावन्य गुन रूप सील सबही लोक तानी।
'अग्रस्वामि' सीताराम बिदित जग कहानी ॥२२॥
मेरी रानी को अविचल सुहाग।
जाते परसि और नहि परसी रघुपति दिन दिन बाढ्यो राग।
सीता सी मिरजी न सुपतनी वेलि अकटक लग्यो न दाग।
'अग्रस्वामि' स्वामिनी अहर्निस सुख बिलसत दोउ भूरि भाग ॥२३॥
सर्वोपरि मेरी स्वामिनी राघौ की प्यारी।
जाको परसि और नहि परसी व्रतलीना एक नारी ॥
स्ववस किये दसरथ नृपनदन नाहिन कोऊ सारो।
वैदेही के वदन कमल पर श्री 'अग्र अली' बलिहारी ॥२४॥

राग कल्यान

वदनारविंद पर बलि बलि कियो प्यारी ।
इदु कुद विद्रुम जपा त्रिश मिलि मीन मृग लीन खजन छबि हारी ।।
नासिका कीर तिल पुप्प दाडिम दसन हँसनि बिगसनि कमल कहा करै सारी ।
भाल दीपति मुकुर भौंह राजी भँवर भृकुटी सरचाप मनमथ सत हारी ।।
चिबुक त्रिभुवन चारु सुभग सुकपोल तर आनँद कद बिधिना सँवारी ।
राम सुखदैन मधुबैन स्वामिनी 'अग्र' जानकी नारी वर नृप दुलारी ।।२५।।

राग सारग

बलिहारी सीतावदन की ।
उज्जल अरुन परस्पर दीपति अधर बिंबफल रदन की ।।
वेसरि मुकुता चपल होत अति सोभा बीरी अदन की ।।
लोचन चारु चितै मधु बरसत राम काम दुख कदन की ।।
सचीसहित सोभा त्रिभुवन की वारौं माननी मदन की ।
'अग्र' स्वामिनी बिसद चद्रमुख सौभग हृद सुखसदन की ।।२६।।

सभ की सोभा सिमिटि लई ।
वैदेही को वदन बिलोकत अतरभूत भई ।।
सीताराम गजगति हस जघ कदली कटि केहरि दसन अनार ।
कुच नारगी कात कलधौतहि मुख बिधु अबुज चारु ।।
ग्रीवा कबु कपोत अधर विद्रुम द्युति नासा कीर ।
नैनन मीन मृग वेनी अहि कोकिल गिरा गभीर ।।
श्रीहत भए सकुचि सब जित तित पर्वत जाय लियो ।
कोई अरन्य अकास अगिन जल कोउ पाताल दियो ।।
बलि अरु बरुन वन्हि वासव मिलि बदत भये यह बात ।
सीतासरन गहो सब तजि कै श्री 'अग्र अली' बलि जात ।।२७।।

राग धनाश्री

भूपन मनिमय नाहिन भावत ।
सीता भीत पीय अग परसत नृपपितनी की सुधि जब आवत ।।
जम्बू नद गुहि अमित पाट मो नाना भाँति बनावत ।
कुसुम कटाव कचुकी सारी कुमकुम कुचन सु दोय जनावत ।।
पद्मपानि पद चित्र महावर पाँति तबोल कज्जल छवि पावत ।
सहज सुभग वैदेही अंग अग 'अग्रस्वामि' येहि भाँति रिझावत ।।२८।।

राग कान्हरो

नमो जानकी जगतमनि रूपकमनी।
बदन बिधु रुचिर रद हास ईषद सुखदाम हृद काम की ताप समनी।
नमो सुक नासिका नैन मृग मीन छवि भाल बर भाग सौभाग दरसै॥
प्रेमपूरित बैन अलक इक उर अैन सहज अलवेलि पिय मनहिं करसै।
नमो कंठ कपोतिनी उर जडत गिनी सिंहु मधि देस श्रोनि सोहै॥
जघ कदली कर्म गर्व गति हरति इभु सुदुति नख चंद्र उपमान को है॥
नमो बिसद सत कुम्भ सम भाँति आभा वपुप मनि खचित बिबिध
भूपनिधारी।
ब्यालि वेनीदंड अग दीपति चंड सुभगता सनि रही रामप्यारी॥
नमो भरत सगीत गंध्रबरूपा कोकनिधि सुघरवरनारि सब सीस नावै।
रुद्र ब्रह्मादि कवि और केते कहीं स्वामिनी 'अग्र' नहिं पार पावै॥२६॥

नरवर राम प्रियावर सीता।
या जोरी की उपमा नाही धाता निरखि रह्यो भयभीता॥
सोच सदेह करत चतुरानन दूजे काहू सृष्टि चलाई।
उभय लोक परयत फिर्यो पै येहि मूरति गति कहूँ न पाई॥
वेद बिचार कियो जब ब्रह्मा नेति नेति इनही को गावत।
राम इष्ट जगतपति नियता सोई 'अग्र अली' जिय भावत॥३०॥

राग मलार (झूलन के पद)

तरुन तमाल बरन रघुबीर जानकी कचन की लता।
सौदामिनि नव सग मानहु पुलकि प्रेमलता॥
निरखि रेखि जबूनद जैसे दोऊ सग रता।
श्री 'अग्र अली' सीतापति सोभा को करि सकै अता॥३१॥

राग कान्हरो

जनकपुर लागती जु सुहाई
रगीली अतिहि छबीली सब मिलि झूलन आई॥
सावन मनभावन पियप्यारी अवनी सहज सुहाई।
पावन कुज पुज सुख बरसत करषत मन बरपाई॥
कचन खंभ जडित डाँडी नग बिबिधि बिचित्र बनाई।
रेसम डोरि कोरि बनि आई चहूँ दिसि जलज जराई॥
लाली आल लाल रग झीमी लालन लाल लडाई।
झोका देत लेत सुख पिय को मद मद मुमुक्याई॥

उमगेउ रंग अनंग परस्पर मैन मल्हार जमाई।
गावहिं समर रग भरि भामिनि कोकिल कंठ लजाई ।।
ठाकुर हमरे राम मनमोहन अंगन रूप लोनाई।
ठकुराइनि मिथिलेस लाडिली सील सनेह मलाई ।।
होडाहोडी मच्यो है हिंडोरा सोभा कहि न सिराई।
श्री 'अग्र अली' प्रिय दंपति झूलत जनकलली रघुराई ।।३२।।

राग बसंत

मूंदत नैन राम सीता के चदा तन चितवन नहिं देत।
माँगो जो बल्लभा मृगन को सारगधर सकुचात यहि हेत ।।
प्रिया बचन उलंघन सक नाही उत्पति हते प्रलय ह्वै जाई।
दोऊ कठिन जानि रघुनदन हाँसी मिस यहि रच्यो उपाई ।।
जांचै जानकी कदाचि इद्र कुरग वेगि देउ आनी।
अति आधीन जनावत तिय के 'अग्र स्वामि' एते यह मानी ।।३३।।
रघुकुलबधू झरोखे झांकै राघौ खेलें होरी।
भरत परस्पर सुधि नहि पैयत को प्रीतम को गोरी ।।
जहँ तहँ राम जानकी सनमुख लाघव कहि न जाई हो।
केसर कुमकुम कीच मची है बरसत घन पिचकाई हो ।।
नभ बिमान गन थकित रहे है सुरवनिता सब गावैं हो।
पुष्प वृष्टि करि जय जय उचरैं प्रमुदित दद मचाई हो ।।
केलि कुलाहल कौतुक देखैं पुरबासी बड भागी हो।
सीताराम स्वरूप हृदय धरि 'अग्र अली' अनुरागी हो ।।३४।।

राग जैतश्री

अबके बसंत अधिक बनि आयो।
खेलत हुते सदैव अवधपुर यहि सुख कबहुँ न पाई हो ।।
और वेर ये सब हुत सखि मिलि मारति भरि पिचकारी हो।
अबके खेल सरोतर सनमुख कहि न जाइ छबि न्यारीहो ।।
चोवा चदन अगर अरगजा नाना रग अबीर हो।
केसर कुमकुम कीच मची मनो बरसत भादों नीर हो ।।
चग मृदग उपग म्वजरी मधुरे स्वर सहनाई हो।
जीतत जबहिं नायका नायक सहचरि उठति बजाई हो ।।
कोऊ सखी स्लाधि राम को कोऊ सीता गुन गावै हो।
श्री दसरथ जनक दुहु पीढ़ी दासी गारी देहिं दिवावैं हो ।।

यह छवि निरखि सुमन सुर बरसत उचरत जै रघुराई हो ।
सीताराम फागुरगराते श्री 'अग्र अली' बलिहारी हो ।।३५।।

खेलत राम रघुपुरी रुचि सौं बहु भाँतिन सुखदाई हो ।
इत जानकी जुवतिमडल में उत सोभित सग भाई हो ।।
चमर छत्र लिये ध्वजा पताका रचना रुचिर बनाई हो ।
सबै खेल का सौंज सजी है जैसे निघटन जाई हो ।।
बाजे बजन लगे दुहुँ दिसि ते गावति गारि सुहाई हो ।
मनहुँ दुरि दुरि छुटे मदमाते भिरत परस्पर धाई हो ।।
केसरि बारि कुमकुमा भरि भरि छुटत छिछि पिचकाई हो ।
प्रेरित पवन मनहुँ पावस रितु छिन बरसत झकवाई हो ।।
चोवा चदन छलबल करि कै प्रीतम मुख लपटाई हो ।
राजिवनैन लेत जब बदलो तब प्रिय देत दुहाई हो ।
हा हा किये तबहिं मलि छुटिहो कै सीता सिरनाई हो ।
मृगमद मलय अबीर सुख सुखी अजिरन कीच मचाई हो ।।
उमरि चल्यो अरगजा पनारनि बीथिनि नदी बहाई हो ।
कृस्नागर सो भरे चहबवा धूम धूप नभ छाई हो ।।
सोधौ लहरि महोदधि मानो पुरजन प्रीति कराई हो ।
भरति भरावत कुँवरि कुँवर रस होरी कहि किलकाई हो ।।
मनो मघवाधुनि ब्यापि रही सब उठत महल मे छाई हो ।
पखरोटा बीरिनि में पछी मिसु कै हाथ दिवाई हो ।।
खान लगे उडि गई चिरौंजी हँसि करताल बजाई हो ।
खम खम प्रतिबिंब स्याम के जहँ तहँ देत देखाई हो ।।
कुसध्वज कुँवरि भरति भ्रम सो जब तब हँसि करत खेलाई हो ।
पलटे पकरे जाइ सत्रुघन कज्जल आँखि अँचाई हो ।।
करत सबै भामिनि मन भायो बदौ तौ लेहु छुडाई हो ।
रग रँगे खेलत अँग अगन जनकसुता रघुराई हो ।।
रीझ सुमन बरसत सुर सघट देव दुन्दुभी बजाई हो ।
जालरध्र निरखत सुख जननी आनँदसिंधु बढाइ हो ।।
तन धन प्रान करत न्योछावरि बाजत बहुत बधाई हो ।
बीच कियो कौसल्या रानी फगुवा गोद भराई हो ।।
सीताराम विनोद फाग पर 'अग्र अली' बलि जाई हो ।।३६।।

राग मारू

सीताराम की बलिहारी।
जगभूषन निरदूषन जोरी राजत अवधविहारी ॥
सुंदर वर रघुवीर धीर अति सोभानिधि सुकुमारी।
श्री 'अग्र अली' उरवसो अहर्निस सील सरासनधारी ॥३७॥

हिंडोरने झूलत जनकदुलारी।
सखि इक ओर किसोर रूपनिधि विविध भाँति तन सारी ॥
कचन खभ पाटि पटुली डाँडी विद्रुमद्युति न्यारी।
पद्मराग मरुवा बेलन पन्ना आउ इन्द्रमनि भारी ॥
धाम निकट आराम हरित द्रुम क्रीडत तहँ सुकुमारी।
गावति हैं मिलि हरषि हिंडोरा कलकठिन उनहारी ॥
करत अँदोल लोर चचल चल जनु दामिनि छवि हारी।
साट लिये सजनी डरपावत नाम लेउ पिय प्यारी ॥
नाम लियो स्वरूप सुचि कर देमी ईषु धनुधारी।
श्रम स्वेदबिंदु निरखि वदन पर श्री 'अग्र अली' बलिहारी ॥३८॥

देखो झूलत राघो डोल।
जनकसुता लीने सँग सोभित गौर स्याम तन लोल ॥
हीरा पन्ना लाल पिरोजा रतनखचित बेमाल।
क्रीडत राम जानकी दोऊ बजै दुदुमी ढोल ॥
हँसत परसपर प्रीतम प्यारी आनँद बढ्यो सचोल।
श्री 'अग्र अली' मुनि सुनि सुख पावति बोलहिं मीठे बोल ॥३९॥

झूलत सिया राजिवनैन।
रतनजडित हिंडोलना सखि राम सुख के अैन ॥
स्याम अग पर गौर झलकत दामिनी घन गैन।
मैथिली रघुबीर सोभा निरखि लज्जित मैन ॥
नाम पिय को लेहु नागरि जो सखिन मन चैन।
जानकी नहिं लेत मुख सो देत लोचन सैन ॥
परस्पर झूलत झुलावत वदत मधुरे बैन।
अवधपुर नित केलि दपति 'अग्र' आनँद दैन ॥४०॥

राग जैतश्री

झूलत राम राजिवनैन।
जनकजा सनमुख विराजति तडित ज्यो घन गैन ॥

अतिहिं झूलत मनहिं फूलत रसहिं तोपत मैन।
लाल के उर लागि सोभा सुख की रेखे अैन॥
परस्पर अनुराग दोऊ बदत मधुरे बैन।
जालरध्र सो निरखि बनिता 'अग्र' उर सुख दैन॥४१॥

जलबिहार बिहरत सीता सग सुदर वर रघुराई हो।
ग्रीषम काल सुमार सरद सुख सरजू सुभग सुहाई हो॥
न्यारी न्यारी नाव सबनि की सीतल सौंज भराई हो।
लेहज चोहज बिबिध भांति फल सुगंध बरन्यो नहिं जाई हो॥
एकै कोट कुँवरि रचो भई राम लक्ष्मन भरत भाई।
भरत परस्पर कर अजुली जल मनो सीकर बरखाई हो॥
बिमला कमला कर्कटिका मेलता लाघव लेत बचाई हो।
लोचन लाल भए पयपूरित बसन अग लपटाई हो॥
निरखत नीरकेलि नर नारी, 'अग्र अली' मनभाई हो॥४२॥

उठे दोउ अलसाने परभात।
दसरथसुत श्री जनकनदनी सौंधे भीने गात॥
बिमलादिक सखि चँवर ढुरावहि हरपि निरखि मृदु गात।
श्री 'अग्र कली' को श्रीरज दीजे सकल भुवन के तात॥४३॥

चहियत कृपा लली सीता की।
नवधा भक्ति ज्ञान का करनो मिटि गई सक वेद गीता की॥
पटमत वेद पुरान पुकारत करत बाद नर बपु बीता की।
झगरो करैं अरुझे सुरझैं ना मिटी न एक द्वैत भीता की॥
जाकी ओर तनक हँसि हेरति करत सहाय राम जू ताकी।
श्री 'अग्र अली' भजु जनकनदनी पापभँडार ताप रीता की॥४४॥

जै जै श्री बनप्रमोद रसिकन सुखदाई।
सरजू तीर दिव्य भूमि बेलि लता रही झूमि
फूलन प्रति भँवरा अति गुजत मनभाई॥
कुज कुज प्रति अनूप बिलसत तहाँ जुगलरूप
जनकलली रघुनदन मधुर मधुरताई।
चद्रकला बिमलादिक नागरि नवीनी अति
मधुर जत्र लीन्हे कोइ ग्राम स्वर जमाई॥
गावहिं सब दिव्य तान सुनहिं लाल अति सुजान
रामरस भीजि मद मद मुसक्याई।

श्री 'अग्र अली' बिपिन राज यहि सुख तहँ नित समाज
जानत कोउ रसिक भेद जिन यह रस पाई ॥४५॥
आगे सखि पाछे सखि सखिन के मध्य आवै
अचरानि ओट राजै राजदुलारी।
अकनि अकनि पग धरत धरनि पर होत ललित नूपुर झनकारी ॥
करत प्रवेस महल मे सजनी अरसपरस सुख उपजत भारी।
दपति छबि मोपै कहि न परतु है श्री 'अग्र अली' तापर बलिहारी ॥४६॥

अथ भोजन पद

छबीले दोऊ आवत भोजनसाल।
झूमत झुकत चलत मतवारे रसिक रगीले लाल ॥
करत कटाक्ष परस्पर लपटत दीन्हे गलभुज माल।
हँसत हँसावत रस उपजावत सग सहचरी जाल ॥
प्रानप्रिया कछु कहत नवेली हरषित होत निहाल।
श्री 'अग्र अली' बैठे दोउ प्यारे निरखत भोग बिसाल ॥४७॥
जेंवत श्री रघुबीर बने सखि सग लिये मिथिलेस लली।
भुज अस दिये बहियाँ जु लसैं बिहँसैं मृदु मजु अनग रली ॥
करि कौर सिया मुख देत पिया कहि स्वाद सराहत भाँति भली।
रस के निधि दपति रग भरे निरखैं चहूँ ओर किसोर अली ॥
मनिमदिर में झलकैं प्रतिबिंब मनोज के मानो बिहारथली।
अवधपुर नित्य बिहार करें लखि 'अग्र अली' जी की आस फली ॥४८॥
भले रूठो जी राम गोसाँई।
पायो राज पाट दसरथ के गहि लीन्हो ठकुराई ॥
जाय कहाँ मिथिलेस लली से निसरि जाइ गुमराई।
श्री 'अग्र अली' के सिर पर चहिये सीरध्वज को बाई ॥४९॥
यह मोहिं दीजे राघव राम।
दासनिदास दास के अनुचर कथा श्रवन मुख नाम ॥
मोक्ष आदि दै चारि पदारथ मेरो कछु नहिं काम।
चरनरेनु साधुन की सिर पर कृपा करो सुखधाम ॥
सतन सो अनुराग निरतर येहि बिधि बीते जाम।
श्री 'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधासिधु बिश्राम ॥५०॥
हम चाकर रघुनाथ कुँमर के।
द्वादस तिलक मनोहर बाना कठी कठ देखि जम टरके ॥

तुम्हिं जाँचि जाँचौ नहिं औरहिं नाहि भरोसो कहु नारी नर के।
द्वालीबद सदा प्रभु तेरो भयो गुलाम रावरे घर के।
'अग्रदास' यह पटा लिखायो दसखत दसरतसुत निज करके ॥५१॥

इनके अतिरिक्त अग्रदास जी के कुछ और पद मुझे इधर खोज मे प्राप्त हुए हैं। उनमे से १४ पद राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित 'पद मुक्तावली' नामक काव्यसग्रह (ग्रथाक १८८२) के हैं। भाषाशैली तथा वर्ण्य-विषय के विचार से इनके अग्रदास विरचित होने मे कोई सदेह नही है। शेष पद रसिक रामभक्तो द्वारा सकलित पूर्वाचार्यों के पदसग्रहो मे मिले हैं। भाषा तथा वर्णनपद्धति दोनो दृष्टियो से इनमें से अनेक की प्रामाणिकता सदिग्ध प्रतीत होती है। विभिन्न स्रोतो से सकलित इन पदो मे यत्र-तत्र सामान्य पाठ भेद के साथ कुछ एक दूसरे से बिल्कुल मिल जाते हैं—

(५२)

॥राग आसावरी॥

रामजनम आनद बधाई।
सुरतर कामधेन चितामनि अवधिपुरी मानौं ग्रह ग्रह आई ॥टेक॥
अतरीछ जन फिरत अवनि पर मिलन परसपर हूब बधाई ॥१॥
प्रफुलित हिदो नगरवासिन को बाल वृद्ध सब बात सुहाई।
भई भीर नाचत नर नारी वहो विधि गिने न जाई ॥२॥
मगल कलस चौक मोतिन के द्वारन वदनवारि बधाई ॥३॥
सुत को वदन निहारि नारि सब वारत भूषन लेत बलाई।
नारी नर कौसल्या रानी धन्नि भाग की करत बडाई ॥४॥
दसरथ राय न्हाय भए ठाढे कनक बसन अन धेंन मगाई।
परम पुनीत विप्रपद बदित दान मान ज्यौ घन बरषाई ॥५॥
मागध सूत भाट बदीजन अप्टसिद्ध मन वाछित पाई।
दसरथ सुत हौं नित प्रति देखौं अग्रदास के यहै मन भाई ॥६॥

(५३)

॥ राग गौडी ॥

आजि बधावो दसरथ राय आए हैं राजीव नैंन
आए हैं सुर के अैन ॥टेक॥
चैत मास नौमी उजियारी सब सजोग अनूप।
लगन महूरत नछत्र उच्चग्रह धरनचिह्न बड भूप ॥१॥

वसिष्ट आदि तपोधन धारी कीनौ यह निरधार ।
दुष्ट दलन सुपद सतन कौ भूमि उतारन भार ।।२।।
घर घर तोरन धुजा पताका मुकता वन्नवारि ।
दूध पूत भरी नारि सुहागनि सथिया रचत दुवारि ।।३।।
चदन चौक रचत आगन मैं दधि अरु दौब बधावैं ।
कनक थार सीपज भरि आछित मिलि सब मगल गावैं ।।४।।
निरत गीत बाजित्र वेद धुनि ठौर ठौर यौं भनियैं ।
लेहु लेहु प्रापति भई बानी बोल श्रवन नहि सुनियैं ।।५।।
पढैं निसान मृदग सप धुनि जै जै सब्बद उचारैं ।
करत्र कौतूहल कौसलवासी आनद बढ्यौ अपारैं ।।६।।
मागध सूत भाट बदीजन दान मान बहु पावैं ।
वरणाश्रम जतन अति धारी फूले अग न मावैं ।।७।।
भू देवन कौं भूमि बाज गज धेनु रतन अन देहै ।
पाय लागत सतोष सुवामिनि मुदित आसिषा लेहैं ।।८।।
सुरतरु कामधैन चितामनि कौशल्या सुत जायौ ।
अग्रदास रघुपति कै आगम मन वछित फल पायौ ।।९।।

(५४)
।। राग कन्डो ।।

जाहि भयौ परसाद राम पदरज कौ ।
त्रिलोकी लागत ताहि फीकी आसन इन्द्र बैठिबौ गज कौ ।।
अष्टसिद्धि नवनिधि तीन पदारथ अद्ध पतिता अज कौ ।
मुक्त बतूर धाम निहिन मानत घट्यौ सुभाव कामना कज कौ ।।
दीयौ हूँ नहि लेत हरी कौ उपज्यौ राग सहज कौ ।
चरन धूरि फल मूलि अगर प्रभु अकुस कुलिस कँवल जव धुज कौ ।।

(५५)
।। राग मलार ।।

तीज हिंडोरैं झूलत रानी ।
सुरतिकीरति उरमला माडवी रूप सील गुन पानी ।।टेक।।
मच्यौ हिंडोरौ नाम लिवावत चतुर सपी मुसकानी ।
सीयाजू सकुचि रही नहि बोलति अग्र अली मन मानी ।।१।।

(५६)

॥ राग मलार ॥

सावन आयौ हे रग हेली ॥
सावन तीज सबै सजि पेलैं आवौ मिलौ सहेली ॥टेक॥
सजल घटा उमगी चिहुँ दिस तैं प्रफुलित है द्रुमबेली ।
हरी हरी भूमि बूंद अति बरषैं रतिपति गति सब पेली ॥१॥
बरन बरन भूखन पट पहरैं उत्तम नारि नवेली ।
मुरति कीरति उरमला माडवी च्यारौं लाड गहेली ॥२॥
अपनें अपनें ग्रह तैं निकसी आनि जुरी इक सैली ।
अग्र स्वामिनी की छवि निरपत तन मन बारदि बेली ॥३॥

(५७)

॥ राग मलार ॥

हिंडोरै झूलत जनक दुलारी ।
सषी इक जोर किसोर रूपनिधि बिबिध भाँति तन सारी ॥टेक॥
कचन षभ पाट पाटली डाडी बिद्रुम दुति न्यारी ।
पदम राग मरवा वेलनि पुनि आड इद्रमनि भारी ॥१॥
धांम निकट आराम हरित द्रुम क्रीडत तहा सुकुमारी ।
गावत हैं मिलि हरपि हिंडोरैं कल कोकिल उनहारी ॥२॥
करत अडोल लोल चचल चल घन दामिनि छबिहारी ।
साटली पैं सजनी हरपावति नाम लेहु पिय प्यारी ॥३॥
नाम सीयौ स्वरूप सोचि करि इप दए धनुधारी ।
श्रम सेत बूद निरपि बदन पर अग्र अली बलिहारी ॥४॥

(५८)

॥ राग मारू ॥

रघुपति वेग बिलब कीजै ।
सीता सोच भये पीछे वै इहां न पानी पीजै ॥टेक॥
आनदादि योग तिथिउत्तम लगन बिचार ।
सूरज सोम नक्षित्र ग्रह नीके रिपगण कीयौ निरधार ॥१॥
दिसासूर योगिनी पीठ पुनि त्रिय पूठि के गामी ।
सम सूचिक सभ सुगुण होत हैं सब सुष के अभिरामी ॥२॥
अनुज सेप अनुचर प्रतवानर राम सहायक राजा ।
कहा सायर कहा संकरपानन वेगी एक है यह काजा ॥३॥

अग्रस्वामि सुग्रीव विनति प्रभु चलिये एही काल ।
सीता लाभ सुणे वदि छूटे सत्रु जाय पयमाल ।।४।।

(५६)

।। राग भेरी ।।

आजि रामजानकी क्रपाल सुद सोहैं ।
निरषत सुर नर मुनिजन शिव बिरचि मोहैं ।।टेक।।
श्री रामजी कैं क्रीट मुकट रतन जटित धारें ।
सीयाजू के सीस फूल कोटि चद्र वारें ।।२।।
श्री राम जी कै कुडल छवि कोटि भान सोभा ।
सीयाजू कैं करनफूल श्री राम कौ मन लोभा ।।३।।
श्री रामजी कौ सोहत उर मोतिन की माला ।
चार हार रुचिर पहरैं जनक कुवरि बाला ।।४।।
श्री रामजी कटि किंकनी रु ण झुण रु ण झुण बाजै ।
सीयाजू कै छुद्र घटि कोटि मदन लाजै ।।५।।
श्री रामजी कर धनुषबान पीताबर राजै ।
सीयाजू कर कमल सुरग चूनरी बिराजै ।।६।।
श्री रामजी घनस्याम अग छबि के अभिरामा ।
सीयाजू कचन गौर अग लजित सपत कामा ।।७।।
यह ही ध्यान हिरदै सौं टरत नही टारै ।
अग्र स्यामि चरन उपर कोटि काम वारे ।।८।।

(६०)

।। आरती ।।

आरती वारत रघुपति राया । सुरनर मुनि जन कौतिक आया ।।टेक।।
घटा निसान घन झालरि बाजै । जगमग जोति अवधपुर राजै ।।१।।
बदीजन जस द्वारै गावैं । सूरज वस प्रताप बढ़ावैं ।।२।।
मात कौसल्या श्री रामहि देषै । जीवनि जनम सुफल करि लेषै ।
क्रीट मुकट कर धनुष बिराजै । तीन लोक जाकी शोभा राजै ।
मोतीयन थाल भरि मईया वारै । अग्रदास जन आरती उचारैं ।।१।।

(६१)

।। राग कनडौ ।।

येही सुभाव परौ मेरी वानी ।
अहो निसा गाऊ गुन पावन राघौराय जानकी रानी ।।टेक।।

जागत सोवत सीतापति पद आन कथा हिरदै नहिं आनी।
जहाँ तहाँ रट परी रसन जस मानौं मति काहू की कानी ॥१॥
अघुद अनाप पाप करि जानौं रमा रवनि उबरू सुपदानी।
वैदेहीबल्लभ की कीरति अग्र मौज पावै मन मानी ॥२॥

(९२)

॥ राग कनडो ॥

रामचन्द्र पद भजिबे लायक।
अभै करन भव तिरन पोत दिढ जुग जुग भापि वेद के वायक ॥टेक॥
चितत चरन सकल सुख करतल व्यापत नहीं सूल कौ भायक।
सतन की रक्षा के कारण निस दिन लीयें रहत कर सायक ॥१॥
गौतम घरनि गिरा जल तारे सरन भभीषन दपि ज्यौं सहायक।
सेवा अलप मेर स्रम मानत करुनासिंधु अजोध्या नायक ॥२॥
सिव बिरंच सनकादि वेणुधर सारद सेस विमल जस गायक।
जानकी रवन अग्र सिर सेहरौ अग्रदास उर आनद दायक ॥३॥

(९३)

॥ राग कनडो ॥

निबहो नेह जानकीवर सौं।
येही मनोरथ मन बच मेरे सनमुष रहूँ निति सारगधर सौं ॥टेक॥
उसकौं नहीं द्वारि काहूँ कै नेम परौ दृढ दसरथ घर सौं।
अष्टसिद्धि नवनिध सीतापति पद काम नहीं मोहि च्यारौं फल सौं ॥१॥
प्रीत न वैर असुर सुर नर सौं निघरक रहौं डरौं नहिं डर सौं।
रावन अनुज बालि कौ बधू दुसह आपदा टारी पर सौं ॥२॥
मोह घटी सहार सकल सौं अनुराग बढो निति करुनाकर सौं।
अग्रदास की यही बीनती राम राय छाडौ जिन कर सौं ॥३॥

(९४)

॥ राग सोरठ ॥

मेरे राघवै कठिन धनुष कैसें तोर्‌यौ।
बडे बडे भूप धपत दीपन के तिनहूँ नैंक न चहोर्‌यौ ॥टेक॥
पिता पुन्य पय पीयो तुम्हारौ विस्वामित्र सहाई।
यह ही सजोग बनो मेरौ जननी वातें लीयौ उठाई ॥१॥
चंपित चूंवति गोद बैठारि कें बाटत बहुत बधाई।
अग्रदास कौसल्या सुत पर बारि फेरि बलि जाई ॥२॥

(६५)

॥ राग सोरठ ॥

लेत बलैया रानी रीघ के लेत बलैया रानी ।
जाकी कृपा सदै फल पायो अदभुत दुलही आनी ॥टेक॥
सूरजवश हुती बहौ बनिता अैसी सुनी न देखी ।
रूपसील सागर गुन सीवा सबही बधू बसेषी ॥१॥
जाकी कृपा जनक से समधी अलभ लाभ मैं पायो ।
कर पद जोरि कहै कवसल्या कीयो मनोरथ भायो ॥२॥
विद्रन पुनि कीये सूत मेरे मौपै बरनौ न जाई ।
गाधिसुवन परि तन मन करु सोई अग्रदास निधि पाई ॥३॥

(६६)

॥ राग ललित ॥

गावति श्रीप्रसाद सिय प्यारी छवि छकि मतवारी ।
वीण बजावति मधुरे स्वर सो मधुर ताल सुठिकारी ॥
सुनि जागे पिय प्यारी प्रीतम आलस भरे खुमारी ।
बिनदूकूल बैठे पलगा पर काहू सुधि न सम्हारी ।
प्यारी लट छुटि सोह उरज पर जनु नागिन दुतिकारी ॥
अग्रअली निरखति यह छवि को तन मन धन बलिहारी ॥

(६७)

॥ राग ललित ॥

भरि अनुराग परस्पर दोऊ अधरामृत रस पियत खिलारी ।
दत नखोछत दोउ अग झलकत मनु युग द्विरद वैठि लड़ि भारी ॥
कबहुँ प्रेम भरि लपटि झपटि दोउ करि विपरीत क्रिया रसकारी ।
प्रीतम प्यारी को कह प्यारे प्यारी प्रीतम को कहि प्यारी ॥
चारुशिला रुख पाय अग्रअलि यह सुख झाकति झाझरि द्वारी ॥
जाहि न यह सुख निरख्यो नैनन जप तप योग व्यर्थ श्रमकारी ॥

(६८)

॥ राग ललित ॥

भोर भये नव रग महल मे राजत जनक लड़ैती लाल ॥
स्याम गौर अशन भुज दीन्हे कछु आलसयुत नयन बिशाल ॥
प्रेम मगन दोउ उरजि रहे हैं कनकलता जनु डार तमाल ॥
अग्रसहचरी तन मन वारत उझकि झरोखे झांकति बाल ॥

(६६)

उठे दोउ अलसाने परभात ।
दसरथ सुत श्रीजनकनन्दिनी सोंधे भीने गात ।
बिमलादिक सखि चँवर ढुरावति हरषि निरखि मृदुगात ।
अग्रअली को श्रीरज दीजै सकल भुवन के तात ॥

(७०)

॥ राग देवगन्धार ॥

जीति आइ कामकेलि रामरग राती ।
जागी निसि चारियाम बार-बार जम्हाती ॥
पग दे पद धरति धरनि अधर सुधा माती ।
मडल भुज जोरि मोरि अग अग अगुडाती ॥
टूटे उर हार चिकुर कचुकि उलटाती ।
अधरनि छत कल कपोल बनी पीक पाती ॥
नख सिख हरखात गात बानी तुतराती ।
सीता छवि निरखि-निरखि अग्रअलि जुडाती ॥

(७१)

दतुवन करत सिया रघुराई ।
सुन्दर सुखद रमीली दतुवन रदन धरत छबि छाई ॥
जीभी कर जल परसत दोऊ मुख प्रछाल अगुछाई ॥
अग्रअली उरझी चितवनि मे मन्द मन्द मुसुकाई ॥

(७२)

॥ मगल ॥

मगन करि शृगार सुतन मगल मई ।
मगल थार सजाई द्रव्य मगल मई ॥
मगल कर लिये सौज चली मगल मई ।
पहुँची हेमनिवास जहाँ मगल मई ॥
निज-निज सखि लिये वाद्य बजावत रस मई ।
गावन सगि बहु नारि राग मंगल मई ॥
आलस युत प्रिय प्यार जगे मगल मई ।
सखि सब झाँझरि माह विलोकति मुख मई ॥
देखत युग दिपरीत रहस मगल मई ।
हिन दुरम झमकात गात सब रस मई ॥

लखि सखि सब सुखसिन्धु मगन मगल मई ।
बैठे दिय गलबाँहि रूप मगल मई ॥
सखि सब रूप निहारि वारि तन मन दई ।
पुनि दोउ को वैठाइ चौकि रतनन मई ॥
मगल द्रव्य दिखाई प्यारी प्रीतम नई ।
पुनि दोउ के शृगार करी मगल मई ।
मगल भोग लगाइ शेष सखियन लई ॥
आरति करि पट वारि वारि मगल मई ।
अग अग छवि अवलोकि सखिन बलि बलि गईं ॥
मगलमय यह ध्यान अग्र जे गावई ।
पिय प्यारी रस महल टहल सुख पावई ॥

(७३)
॥ सुगन्धा छन्द ॥

मगल आरति करि सखि राम रिझाइ के ।
भूषण कछुक उतारहिं प्रभु मन पाइ के ॥
कोइ सखि पट पहिरावहिं दूसर छोरि कै ।
अष्ट कमल दल मणि चौकी दुइ जोरिकै ॥
द्वौ चौकी वसु वसु सखी टहल चतुरि बडी ।
अष्ट कोण दल दल पर आयसु लखी खडी ॥
बागीशा, माधवी, प्रियाहरि, मनजीवा ।
नित्या, विद्या, सविद्या, कूटरूपा—सीवा ॥
आठौ मुख्य दिगन द्वौ खडी सोरह सखी ।
अवरनि ते लै देहिं आठ कहँ मन लखी ॥
सिय चौकी पर मुख्य आठ सोरह सखी ।
जस रघुवर सेवा महँ तस सिय के लखी ॥
विमला, उतकर्पणी, क्रिया, योगा, प्रवी ।
ईशाना, ज्ञाना, सत्या, सेवा कवी ॥
आठ आठ जे मुख करहिं मन की लखी ।
समय समय सब लिहे अपर कोटिन सखी ।
परम मुख्य सखि पाँच सुशीला, लछमना ।
हेमा, अतिशीला, सुचारुशीला भना ॥

पाँचहूँ की आज्ञा सुसर्व सेवा सुधी।
अर्घ देति सखि अग्र राग सिय की रुची॥

(७४)

॥ कवित्त ॥

श्री प्रसाद प्यारी औ प्यारे और चारुशीला
अंगन सुगन्धमय उबटनो लगावती।
दोउन के खुलेगात अंगन छबि झलमलात
मानों शशिकोटि सुधा किरण को लजावती॥
निरखि-निरखि सुभग गात आनन्द उर में समात
कोटिन रति काम आली दोउन पै वारती।
कोमल कर में सुधार उबटनो लै बार-बार
दोउन सखि हाथ अग्र देति रस भावती॥

(७५)

॥ उबटन ॥

सिय प्यारे को (सखिया) लगावति उबटन।
पदमराग मणि की चौकी पर दुग्ध फेन सम बिछे बिछावन॥
तापर स्यामा स्याम बिराजे कोटि मदन रति द्युतिन लजावन।
अति सुगन्धमय तैल नरायन तामे और मिलाय सुगन्धन॥
सिरष कुसुम हूँ ते अति कोमल अंग-अंग सुकुमार निरखि तन।
लै उबटन कर चहत लगावन करन कठोर समुझि हिय धरकन॥
अति भयभीत सहमि सखि लगवति लखि अद्भुत छवि वारति तन धन।
कोइ सखि प्रीतम अंग लगावति अग्र लगावति प्यारि सुभगतन॥

(७६)

उबटन करत रँगीली अलियाँ।
युगल अली दोउ चरन लगावति अंग विलोकति रलियाँ॥
युगल युगल सखि दोउ भुज मोहत उर पीठन युग अलियाँ॥
अग्रअली दोउ रसिक परस्पर मुख मींजत छलि बलियाँ॥

(७७)

उबटन करत सिया रघुराई।
सरस सुगन्धन सन्यो उबटनो लेकर उर सरसाई॥
जोई जोई अंग लगावत प्यारो सोइ प्यारी मन भाई॥
अग्रअली के जीवन दोऊ निरखत दृग न अघाई॥

(७८)

॥ कवित्त ॥

सिया अस्नान उबटवाते आज कीन्हीं ठेतिय उत्तम नारी।
तेई सील सुन्दर सौभागिनि बहुत गुनन के भारी भारी॥
जानकि अंग तीरथ में न्हाय बाम भई जग में उजियारी।
बनिता श्री रघुवीर बल्लभा अग्रस्वामिनी नहीं कोउ सारी॥

(७६)

मज्जन करत रसिक मनहारी।
सुभग सरोवर ताये दोऊ करिणी मग करि रिव पिय प्यारी।
सखिन सहित बिहरत जलमाहीं बहुबिधि करत केनि रसकारी॥
अंजलि भरि जल लेत परस्पर अँखियन मे मारत पिचकारी।
बस्त्र झीन अंगन सब झलकत अलि ससि दोऊ रस मतवारी।
करि मज्जन दोउ तट पर आये अग्र समय सम बसन सुधारी॥

(८०)

यज्ञ (सु) करत रसिक सिय प्यारो।
सुरतरु तर मनिमय वेदी दाहिन सिय पिय बाम निहारो।
दाहिन इक अलि थार लिये कर पायस ले सिय पिय करधारो।
द्वादश आहुति युगल मन्त्रसों जातवेद तिपित किय भारो।
हवन कुंड परिकरमा कीन्हे अग्र अली के प्रान अधारो॥

(८१)

॥ कवित्त ॥

दिब्य मंडप महा यज्ञ सिय साजयुत दानदिय श्रुति सखी रूप आई॥
बिप्र तनया कही सीय रघुवर लही हरदि दधि अक्षत लें छिटाई॥
धेनु भूपनबसन रत्न वासन असन अन्न वाहन अमित दीन जाई॥
पानिध्वे अग श्रृंगार दूसर किये पूजि पियप्यारी सब ससि सुहाई॥

(८२)

॥ शृंगार कवित्त ॥

प्यारी कटि सारी जरतारी सुधारी झीनी प्यारे कटि धोती सुपीली झलकारी है॥
प्यारी बक्षोज पर कंचुकी सुधारी झीनी प्यारे उर कंचुक सुमोतिन की धारी है॥
प्यारी गले चन्द्रहार प्यारे गले मुक्तमाल अंगद औ पहुँची समुद्री नग जारी है॥
चन्द्रिका सिपैच पाग कानन में कर्नफूल कुन्डल अलि अग्र हाथ आपने सुधारी है॥

(८३)

करत कलेऊ मिलि दोउ प्यारे जनकनन्दनी अवध दुलारे ॥
बरफी मोदक तपत जलेबी खाझा घेवर अति रुचीकारे ॥
बीज पाक रसगुल्ला खुरमा मोहनभोग पूप रसदारे ॥
पूरी कचौरी मठरी पापरि गुझिया गोझा मिसरी डारे ॥
और अनेक भाँति के व्यंजन कनक कटोरन अग्र सुधारे ॥

(८४)

॥ राग मगल ॥

अंग-अंग करि शृंगार सखिय सब साथ मे ।
पूजन चलि सिय सासु प्रेम रस राग में ॥
पूजन के सब सौंज साजि लिये थाल में ।
गावति नृत्यत चली सखिय उमंगात में ॥
पहुँची सासु निवास अग छवि को कहै ।
कोटिन रमा प्रकाश सिया द्युति अंग लहै ॥
देखि सासु अति प्रेम बातसल रस भरे ।
भरि अंकवार उठाय लेइ निज हिय धरे ॥
मस्तक को करिघ्रान बलैया लेइ के ।
इक टक मुख छवि निरखि अपनपौ भूलिकै ॥
सासु गोद ते उतरि सीय पूजन करी ।
षोडष भाँति विधान प्रेमरस में भरी ॥
सासुन दई असीस बधू अनुदिन बढ़ै ।
प्रीतमसँग अनुराग कबहुँ छिन ना घटै ॥
गग जमुन नहिं रहै जगत या ना रहै ।
अचल रहै अहिवात सिया पिया साथ है ॥
पूजन करि सिय सासु आइ निज महल मैं ।
प्रीउम करि आलिंग अग्र सिय टहल मैं ॥

(८५)

रघुवर मातु महल को जात ।
भरत लखन रिपुदवन साथ लिये और सखन के व्रात ॥
कंठ सुमन गजमुक्ता माला सिर पगिया झलकात ॥
मरगजि गात शृंगार मनोहर सुगन्ध अंग बतरात ॥

धनुष बान कर मे सुठि सोहत अग लखि मदन लजात ।
मातु महल के पौरी पहुँचे तुरग उतरि चहुँ भ्रात ।।
मातु समीप बैठि अनुजन युत करि प्रनाम नमि गात ।
गोद विठाइ लई कौशिल्या मुख चूमत हरषात ।।
बालक वत करि करि के चेष्टा मातु गोद हलरात ।
जननी देखि देखि सुख फूलैं आनन्द उर न अमात ।।
बहुत भाँति पकवान मिठाई निज कर कमल खिलात ।
करि कलेउ अम्बा प्रनाम करि सग सखन सब भ्रात ।।
अग्रस्वामि निज महल पधारे प्यारि लपटि भरि गात ।

(८६)

।। राग ललित ।।

मुकुट उद्योत होत, दिन दिशितैं, ब्रह्म काल नहि पावत ब्रह्म वित ।
आतुर अमर अगमनैं धावत रामचरन बदत निद्रागत ।।
उठि आवत जो जही तही ते भोर भये हेल परसन कौ ।
भ्रामक भोर भुली ऋषि सध्या दिव वासी आये दर्शन कौ ।।
निबसत निकर असुर सुर नर मुनि कोट घोष जय घोष अपार ।
अग्रदास बलि पादपीठ पर वदी वेद करत कै बार ।।

(८७)

चचल नारि तुम्हारी कीरति दशोदिशा को धावत ।
सुर नर असुर लोक लोकन मे रघुपति तुव यश गावत ।।
घर घर बार फिरति कुलटा ज्यो निकट नाहि सुचि पावत ।।
बिसद विसाल जसहि विस्तारत यह अचरज मोहि आवत ।
पतिव्रत प्रण छोडे है जद्यपि सबही याहि सुहावत ।।
सतन जीवन मूरि सदाही अग्रदास जिय भावत ।।

(८८)

अकरन न्याय कियो यहि धाता ।
अति ही चतुर सृष्टि रचना को अग्र सोच समुझन अति घाता ।।
फणिपति रघुपति को जस सुनि कै जोपै मूड डुलावत ।
फूट जाय ब्रह्माण्ड खण्ड सब बहुरि करत दुख पावत ।।
याते उरग श्रवण बिन सिरजे जगत भग डर आवै ।।
विमद श्रुत श्री अग्र स्वामि के कौन न ग्रीव डुलावै ।।

(८९)

चौसर खेलत रसिया लाला, प्यारी संग सुख आल ।
सारी फल जरिदार मखमली स्याम पीत सित लाल ॥
पासा हीरा के अति सुन्दर युग दल सखि कर चाल ।
श्री प्रसाद प्यारी दिमि चातुरि चारुशिला उत बाल ॥
दम्पति टोल हनें गहि गोटी कौतुक कर सिय लाल ।
चतुराई चित चोरत खेलत दोऊ नैन विसाल ॥
प्यारी हँसि प्रीतम को हेरत कर से न पासा चाल ।
दंगि लाल ठगवग मे रहि गये कुच बिच इन्द्र सुजाल ॥
भूलि गये चतुराई आपनि जीत लई सिय बाल ।
हारि लाल गिय अधर चूमि लई अग्र धूर्त बडे लाल ॥

(९०)

कौर निशा की कहत केलि ।
गुरु जन सुनत शुकुच सीता के भूषण चापि चून दइ मेलि ॥
हार्यो व्याज बोज कह्यो मुजो तो वदिहौं जान्यो जो स्वाद ।
गुरु सम्भ्रम में परयो विमायनि भूलि गयो पूरब अनुवाद ॥
मार्गार नारि उक्ति यह उपजी वैदेही वर राज कुमारि ।
अग्रअली कह अचरज नाही सखी रीझि रहि बदन निहारि ॥

(९१)

जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम जपत सीता को सुमिरन ।
रामचन्द्र को ध्यान धरत मुनि बसत जानकी रामचन्द्र मन ॥
शिव बिरंचि के धपुपपरन धन रघुबर के मैथिली महा धन ।
परमहंस कुल राम भजन भर अग्रस्वामि इक पत्नी को पन ॥

(९२)

॥ राग ललित ॥

वदनारविन्द पर बलि-बलि कियो प्यारी ।
कुंद इंदु विद्रुम जु बिम्बमिलि मीर मुगमीन मजन छवि हारी ॥
नासिका कीर तिल पुहुप दाडिम दसन हसन बिगसन कमन कहा करै सारी ।
भाल दीरत मुकुट भौंह राजीव वर, भृकुटि सर चाप मनमथ सब हारी ॥
चिबुक त्रिभुवन चाह सुभग सुकपोल वर, आनंद कंद विधिना सँवारी ॥
राम सुभगैन मधुबैन स्वामिनि अब जानकी नारि वर नृप दुलारी ।

(९३)

॥ राग गेटक ॥

देखु सखी मृगया खेलन को राम लखन चले जात ।
भरत लखन रिपुसूदन संग में सखन सोह बहु भ्रात ॥
चतुरंगिनी सेना संग लीन्हे दुंदुभि ध्वनि घहरात ॥
नखसिख सुन्दर गात मनोहर लखि द्युति काम लजात ॥
धनुष बान कर मुठि सुन्दर कटिभाथा चमकात ॥
चपल तुरग नचावत हँसि हँसि सोभा बरनि न जात ॥
अग्र नयन सर मारि बेधत फिरे जात मृग गात ॥

(९४)

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ।
अवधपुरी सरयू तट विहरैं दसरथ प्रान पियारो ॥
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल पीताम्बर पट धारो ॥
नयन विशाल मान मोतिन की खनि तुम नेक निहारो ॥
अंग अंग रूप अनूप बन्यो है चित्त में टरत न टारो ॥
माधुरि मूरति निरखो सजनी कोटि भानु उजियारो ॥
जानकि नायक सब सुखदायक गुण गण रूप अपारो ॥
अग्रअली प्रभु की छवि निरखी जीवन प्राण हमारो ॥

(९५)

श्री राघो जी की आज सजी असवारी ।
दसरथ राजकुमार लाडिले सोभा न्यारी न्यारी ॥
सजे तुरग रंग राजन के भीर गजेन्द्रन भारी ॥
जगमग झूल जरी की सोहैं रतन जडाव अंबारी ॥
धूम गरज सों भरत जी आये श्री रघुनाथ निहारी ।
होत कुलाहल लखन लाल के रिपु सूदन छवि न्यारी ॥
हरषे देव सुमन बहु बरषे जय जयकार उचारी ।
ब्रह्मादिक दर्शन को आये मोहत बदन निहारी ॥
रवि ससि कोटि वदन की सोभा चन्द्रकला उजियारी ।
अग्रअली प्रभु की छवि निरखे चरन कमल बलिहारी ॥

(९६)

अब देखो राम जी ध्वजा फहरानी ।
झलकत ढाल फरकते नेजा गरद उडी असमानी ॥

लक्ष्मण वीर बालि सुत अगद हनूमान अगवानी ।
कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण त्रिभुवनपति सै ठानी ।।
जा सागर को गर्भ करत है तापर सिला तराई ।
तिरिया जाति बुद्धि की ओछी उनकी करत बडाई ।।
भुव मण्डल से पकरि मगैहौं ओ तपसी दोउ भाई ।
हनूमान से पायक उनके लक्ष्मण से वलि भाई ।।
जरत अग्नि मे कूदि परत हैं कोट गने नहि खाई ।
मेघनाद से पुत्र हमारे कुम्भकरण वलि भाई ।
एक वार सन्मुख होइ लरिहैं युग-युग होत बडाई ।।
कहवि मन्दोदरि सुनु पिय रावण तोहि मम एक न भाई ।
राति को सपनो ऐसो भयो है सोने कि लक लुटाई ।।
बन्दर एक लक त्रिच आयो घर घर घूम मचाई ।
बाग उखारि समुद्र मे डारे लका आगि लगाई ।।
गरवी रावण गरव न कीजै गर्वहि लक लुटाई ।
जाय मिलो रघुनाथ कुवर से लक अचल हो जाई ।।
इक लख पूत सवा लख नाती मौत आपनी ठानी ।
अग्रस्वामि गढ लका घेरे अजहुँ न चेत्यो मानी ।।

(६७)

जब कर राघो जी बान धरैगे ।
सग रघुनाथ भीर वनचर के कपिदल कोपि चढैगे ।।
स्याम घटा घन झुकि अँधियारी सूरज गगन छिपैगे ।
पचरग बाण राम लक्ष्मण के सागर तीर ह्वैगे ।।
जा सागर को गर्भ करत है तापर सेतु बधैगे ।
जामबन्त हनुमान नील नल महाधुनि गर्ज करैगे ।।
रात भयानक सपना देखी लका कोट लुटैगे ।
नाम विभीषण बन्धु तुम्हारे रघुपति जाय मिलैगे ।।
मेघनाद से पुत्र तुम्हारे वे नहि धीर धरैगे ।
कुम्भकरण बल बन्धु तुम्हारे रण मे जूझ मरैगे ।।
महिरावण से जोधा मरिहैं लका नास करैगे ।
सहस्र योगिनी मगल गावैं खप्पर मारि भरैगे ।।
दशशिर और बीस भुज तुम्हरे एकहि बाण हरैगे ।
जो नारद मुनि मुखते भाषी भाखा राम करैगे ।।

कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण रघुबर नाहिं फिरैंगे ॥
अग्र स्वामि को लै मिलो जानकि किहु बिधि बिघ्न टरैंगे ॥

(९८)

हे ! यान चढे रघुनन्दन आये हनुमत चवर ढुरायोरी ।
जामवन्त सुग्रीव बिभीषण अरु अंगद मन भायोरी ॥
करत पुनीत देव सब हरषे दण्डक बन प्रभु आयोरी ।
देखि सिया दण्डक बन शोभा ऋषि बिचरैं भय त्यागोरी ॥
चरित पुनीत किये रघुनन्दन अवध निकट हरि आयोरी ।
उतरे पुष्पक निकट सरयू के रघुपति आज्ञा पायोरी ॥
चलत तृषित अति गये सकुच मानो मरुत जलद जल लायोरी ।
व्याकुल अध अवध जेहिं कारण उदित अरुण होइ आयोरी ॥
होत अवध आनन्द बधाई सखियन मंगल गायोरी ।
सुख अवलोकि कोक जिहि लाजै रघुपति पुरी सुहायोरी ॥
चर अरु अचर हर्षवत जहं तहं रघुपति कीरति गायोरी ।
द्विजन सहित आये नृप द्वारे अग्रदास गुण गायोरी ॥

(९९)

सीताराम अवधपुर बासी नित दरसन उठि पावैं जी ।
रघुवर लक्ष्मण भरत सत्रुहन शोभा बरणि न जावै जी ॥
संग सखा सरयू तट बिहरैं राम लखन दोउ भाई जी ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन उर वनमाल सुहाई जी ॥
अवधपुरी नर नारी निहारे निरखि परम सुख पाई जी ।
मातु कौसिला करत आरती अग्रदास बलिजाई जी ॥

(१००)

(आवत) रघुनाथ अनुज संग लीन्हे, खेल किये चौगाने ।
अस्व सुगज रथपागे, बन बिचित्रै बागे,
अरुण पीत सित चवर छत्र वर बानै ॥ खेल० ॥
राज कुमारी अति सुकुमारी झरोखन झांकति बिबिध—
मनोरथ ठानति, करत नयन मधु पाने ॥ खेल० ॥
कोउ वारत तन, कोउ वारत मन, कोउ वारत धन
निरखि नयन छवि, पुष्पांजलि बरषाने ॥ खेल० ॥
मंगल भाजन लै नीराजन, सत सुखसाजन प्राण
मिले जनु, जननि निरखि मन मानै ॥ खेल० ॥

कियो प्रवेस सदन सीता के कलपबेलि तरु रग
सीता के, अनग केलि रस रहस अग्र गुण गावै ।। खेल० ।।

(१०१)

करि सिकार आये रघुनन्दन सग सखन सब भ्रात ।
पितु समीप मे जाय जुहारे सुत लखि अति हुलसात ।।
निज कर कमल उठाय गोद धरि चूमत लखि भय गात ।
अति दुलार से पूछत पुनि पुनि खेटक के कुसलात ।।
कहि सुनाय खेटक की बातें सुनि सुनि पितु पुलकात ।
पितु प्रणाम करि निज वैठक मे आय गये रसरात ।।
रतन जडे चोकी पर बैठे वैठक मे सब साथ ।
श्रम सीकर मुख पर राजत जनु कमल कोष हिम पात ।।
चहु दिसि सखासौज सब लीन्हे सब सुन्दर सुठि गात ।
कोउ मुख ऊपर मधुर पवन करि निरखि-निरखि बलि जात ।।
बहु मेवा पकवान मिठाई सुरभी जल सितलात ।
भरि भरि थारन मे सजि सजि के अग्र भेजि बहुभाँति ।।
भ्रात सखन युत पावन लागे हँसि हँसि बहु बतरात ।
एक-एक सखन से बूझत प्यारे घर घर के सब बात ।।
करि भोजन अचवन को करि कै पानखात मुसुकात ।
गान वाद्य होवन लागे पुनि आनन्द कहि नहिं जात ।।
पुनि प्यारी सुमरन हो आई मिलन हिये उमडात ।
गान वाद्य को करि समाप्त पिय शीघ्र चले अकुलात ।।
अग्र स्वामिनी से मिल के हिय अति कीन्हीं सितलात ।।

(१०२)

रघुनन्दन प्रभु आवै ।
उपवन बाग शिकार खेलि के चढे तुरग नचावैं ।।
शीट मुकुट मकराकृत कुडल उर मणिमाल सुहावे ।
कटि पर सट पट पीत विराजै कर गहि बाजि उडावै ।।
चतुरगी सेना सग सोहनि पचरगधुज फहरावै ।
बजत निसान भेरि सहनाई गदरा गगन महँ जावै ।।
बदीजन गधर्व गुण गावत भावत प्रभुहि रिझावै ।
सुरनर मुनि ब्रह्मादि देवता इन्द्र पुहुप झरि लावै ।।

अवधपुरी कि बधूटी अटा चढ़ि निरखि परम सुख पावै ।
मातु कौसिला करत आरती अग्र अली बलि जावै ॥

(१०३)

॥ राग—टोडी ॥

देखुरी नीके रघुनन्दन ।
सीता कहति सखी अपनी सो रसिक राय सिर मौर स्याम तन ॥
दृष्टि चलत नहिं इत उत सजनी रुप रासि सो मोमन फन्दन ।
अग्र स्वामि सौ मोह बढ्यो अति ज्यो चकोर चन्दहिं अभिनन्दन ॥

(१०४)

प्रीतम मग जोहति सिय प्यारी ।
कनक महल के खिरकी पर ह्वै सखियन युत निरखति सुकुमारी ॥
रहि न जात प्रीतम बिनु देखे गुणन सुमिरि पिय बिरह निवारी ।
छिन-छिन बिरह के उठत खुमारी विकल प्राण मनु मीन बिचारी ॥
कोइ सखि कहि पिय आवत हैं येह आतुर ह्वै तिहि ओर निहारी ।
तेहि छिन प्रीतम आय अग्रअलि भरि अकबार मिली सिय प्यारी ॥

(१०५)

जेंवत कुँवर रसिक रघुनन्दन रस आगरि नागरि सिय प्यारी ।
छप्पन चार छऊ रस उपरस भोग सौंज सुखकारी ॥
चिंतामणि चौकिन पर कोमल दुग्ध फेन सम सारी ।
तिन ऊपर रुचि जानि युगल की रचना न्यारी न्यारी ॥
पल्लव फल (रसमय) अकुर कन्दावलि मेवा मधुर सुधारी ।
चटनी निकर अचार मुरब्बा अमित भाँति तरकारी ॥
परसति परम किसोर नागरी जानि युगल रिझवारी ॥
सुरभिवन्त सीतल सरयू जल मत्रित मगल झारी ।
रस भीनी बतियन बिरमावति प्यावति निजकर बारी ॥
अचल बिजन कमल कर सारति अति मृदु मजु बयारी ।
दम्पति एक थार निज मदिर जेंबत मोद कद मृदुमारी ॥
अग्रअली के जीवन दोऊ तृण तोरति बलिहारी ॥

(१०६)

रसिक दोउ सयन कुंज को जात ।
भोजन करि सुचि पान सुचर्चित मद मद मुसुकात ॥
आस पास सब सहचरि राजैं सुभग मनोहर गात ।

पहुँचे सयन महल के भीतर सोभा बरनि न जात ।
अति सुगन्ध चहुँदिसि मह महकत भवर झुड मडरात ।
बैठे पलका पर दोउ प्यारे करत व्याग रस बात ।
कोइ सखि मधुरे बीन बजावत गान करत स्वरसात ।
पुनि दोउ मिलि अलसान लगे सखि परदा करि चहुँ कात ।।
पौढ़ि गये जब दोउ पलका पर अग्र चरण मुहरात ।।

(१०७)

देहरी धँसत जब जेहरी देखि मन डगि गयो उठी उरलाई ।
अति आदर सो भरि अंकवारी प्राणनाथ पलका पधराई ।।
आगत स्वागत वारि वारि तन बीरि सुहाथ बनाइ खवाई ।
बार बार आलिंगन चुम्बन मनहु रंक निधि पारस पाई ।।
वचनामृत सो सीचि विविध विधि जनक कुँवरि रघुराइ लड़ाई ।
जालरंध्र सो निरखि अग्र अति कामकेलि सुख बरनि न जाई ।।

(१०८)

दिवस मधि सोइ उठे सिय प्यारे ।
उथापन के समय समुझि सखि चहुँ दिसि ते जुरि सारे ।।
मधुर स्वरन गावत सुरसावत मधुर यंत्र करधारे ।
अलसाने उठि बैठि लटपटे असभुजा दोउ धारे ।।
अंग वसन सजि सेज तरे पग पाँवड़ि मखमल धारे ।
मुखमज्जति पटपौंछि शृंगारति अलक सुछवि घुँघवारे ।।
असन बसन भूषन मनिवारे आरति पलग सुधारे ।
न्यौछावरि तृण तोरि आरती करत सुगान उचारे ।।
करि आरती प्रणाम अग्र दोउ दम्पति जैति उचारे ।
उतरि पलँग ते बाहर बैठे दिव्य सिंहासन प्यारे ।।

(१०९)

दिवस उठि सेज रहे अलसाय ।
आरति करि पुनि उतरि पलँगते दिव्य सिंहासन आय ।।
मनिझारी अँचवाय सखी सब निज अचल अगुछाय ।
रतन कटोरन मेवा मोदक निज कर प्रियन पवाय ।।
मिश्रित कंद अपावद पय सुरभित सखिझारि पिवाय ।
अँचवावति हँसि हेरि कटाक्षन सुछवि निरखि बलि जाय ।।
अतर पान माला उर अरुझनि अग्र सुवर सुरझाय ।।

(११०)

बाग विहार

बाग विहार करत चले प्यारे ।
श्री नृपनन्दन जनकनन्दनी रूप गुणन में दोउ उजियारे ।।
सखियन करि शृंगार अग-अग पुनि पिय प्यारी के शृंगारे ।।
यूथ यूथ सखि चली संग मे ह्वै गज रथ ऊपर असवारे ।
कोउसखि सिरपरछत्र किये हैं सभ्रचँवर कोउ लिये करधारे ।।
अपर सखी लिये बहुत सौंज कर पहुँचे जाय बाग के द्वारे ।
सखियन युत गज रथते उतरे बागेश्वरि सुनि दौरि सिधारे ।।
यूथ अनेक संग सखियन लिये पूजन के सामा करधारे ।।
पट पाँवडे दै भीतर ले गई रतन वेदिका पै बैठारे ।
धूप दीप आदिक विधि करिकै सखियन युत पूजे दोउ प्यारे ।
पुनि दोउ चले बाग विहरन कौं रोसन पर दोउ फिरत सिलारे ।
कहुँ दोउ पुष्प उतारि कमल कर थाक थाक धरि न्यारे न्यारे ।।
रचि रचि भूषण विविध रंग के निज निज चतुराई बिस्तारे ।
प्यारी पहिरावनि प्यारे को प्यारे प्यारी के अंगधारे ।।
मोर हंस शुक सारि पढावत मृगी झुण्ड रस चरित अपारे ।
कुंजन मधि कहुँ छूट फुहारे ग्रीषम पावस सम सुखसारे ।।
कुंजेश्वरि फल ढेर दिखाई पावत प्रेम अपार ।
फल रूपक हँसि अंग बखानत लपटी झपटि कहुँ कुंजनिहारे ।।
कहुँ फूलन के गेंद उछारत कहुँ जलकेलि करें मतवारे ।
विविध विहार बाग बन कुंजन करि पुनि अप्र महल पग धारे ।।

(१११)

हेम महल के सुभग कुंज मे प्रिया प्रेम लम्पट सुकुमारे ।
कबहूँ इकटक मुखछवि निरखत श्रमसीकर लखि करत बयारे ।।
कबहूँ निजकर अलक सवारत अधर चूमि अतिहोत सुखारे ।
कबहूँ निजकर चरण कमल लेइ मुख निरखत तामैं हँसि प्यारे ।।
निज करतल पर राखि प्यारि पद जावक चित्रको करत बिचारे ।
निजकर कमल कठोर समुझि जिय धर धर धरकत हिय भयमारे ।।
अस न होय प्यारी के पद तल दरकि जाय लगि हाथ हमारे ।
चूमि चूमि निज नयन लगावत डरि डरि चित्रमहावर धारे ।।
रूप देखि निज दृष्टि लगन डर बारि बारि जल पियत दुलारे ।

दृष्टिदोष अपने पर लेके बारम्बार होत बलि हारे ।।
कबहूँ पुष्पविभूषन रचि-रचि पिय प्यारी अंग करत शृंगारे ।
प्रिया रूप में अति असक्त ह्वै होत चहत नहि पलकहु न्यारे ।।
समय जानि गुरु नारिन आवन अति कलेस युत दुरत दुआरे ।
प्रिया प्रेम परतंत्र स्वामिलखि अग्र अली तन मन धन वारे ।।

(११२)

जय जय रघुनन्दन चन्द रसिक राज प्यारे ।
अंग-अंग छवि अनंग कोटि वारि डारे ।।
विहरत नित सरयु तीर संग सोहैं सखिन भीर,
सिया अंस भुजा मेलि अवध के दुलारे ।
कोई सखि छत्र लिये व्यजन लिये कोई,
युगल सखी चँवर लिये करत प्राण वारे ।।
सुन्दर सुकुमार गात पुष्पमाल सकुच जात,
परसत भयभीत होत रूप के उज्यारे ।।
नख सिख भूषण अनूप यथा योग यथा रूप,
कोटि चन्द्र कोटि भानु निरखत दुति हारे ।
मन्द मन्द मुसुकुरात प्यारी संग करत बात,
देख देखि अग्र अली तन मन धन वारे ।।

(११३)

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर ।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि चमकत चहुँ ओर ।।
चक्राकार रास मण्डल रचि राग रागिणी के कलसोर ।
विमला चन्द्रकलादि रंगीली वीण मृदंग लिये करघोर ।।
चारुशिला, सुभगा हेमा लिये मुरलि मुचंग किन्नरी जोर ।
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति क्षेमा स्वरहि भरत रसबोर ।।
मदन कला करताल बजावति सारंगी नन्दा टकोर ।
सिरसिर सुभग मुकुट बिराजै चन्द्रिका सीता के सिर मोर ।।
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत पिय उर मोतिन माल उजोर ।
कोटि कोटि रति काम बिमोहन नटवर वेष श्याम अरु गोर ।।
रूप माधुरी कहि न परत हैं अंग अंग छवि के उठत हिलोर ।
कर से कर दोउ मिलि धारे नयनन सैन चलत दुहुँ ओर ।।
कबहुँ अधर रस पियत परसपर रस मतवारे दोउ चितचोर ।।

प्यारी हाव पियामन करपत पिय के भाव प्यारी निज ओर ।
दोउ रससिन्धु मगन रस लम्पट अग्रअली नहि चाहत भोर ॥

(११४)

प्यारी तेरे नयना मदनसर वारी ।
रतनारी कारी कजरारी चन्द्र बदन पर अति छवि धारी ॥
चितवनि बाकी तिरछी प्यारी ममहिय को घायल करि डारी ।
मीन कमल खँजनदुति हारी सब विधि प्राण अधार हमारी ॥
हसनि नटनि अरु अग मरोरनि देखि देखि मे जाउ वलिहारी ।
रूप उजागरि अग्र तियन मैं हो तुम श्री मिथिलेस दुलारी ॥

(११५)

प्यारे मुखचन्द विलोवहु सजनी ।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुडल नयन कमल दल अति छवि छवनी ॥
नासामणि सु अधर पर राजत मनहुँ कमल दल शुक्र उदवनी ।
कल कपोल पर अलकें छूटें चद उपर मनु बसि बहु अहिनी ॥
कटि कछनी काछे बने आछे पग मे नूपुर अति मन हरनी ।
मुरनि दुरनि अरु हसनि नटनि मे कोटिन काम करो निवछवनी ॥
रूप उजागर अग्र स्वामि मेरे मम हिय के हैं प्राण सुजिवनी ॥

(११६)

आकरप्यो जह तह नर नारी ।
सब सखियन मन पिय अग धारी करो मनोरथ रुचि अनुसारी ॥
सबके रुचि लखि के सिय प्रीतम धार्‌यो बहुत रूप मनहारी ।
जस जस जाहि मनोरथ रहेऊ तस तस करि सब कियो सुखारी ॥
अस्थावर जगम जो जह लौ आनन्द मुरछा मे नर नारी ।
अद्‌भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी ॥

(११७)

रसिक दोऊ सरयू कूल चले ।
राम श्रमित ह्वै सग सखिन ले दम्पति दियभुजगले ॥
करन लगे जल केलि विविध विधि दोउ रसरग रले ।
प्रीतम डूबि प्रिया पद गहिके ऐचि लेत जल तले ॥
प्यारी कर कमलन ताडन करि जल पिय आखि मले ।
प्रीतम के गति भूलि गये सब दोउ कर आँखि मले ॥
काहू के कटि वसन छोडि पिय तट पर आय चले ।

वह सखि ने अति लाज श्रमित ह्वै जल से नहि निकले ।
पुनि सिय जू पिय मे पट लैके दइ सखि हाथ तले ।
करि जलकेलि प्रिया प्रीतम दोउ जल से आय थले ।
करि शृंगार अग्र सखियन युत आय गये महले ॥

(११८)

श्री सरयू तट वन असोक मधि रास रच्यो श्री अवधि विहारी ।
चहुँ दिसि मणिमय कोट विराजे मध्य कुंज बहु न्यारी न्यारी ॥
ताके चँहुदिसि पादप राजैं नै सम्पति युत अति रुचिकारी ।
ता आगे बहु लता कुंज हैं जाति-जाति के न्यारी न्यारी ॥
ताके चहुँ दिसि कृत्रिम पादप जाति जाति मणि के छबिकारी ।
ताके चहुँ दिसि मोतिन झालर मध्य मे रचना बहुत प्रकारी ॥
मध्यभूमि बहु रंग मणिन के बेली बूटी विविधि प्रकारी ।
तापर जाजिम स्वेत बिछे हैं चन्द्रकिरनि के अति छविहारी ॥
तामधि सिंहासन अतिसुन्दर स्वेत मणिनमय अति सुठिकारी ।
तापर बैठे युगलबिहारी श्री नृपनन्दन जनक दुलारी ॥
गौरस्याम छवि को कवि बरणै कोटिकाम रतिदुति लखिहारी ।
प्यारी के तन शुभ्र सुसारी प्यारे अंग जामा झलकारी ॥
प्यारे उर मोतिन की माला चन्द्र हार सोहत उर प्यारी ।
कंठ पोत प्यारी गल राजत पिय गल गोल गोप विचित्र सवारी ॥
बाहुन मे अंगद सुठि सोहैं कर मे पहुँची अति दुति कारी ।
कर्णफूल प्यारी श्रुति शोभित पिय श्रुति कुण्डल मकराकारी ॥
प्यारी के सिर मणिन चन्द्रिका पिय सिर क्रीट भानुमदहारी ।
विमलादिक सखि चहुँ दिसि सोहैं मध्य नटन लागे पिय प्यारी ॥
कोइ सखि बीण मुचंग काहू लिये जलज तूमेरा कोइ कोइ धारी ।
बहुत सखी लिये बहुत यंत्र है थेइ थेइ कर नाचत बहु नारी ॥
घम घम नूपुर चरनन बाजै मनुमोहनी मंत्र ध्वनि कारी ।
गावति सब रागन रागिनि मे स्वर सुनि इन्द्र वधू मनहारी ॥
जब प्यारी प्रीतम मिलि गावत तायेइ तायेइ औरन प्यारी ।
स्वर्गसात पाताल व्यापि गयो परमानंद बह्यो पौनारी ॥
महारास सब दिशि मे छायो आकरष्यो जहं तहं नर नारी ।
मंत्र सखियन मन पिय अगधारी करो मनोरथ रुचि अनुसारी ॥
मंत्र के रुचि लखि के प्रिया प्रीतम धार्‌यो बहुत रूप मनहारी ।

जस जस जाहि मनोरथ रहेउ तस तस करि सब किये सुखारी ॥
अस्थावर जगम जो जहलो आनन्द मुरछा मे नरनारी ।
अद्‌भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी ॥

(११९)

रुठो जी राम गुशाइ भले भले ।
पायो राजपाट दसरथ को गहि लीनी ठकुराई ॥
जाय कहूँ मिथिलेस ललीजु से निकस जाय गुमराई ॥
अग्रअली के सिर पर चहिये श्री सिरध्वज की बाई ॥

(१२०)

प्रभु जी हमको आज्ञा दीजै ।
यज्ञ पूर भयो पुण्य तुम्हारो नृप को दर्शन कीजै ॥
सुनहु आज मिथिला पुर तें इक आयो है परचारी ।
सीय स्वयबर अखिलनरेश्वर कौतुक ह्वै है भारी ॥
पगति रथ ऐहैं पुनि बहु तह ह्‌व है बडो समाज ।
अग्र स्वामि दोउ हसत कुँवर बर सग चले ऋषि राज ॥

(१२१)

सखि मैं सपनो सुन्दर पायो ।
इन्दु बदन राजिव दल लोचन गाधि सुवन सग आयो ॥
स्याम करन तन कोटि भानु दुति सोभा सब जग छायो ।
मोद भयो मिथिलापुर बासी मो मन अधिक सिरायो ॥
रघुकुल कुँवर अयोध्या नायक भुजबल धनुष चढायो ।
नृप सब सभा ठगी सी ठाढी गर्बिन गर्भ नसायो ॥
पूरन भयो पिता प्रणमय सखि सब सदेह नसायो ।
अग्र स्वामि अरविंद बधु उदै मिलिहैं पति मन भायो ।

(१२२)

चेरी मैं हूँगी अनुरागि चरण की ।
अकुश कुलिश कमल ध्वज चिह्नित, अरुण वरण अघ तिमिर हरण की ॥
जो पद परमि सरस दुरलभ गति होत भई ऋषिराज घरणि की ।
नूपुर नदन मदन सुनि लज्जित राजन जीवन रसिक जनन की ॥
अग्र अली सोइ सुभग सरोरुह नखत कान्ति मणि माणिक बरन की ॥

(१२३)

सौमित्री कहे सुनहु श्यामघन हूँ जानत वैदेही को पन ।
राजन की यह नीति दाम वहु दासन लिखि नहि आवै ।।
यह डर निडर जानकी रघुपति रामहि हृदे बसावै ।
राजिव नैन अनुज के वैन मुनि ताको यश सब जान्यो ।।
यक पतनीव्रत लियो रीझि कै अग्र भूमि परिपान्यो ।।

(१२५)

।। राग सारग ।।

जब रघुपति कर धनुप उठायो ।
पुलक्त तन रोमाच गाधिमुत पुरति प्रेम भरि आयो ।।
को वड नमित न मुख भूपति कर जानकि मन तरसायो ।
तोर्‌यो चाप सभा मे तिहि छिणि संशय सबै नसायो ।।
भगन शब्द सुनि जामदग्नि मन अहकार सुवहायो ।
तोपे अमर अवनि जनु फनिपति अग्रदास मन भायो ।।

(१२५)

मगल आज जनकपुर माहीं ।
पाणिग्रहण सीता रघुपति को नरनारी सब फिरत उछाही ।।
मण्डित द्वार चौहटा वीथिन दिव्य दुकूलनि धाम उछारैं ।
अति आतुर पग लागत न अवनी कहुँ गज कहुँरथ अश्व शृगारैं ।।
सीस सेहरो रामचन्द्र के अगवानी करि तोरन लाये ।
सम पुहुप मुक्ता ले गोखनि नवल वधू अजलि वरपाये ।।
मण्डप तर बैठाय पटा दोउ वेद विहित सब कर्म कराये ।
साखोच्चार दुहूँ कुलगुरु करि कुँवरि कुँवर को हाथ गहाये ।।
उतरासन की ग्रन्थि परस्पर दृढ वचननि वामैं अग लीन्हो ।
आगे प्यारी पीछे प्रीतम जातवेद कल भाँवरि दीन्ही ।।
भूरि दान दे तोषि सकल सुर दुलहिनि सग भीतर बैठाने ।
परदा ओट समागम पहिलो अग्रदास दासी सुख जाने ।।

(१२६)

हिम ऋतु हर्म गर्म मनि को है ।
कीमखाब मखमल गिलमन्ह पर सिय पिय परिकर सोहै ।।
लै कोउ बीन प्रवीण सहचरी राग तरग उमगो है ।
अग्र स्वामि सुखनिधि सीता पति रमि रमाय मन मोहै ।।

नील पीत वर बसन लसत तन उठत सुगन्ध झकोरे।
सहचरि हरपि झुलावति गावति छवि निरखत तृण तोरे।
मन्द मन्द मुसुकात छवीलो रमकत थोरे थोरे।
अति सुकुमारि अग्र की स्वामिनि डरपि गहति पट छोरे।

(१३५)

झूलत राम राजिव नैन।
जनकजा सनमुख बिराजति तडित ज्यो घन गैन ॥
अतिहि झूलत मनहि फूलत रहसि तोपत मैन।
लाल के उर लागि शोभा निरखि करपत ऐन ॥
परसपर अनुराग दोऊ बढत मधुरे बैन।
जाल रध्रनि निरखि बनिता अग्र उर सुददैन ॥

(१३६)

झूलत सिया राजिव नैन।
रतन जडित हिंडोलना सखि राम सुख के ऐन ॥
स्याम अँग पर गौर झलकत दामिनी घन गैन।
मैथिली रघुबीर शोभा निरखि लाजत मैन ॥
नाम पिय को लेहु नागरि सब सखिन मन चैन।
जानकी नहिं लेत मुख सो देति लोचन सैन ॥
परसपर झूलत झुलावत बदत मधुरे बैन।
अवधपुर नित केलि दम्पति अग्र आनन्द दैन ॥

(१३७)

हिंडोरना मे काई झूलो राम सिया प्यारी सुकुमारी।
अगर चन्दन को बनो हिंडोरा मलयागिरि को पटा।
रेसम डोरि पवन पुरवइया बह सावन को घटा ॥
प्यारी झूले लाल झुलावै भली बनी सजनी।
उडि उडि अचरा परत भुजनि पर डरपत शशिवदनी।
विपिन प्रमोद लता कुजन मे श्री सरयु के तटा।
सिय प्यारो के झूलना वे निरखति अग्र छटा ॥

(१३८)

दसरथ सुत अरु जनकनदनी चितवनि मे चित चोरै री।
नान्हि नान्हि बुंद पवन पुरवैया बरपत थोरे थोरे री।

हरि हरि भूमि घटा झुकि आई सूर्य लेत हिलोरे री।
उपवन बाग विहगम बोलें दादुर मोर चकोरे री।
हयदल पयदल गजदल रथदल कोटि बने चहुँओरे री।
बाजत ताल मृदग झांझ डप सखन की घनघोरे री॥
नागरि नाम लिवावे पिय को सियजू हँसि मुख मोरे री।
अग्रदास हरि रूप निहारे चरण कमल बलिहारे री॥

(१३६)

चले दोउ ब्यारू कुज अली।
करि बिहार झूला के दम्पति रघुवर जनकनन्दनी॥
रतन जडित सिविका अति सुन्दर तापर लाल लली॥
चहुँ दिसि सखियन सौंज लिये हैं नाना रंग रली॥
पहुँचे व्यारी कुज सुभग जहाँ मध्य सुरतन थली॥
करि सन्मान सखी कुजेस्वरी आनन्द भरि उछली॥
बैठाई रतनन चौकी पर पूजन करि सुभली।
नाना विजन कनकथारन मे अग्र धरी रसली॥

(१४०)

सखी सब मैन भोग ले आई।
मेवा मिश्री दूध मलाई और अनेक मिठाई॥
मुरभीयुत बिजन बहुतेरे थारन भरी सुहाई॥
पान पदारथ सुचि सुगन्धमय बहु औषधन मिलाई॥
पावत तुष्ट पुष्ट होइ जावे रास जनित श्रमहाई॥
चषकन में भरि धरि आगे मैं दम्पनि के मन भाई॥
पावन लगे रसिक दोउ प्यारे करि-करि विजन बडाई॥
हँसत हँसावत सखिन पवावति बातन में बिरमाई॥
करि भोजन अचवन पुनि करि के पान पाइ मुसुकाई।
सैन आरती अग्र करी जब पौढे पलग सुहाई॥

(१४१)

ब्यारू करत युगल रस भीने।
रचि रचि बिजन सखिया परोसै बहुत प्रकार नाम को गीने॥
हँसि हँसि पावत हैं पिय प्यारी रूप माधुरी सखि चित दीने।
प्यारे निज कर कमल कवल लें प्यारी मुख मे देत प्रवीने॥

तैसेहि प्यारी नोपिय मुख में ग्रास पवावति अति मधुरीने ।
मिसरी बहुत सुगन्ध मिले जो दूध पवावति सखि कर लीने ॥
करि ब्यारी अँचवाय सखी सब पान पवाय सुगन्ध भरीने ।
दै गलबाँह प्रेम रँग भीने सैनकुज सुख अग्र नवीने ॥

(१४२)

बैठे सुखपाल लाल आवत महल मे ।
आगे आगे भीर भारी पीछे असवारसारी तहाँ मध्य रघुवर मदन गहल में ।
चुनि-चुनि कलियाँ मे सेज बनायो चोवा चन्दन छिरको चहल मे ।
पौढे दसरथ राज कुँवर वर अग्रअली निज दासि टहल मे ॥

(१४३)

पौढिये रसिक जानकी रमन ।
सर्व ऋतु के भोग यामे महल अति मन हरन ॥
बिविध रचना बनी जहँ-जहँ बिधि निपुणता हँसन ।
सेज रचना बनत कहि नहिं मनहुँ मनसिज भवन ।।
पिया प्यारी ताहि ऊपर केलि कर सुख सदन ।
यहइ आसा अग्र सखियन सुफल कुरु ललि ललन ॥

(१४४)

सुख सेज पौढिये राम सीता रवन ।
राग रग सुरुचिर सौरभ सौज बीटिका चित्र चँदवा बिबिध सुन्दर भवन ।
रूप सुठि गुन कोक विद्या कुसल रचना वचन बिदुष सुपिया पारस गवन ।
जनकजा राजीव नैन सुमैन छबि लखि अग्रसहचरि जान अपर सो कवन ॥

(१४५)

महल मे सोवत हैं दोउ प्यारे ।
रतन ज्रडित पलका अति सुन्दर मयन मनहुँ तन धारे ।
ताके ऊपर बिस्तर पय के फेन लजावन हारे ॥
तापर पौढे युगल बिहारी हर रिपु कला सुधारे ।
करत केलि नानाविधि दम्पति सखियन नैन निहारे ॥
हँसि हँसि बाते करत परस्पर वर्षत मोद अपारे ।
अग्र स्वामिनी स्वामी दोऊ जीवन प्राण अधारे ॥

(१४६)

सोये सेज प्रिया प्रीतम दोउ अतिसय करि निद्रा आधीन ।
यक्षकर्मद कँचुकी सिया उर तामे भँवर भयो इकलीन ।।
बास लुब्ध को शब्द श्रवण सुनि सभ्रम राम-विलोकत बाम ।
रही पुष्प अवशेष हृदै मे सायक सपदि मारि गयो काम ।।
प्रेम विकल परतीत न मानत वैदेही हित पावत खेद ।
अग्रस्वामि आधीन प्रिया के मिथ्या दुःख आयो तन स्वेद ।।

(१४७)

चलो सखि सो गये राज किशोर ।
मणिन जडित को पलग मनोहर ताके छवि अति जोर ।
मिलि सखियन सब चरन पलोटत रस बस पिय घनघोर ।।
चौकीबाली सजग होइ रहियो लागे न कहूँ दृग चोर ।
नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी होय न जेहि पग सोर ।।
सुभग सेज सियराम सयन लखि ललचत है मनमोर ।
अग्रअली दम्पति दरसन हित आवहिगी बडि भोर ।।

(१४८)

महल बिच सोर करै जनि कोइ ।
कछुक रहस बस कछु आलस बस अबहि मैथिली सोइ ।।
नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी तनक झनक नहि होइ ।।
पहरेदार सजग होइ रहियो आवागमन न होइ ।
अग्रअली के जीवन धन दोउ जगै न पलका सोइ ।।

(१४६)

चली सब युग छबि हिय मे धरी ।
सोय गये सखि पिय प्यारी अब आनन्द रस मे भरी ।।
लाल लली गुण कहत परस्पर आनन्द सिन्धु परी ।।
निज-निज कुज के ओर गई सखि यूथेश्वरि सबरी ।।
सबसे मिलि सग चारुशिलाथल अग्र गई स्वघरी ।।

(१५०)

आज राम जानकी कृपालु सुन्दर सोहैं ।
निरखत सुर नर वर मुनि सिव विरचि मोहैं ।।
राम जी के शीश क्रीट रत्न जटित धारो ।
सिया जी के सीस फूल कोटि चन्द्र वारी ।।

रामजी के पीताम्बर धनुपबाण राजै ।
सिया जी के कर कमल मुद्रिका बिराजै ।
रामजी के कुण्डल की काम कोटि शोभा ।
सियाजी के कर्णफूल राम को मन लोभा ॥
रामजी के उर सोहैं मोतियन की माला ।
चारु हार रुचिर पहिरि जनक कुवरि बाला ॥
रामजिके कटि किंकिणि झुनुक झुनुक बाजै ।
सियाजी के छुद्र घटि मदन मत्र लाजै ॥
रामजि घनस्याम वर्ण छवि के अभिरामा ।
सिया गौर कनक वर्ण लाजत सत कामा ॥
सियाजी कि नखशिख छवि कहत नही आवै ।
कोटि शेष सारद श्रुति पारहू न पावै ॥
यही ध्यान हिय मे रहत टरत नहिं टारयो ।
अग्र युगल चरण ऊपर बारि फेरि डारयो ॥

(१५१)

देखो माई नवल कुवर दशरथ को ॥
मणिमय जटित क्रीट अति सुन्दर गोरोचन को टीको ।
अम्बुज नयन नासिका सुन्दर कुण्डल झलकत नीको ॥
मणिमय जडित हार अति सुन्दर हीरा माणिक नीको ।
कलित ललित जरकसि को जामा आभूषण पुप्पन को ।
उर सोहै मोतियन की माला भृगु लच्छन छबि नीको ॥
कर ककन बाजूबध सोहै धनुप विराजत नीको ॥
कटि तूणीर वाण बर राजै कमल फिरावत नीको ॥
अग्रदास भजु दसरथ नन्दन मोहत मन सबही को

(१५२)

॥ राग जैति श्री ॥

यह मोहि दीजै राघव राम ।
दासनदास दास को अनुचर कथा श्रवण मुखनाम ॥
मोक्ष आदि है चार पदारथ मेरो नाहिन काम ।
चरण रेणु साधुन की सिर पर कृपा करो सुख धाम ॥
सन्तनसो अनुराग निरन्तर इहि विधि बीतो याम ।
अग्रदास चाहत हरि चरचा सुधासिन्धु विश्राम ॥

(१५३)

॥ राग विलावल ॥

सरयू सरिता राज सबन ते पुरी सिरोमणि रामपुरी ।
वेदन हूँ बहु भेदन गाई महिमा जाकी अघट घरी ॥
सिव विरंचि सनकादिक नारद जपत व्यास जेहि घरी घरी ॥
नाम उचार होत अघ न्यारे जीवन दुरमति दूर टरी ॥
जो कोउ बसत अयोध्या माही समसर ताहि न जात करी ।
सूकर कूकर सबै विष्णु पद आवत जात न अटक घरी ॥
जन्म भूमि राघो को प्यारी भुक्ति-मुक्ति जँह गरी गरी ।
अग्र अहै को जो नहि बाछत बसत जहाँ सर्वदा हरी ॥

(१५४)

बसो मेरे नयनन मे सियाराम ।
कल्पबेलि श्री जनकनन्दनी रघुनन्दन घनस्याम ॥
राजत रतन जडित सिंहासन जुगल जोडि अभिराम ।
अग्रअली निरखत यह् सोभा बारत कोटिन काम ॥

(१५५)

॥ आसावरी ॥

आजु बधावो दशरथ राय के जायो राजिव नैन ।
आये सुख के ऐन ॥
चैतमास नौमी उजियारी यह सयोग अनूप ।
लगन महूँरत बार ग्रह चरन चिह्न बड भूप ॥
बसिष्ठ आदि तपोधन धारी कीन्हो यह निरधार ।
दुष्टनि दलन सुखद सन्तन को भूमि उतारण भार ॥
घर-घर तोरण धुजा पताका मुक्ता बन्दनबार ।
दूध पूत भरि नारि सुहागिनि साथिये लिखती द्वार ॥
चन्दन चौक रचित आँगन मे दधि अरु दूब बधावै ।
कनक थार सीपज, भरि अक्षत मिलि सग मगल गावै ॥
भू देवन कहँ भूमि बाजि गज धेनु रतन रथ देहि ।
पाइ लाग समदात नरेस्वर मुदित आसिषा लेहि ॥
पणव निशान मृदग सख धुनि जै जै शब्द उचार ।
कौतूहल कौसलपुर बासी आनन्द बढ्यो अपार ॥

मागध सुत भाट बंदीजन दान मान बड पावै ।
वर्णाश्रम अन्त्यज जे तन धरि फूले अंग न मावै ॥
नृत्य गान वा जन्त्र वेद धुनि ठौर-ठौर यह भनिये ।
लेहु-लेहु यह कहत नगर मे और श्रवन नहिं सुनिये ।
सुरतरु काम धेनु चिंतामणि कौसल्या सुत जायो ।
अग्रदास रघुपति के आनन्द मैं वांछित फल पायो ॥

(१५६)

॥ राग आसावरी ॥

देखि द्वारा भूप दसरथ के सोभा कहत न आवैरी ॥
मूरतिवत मुक्ति सिधि ठाढी भीतर जात लजावैरी ॥
मनिमन अजिर अनूप देखि छबि झांक लेउँ सुत छावैरी ॥
कोटि काम ससि कोटि भानु दुति अमित तेज तन धारैरी ।
धुँधरबारे केस बदन पर चपल अधिक सुहावैरी ॥
मनहु कलपतरु तेज तनक अलि मधुर सुधामद मातेरी ।
उज्जवल भाल सुचक्षण ऊपर श्याम सुभग तन सोहैरी ॥
बरणो कहा विसाल नैन अति ता उपमा कहूँ नाही री ।
इन्दु बदन पर उडुप रहैं दोउ लोल मीन की नाईरी ॥
बगना कठ बिराजत मानहु ऊपर सुभग निकाईरी ।
दुतिया चद अनद जानि कै धन मे देत दिखाईरी ॥
अरुण पीत सित हारव कु धनुई स्याम सुभग कटि सोहेरी ।
जलद घटा पर मनहुँ प्रगट भये इन्द्र धनुष मन मोहेरी ॥
कौसल्या की कूख कलप तरु रामचन्द्र फल लागेरी ।
पुण्य प्रभावते अगम अगोचर कौन सुहृत यह जागेरी ॥
संकर शेष विरंचि सारदा जिन्हि स्वरूप नहि जानैरी ।
ताके गुण अलि अग्रदास कछु मति अनुमान बखानेरी ॥

(१५७)

॥ आसावरी ॥

प्रगट भये दशरथ के रघुवर, महामहोत्सव मगल घर घर ॥
देखो आजु अवधपुर सोभा, नरनारी आनद उरगोभा ।
सुनत सबै आतुर होइ धावै, हरित दूब दधि नृपति बधावैं ।

मोतियन चौक बधाओ गावैं, नव तरुनी साथिया बनावैं।
ध्वजा पताका मंडित घर-घर, दिव्य दुकूल सुगन्ध सिंचिघर ॥
घर अम्बर बाजैं बहु बाजैं, मनहु महोदधि लहरी गाजे।
विप्र वेद धुनि व्योमनि परसत, सुर सघट कुसुम्हनि अति बर्षत।
भीर भूप घर अतिसै राजै, कोउ लेवै कोउ देवै काजै।
भूमि बाजि गज विप्रन पाये, धेनु रतन अन वसन अघाये।
याचक जन ता क्षण जो आये, दान मान बांछित फल पाये ॥
कहत सबै धन बचन हमारे, चिरजीवो ये पुत्र तुम्हारे।
अग्र बधाई यह नित पावै, जन्म कर्म लीला गुन गावै।

(१५८)

॥ राग टोडी ॥

राम जन्म आनद बधाई।
सुरतरूसुधाधेनुचिन्तामणि मिलत परस्पर दूब बधाई।
प्रफुलित हृदय नगर बासिन के बाल वृद्ध सब बात सुहाई ॥
भई भीर नाचे नर नारी बाजे बहुत गने नहिं जाई।
मगल कलस चौक मोतियन के द्वारन बदनवार बधाई ॥
सिसु को बदन निहारि नारि सब बारति भूषण लेत बलाई।
रतन गर्भ कौशल्या रानी धन्य भाग की करत बड़ाई।
दशरथ राय न्हाय भये ठाढे कनक बसन अन्न धेनु मगाई।
परम पुनीत विप्र पद वंदित दान मान जनु धन वर्षाई ॥
मागध सूत भाट बंदी जन अष्टसिधि नवनिध पाई।
दशरथ सुत नित प्रतिहौं देखो अग्रदास के यहै जिय भाई ॥

(१५६)

॥ ढाढी पद, राग परज ॥

तिहारो ढाढी आयो हो रघुवशी यजमान ॥
जन्म जन्म ढाडी या घर को गान सहित दे दान ॥
रवि अनरण्य इक्ष्वाकु अग रघु धुंधुमार युवनाश।
काकुथ सगर दिलीप भगीरथ गगा अवनि प्रकाश ॥
हरिकीरतिसम वश विशद अति मोमति जाय न जान
इक्षा सुत शारदा शेष सुर वेद पुरान बखान ॥
सुत जायो सुनि पंगतिरथ के मोमन रगरली।
उपजीवी अज भूप द्वार को बारी सुफल फली ॥

लछि मन भरत सत्रुहन सुन्दर नाम सकल गुन सार।
धीर गभीर अभैकरि मति सो अतिही सील उदार ॥
मैं पाई सतति मुख ग्रन्थनि सुनहु नृपति दै कान।
जन्म न देख्यो रामचन्द्र को भूत भविष वर्तमान ॥
वेद उधार कमठ करुणा कर धरणी धर नय नैन।
हरप फरपधर, असुर विमोहन विग वचन सुनि जैन ॥
ऋषि मप सन्त धर्म रखवारी कौसल्या सुत करिहैं।
दुष्ट दमन करि बाँधि बारि निधि विपति देव सब हरिहैं ॥
भू कन रेणु वुन्द वर्षा की उडुगण है निरधार।
गर्वित वचन सुनत ढाढी को रघुपति गुणनि अपार ॥
धर्म सार श्रुतिसार सिरोमनि कान्ति अधिक तन तेज।
चरण चिह्न सरवेस्वर के सब बिधि मनु रच्यो बँधेज ॥
ढाँढी अग्रदास दसरथ गृह याचत बारम्बार।
साधु सगति कीरति तव सुत की रचो रहो दरबार ॥

(१६०)

॥ राग टोडी सूर फागता ॥

आज दसा दसरथ नृप को अति रानी रतन खानि कुपि खूली।
सुनत सुधा वरप्यो त्रिभुवन में सत कमल श्रेणी हृद फूली ॥
लछिमन भरत सत्रुहन सुन्दर प्रगटे राम सजीवन मूली।
सिव विरचि सुर सेष वीपधर गुण गण गान शारदा भूली ॥
अप्ट सिद्ध नव निद्ध मुक्ति चतुर्धा अवध के द्वार द्वार अनुकूली।
अग्रदास रघुनाथ जनमते मगल अवर नही कोइ तूली ॥

(१६१)

॥ राग गौरी ॥

नृप दशरथ के पुत्र भये सुर पुर मे बजत बधाई री।
घर घर मगल चार अवधपुर वन्दन वार बधाई री ॥
चतुर सखी मिलि साथियाँ दीन्हे विधि सो सीख भराई री।
चन्दन चौक रचित आगन म रतन जडित अँगनाई री ॥
कृत कौतुक कौसलपुर वागी याचक अमर भराये री ॥
अवधपुरी आनन्द भयो भर बाँटत बहुत बधाई री।
अग्रदास रघुवर के जनमत मन वाँछित फल पाई री ॥

(१६२)

॥ राग आसावरी ॥

फूले फिरत अयोध्या बासी ।
सुन्दर सुत जायो कौसिल्या रामचन्द्र सुख रासी ।
घर घर बन्दन माल साथिया मोतिन चौक पुराये ।
नाचत गावत देत बधाई मनु घर घर सुत जाये ॥
गली गली गज बाजि जहाँ तह हलका दिये तबेले ।
दीन बहुत याचक जन थोरे कापे जात सकेले ॥
दसरथ भूप भडार मुकर किये दधी अमर भरे ।
सकट सीलि ताही सो हमला ढोये ढेर धरे ॥
सत कमल सुख देत काज रबि राघव उदे कर्‌यो ।
मुदित देव दुन्दुमी बजावत निश्वर तिमिर हर्‌यो ।
देत असीस नगर नारी नर चिरजीवो रघुबीर ।
अग्रदास आनन्द अखिलपुर मिटी ताप तन पीर ॥

(१६३)

लाल इन बोलन के बलि जैहों ॥
छोटे छोटे चरण धरत अति सुन्दर ठुमकि ठुमकि हलरैहो ॥
कटि किंकिनि पग नूपुर बाजे मधुरे शब्द सुनैहों ।
सब बालक रघुवर छवि निरखत प्रेम प्रीति लपटैहो ॥
घुंघर वारे अलक बदन पर मन्द हँसन सुख पैहों ।
जाको ध्यान धरत ब्रह्मादिक सारद गान करैहो ॥
गोदराखि पय पान करावत दसरथ लेत बुलैहो ।
यह छवि देखि मगन सुर मुनि भये रवि ससि कोटि लजैहों ।
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक निगम नेति जस गैहों ।
अग्रदास भजु दसरथ नन्दन दिन प्रति दिन अधिकैहो ॥

(१६४)

अखिल लोक श्री उदय भई है जनक रामपुर जाई ।
निरूपम कन्या निमि कुल के सीता ऐसी नाई ॥
बरनत विदुप पार नहिं पावत बाँही रही लजाई ।
जाके चरन कमल भव नौका नाहिन आन उपाई ॥
निगम सार सापाल सुजस जेहि कहत तपोधन आई ।
ब्रह्म रुद अजहूँ पद आश्रित अग्रदास बलि जाई ॥

(१६५)

ठुमुक ठुमुक चलत चाल जनक नन्दनी ।
मधुर वचन तोतरे त्रयताप मोचनी ॥
सोहत नव नील वसन मन्द हास रुचिर दसन,
झलकत उर माल सकल देव बदनी ।
बाजत पग नूपुर मनो साम वेद करत गान,
क्षुद्र घटि रुचिर नाद उर अनन्दनी ॥
जगत मात सखिन सग विहरत बहु करत रग,
अग्र अली निरखत छवि भवनिकन्दिनी ॥

(१६६)

॥ ख्याल ॥

दशरथ सुत देखि देखि जनक सुता मोही ।
धनुप बान कोइ चढावे मेरो पति सोही ।
सीता जू कहे पिताजी सो धनुप प्रनत जो ।
ऐसो वर राम साज तिलक को सजो ॥
सीता जू के बचन सुनत सबही मुख मोरचो ।
तबही तत्काल राम कठिन धनुप तोरचो ॥
घर घर आनन्द होत अचरज यह कियो बाल ।
तबही सीय पाय लाग डारी है गरे जयमाल ॥
जय जय जयकार होत बाजे बहु बाजा ।
'अग्र' के स्वामी जीति आये अयोध्या के राजा ॥

(१६७)

॥ कीर्तन ॥

प्रात समय जागी अनुरागी सोवत उठी री स्याम जू की सगिया ।
बार सँवारति उठी री दक्षिण कर बाम भुजा व कुटी भरि अँगिया ॥
भाल मे सुहाग भारी कचुकी की छवि न्यारी ।
पहरे कसूँभी सारी सोहो रगबतिया ।
'अग्र स्वामीजी' लडाई वहुत कीन्ही बडाई
फूली फूली फिरे सब रैन रग रगिया ॥

(१६८)

॥ होली गान ॥

होली क खलार भावत तोहि जान न देहो ।
रग भीने बागे बनि आए जाग भाग्य हमारे नयन म भरि राखूँ पगुवा लेहौं ॥

चोवा चदन और अरगजा केसर कलस नदैहौं ।
'अग्र स्वामि सो कहत स्वामिनी मिलि तन ताप नसैहौं ॥

(१६६)

वहोनी थाना कोन विरद की लाज ।
जे तुम महो कसोरी हित की निरणो निकमे आज ॥ टेर ॥
मैं अति दुखित दीन गुरु द्विजवर असरन सरन तुम्हारो ।
तुमम एक भक्ति को नातो थोरो घणो विचारो ॥१॥
साँची कहूँ सुणो दुरबाग्रा मोरी सुरत सुतंत्र नाहीं ।
मोहिं भक्ना ऐसे वस कीनो कीर पीजरा माही ॥२॥
मम्ब के हित की खबर पड़ी जब भागो मन को भोर ।
अग्रदास साँचा हरिजन की सार भज्यौं कछु है ओर ॥३॥

अकबर की रामनिष्ठा

राजपूताने मे रसिकसाधको की बढती हुई प्रतिष्ठा और अवध मे तुलसी साहित्य के व्यापक प्रचार का प्रभाव उदारमना अकबर पर भी पड़ा। उसके द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की स्वर्ण एव रजत मुद्राओ से यह स्पष्ट हो जाता है। अब तक इस भाँति के तीन सिक्को का पता चला है—दो सोने की अर्धमोहरें और एक चाँदी की अठन्नी। इनमे एक सोने की अर्धमोहर, कैबिनेट डे फ्रान्स मे है, *दूसरी ब्रिटिश म्युजियम मे और तीसरी चाँदी की अठन्नी भारत* कलाभवन, काशी मे सग्रहीत है। यह (तीसरी मुद्रा) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को लखनऊ के किसी व्यापारी से प्राप्त हुई थी। दोनो साँचो मे एक ओर राम-*सीता की आकृति अकित है और दूसरी ओर उनका प्रचलन काल दिया हुआ है,* जिससे पता चलता है कि उपर्युक्त दोनो भाँति की मुद्रायें भिन्न काल मे और दो भिन्न साँचो मे ढाली गयी थी—

राय आनन्दकृष्णजी के लेख के आधार पर नीचे इसका विवरण दिया जाता है—

(१) सोने की दो अर्धमुहरें (ब्रिटिश म्यूजियम और कैबिनेट डे फ्रांस) इनमे राम प्राचीन वेश मे उत्तरीय तथा धोती धारण किये हुए और सीता लहँगा, ओढनी और चोली पहने, अवगुठन को सम्हालती हुई दिखाई गई हैं।

इसका प्रचलनकाल ५० इलाही, फरवरदीन उत्कीर्ण है। ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित अर्धमोहर मे चित ओर 'रामसीय' नागरी अभिलेख मिट गया है किंतु 'कैबिनेट डे फ्रांस' की अर्धमुहर मे वह ज्यो का त्यो बना हुआ है।

(२) चाँदी की अठन्नी (भारत कलाभवन, काशी)।

इसमे सीताराम अकबरकालीन वेश मे दिखाये गये हैं। राम सिर पर तीन कगूरे वाला मुकुट, (जैसा अकबर के समय के ब्राह्मण देवताओ के चित्रों मे प्राप्त, होता है) घुटने तक जामा, दुपट्टा, जिसके दोनो छोर इधर-उधर लटक रहे हैं बाये हाथ मे धनुष की कमानी की मध्य, जिसकी प्रत्यचा भीतर की ओर है, पीठ पर तूणीर और दाहिने हाथ मे धनुष पर चढा हुआ बाण धारण किये हैं।

उनकी अनुगामिनी सीता चुस्त चोली, लहँगा, ओढ़नी और हाथो मे चूड़ियाँ पहने हैं। उनका बायाँ हाथ सामने उठा हुआ है और दाहिना पीछे लटकता है। उनके दोनो हाथो मे फूल का गुच्छा है। रामसीता के ऊपर बीच मे नागरी अक्षरो में 'रामसीय' अंकित है इसके पट की ओर ५० इलाही अमरदाद लिखा हुआ है।

इससे यह विदित होता है, कि ये दोनो मुद्रायें, अकबर की मृत्यु के पहले एक वर्ष के भीतर, उनके द्वारा प्रचलित इलाही सम्वत् के ५० वे वर्ष के दो भिन्न महीनो मे प्रचलित की गई थी।

अब यह प्रश्न उठता है कि 'रामसीय' भाँति की ये दो भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्रायें उनके जीवन की किस स्थिति की परिचायक हैं। मोटे तौर से सीताराम का दापत्य जीवन तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—विवाह के पश्चात् और वनगमन के पूर्व अयोध्या मे व्यतीत होने वाला उनका गार्हस्थ्य जीवन चौदहवर्षीय वनवास मे सीताहरण से पूर्व का जीवन और लकाविजय के पश्चात् उनके पुर्नमिलन के समय से लेकर सीता के द्वितीय वनवास के पहले तक उनका अयोध्या का राजैश्वर्यपूर्ण जीवन। इन तीनो के अन्तर्गत ही किसी अवस्था मे उनकी स्थिति का अकन उपर्युक्त दोनो प्रकार की मुद्राओं मे हुआ है। यह स्पष्ट ही है कि इन तीनो मे प्रथम तथा तृतीय स्थिति की क्रीडाभूमि अयोध्या रही है और मध्यवर्ती अवस्था 'वनलीला' की है।

सोने की मुहरो मे दपति की जिस मुद्रा का चित्रण हुआ है वह उनके गार्हस्थ्य जीवन के अधिक मेल मे है। पति के पीछे चलती हुई सीता का दाहिना हाथ कमर पर रखना और बायें हाथ से घूँघट समालना, उनके दापत्य जीवन के आरभिक काल की मुद्रा प्रतीत होती है। लज्जा का जो भाव इससे व्यक्त होना है, उसकी व्याप्ति इसी अवस्था मे अधिक सगत जान पडती है। यह भी असभव नही कि यह उनके चित्रकूट के वन विहार की किसी स्थिति का द्योतक हो। अत इसे प्रथम तथा द्वितीय अवस्था के अन्तर्गत मानना उचित होगा।

भारत कलाभवन काशी की अठन्नी मे अकित सीताराम की मुद्रा के विषय में मेरा यह विचार है कि इसमे उनके चित्रकूट अथवा पचवटीवास के समय किये आखेट एव वन-विहार का दृश्य अकित है। यह स्मरणीय है कि पचवटीवास के समय यह उस स्थिति का द्योतक नही माना जा सकता, जब सीता ने राम को सुवर्णमृग दिखाया था और उनकी प्रेरणा से वे उसके आखेट मे प्रवृत्त हुए थे। यदि उस स्थिति मे इसका सम्बन्ध होता तो सीता मृग को इगित करती हुई दिखाई जातीं, किन्तु प्रस्तुत चित्र मे ऐसा कुछ लक्षित नहीं होता। सीता का, नि सकोच भाव से दोनों हाथों मे फूल के गुच्छे लिये हुए पति का अनुगमन करना

वन-विहार का द्योतक हो सकता है। मेरा अनुमान है कि इस लीला का क्षेत्र माने जाने की सभावना पंचवटी से चित्रकूट की अधिक है। कारण यह है कि राम-भक्ति साहित्य मे 'अहेरी' राम की मुख्य क्रीडा-भूमि तथा सीताराम की विहार स्थली के रूप मे इसी स्थल की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। रसिकसाहित्य में चित्रकूट-वासी राम तापस नही, राजैश्वर्यपूर्ण और नित्यरासलीलारत चित्रित किये गये हैं। तुलसी ने भी रामचरितमानस, गीतावली और विनयपत्रिका मे चित्रकूट का स्मरण दम्पति की विहार भूमि के रूप मे किया है।

उनके परवर्ती रामरसिको ने भी उसे इसी रूप मे देखा है।

इस प्रकार दोनो भाँति का मुद्राओ मे सीताराम की शृंगारी भावना प्रकट होती है। उदार अकबर को इन माधुर्यव्यजक द्रव्यो के सिक्कों पर उत्कीर्ण करने की प्रेरणा रामभक्ति मे बढती हुई रसिकभावना से प्राप्त हुई हो तो कोई *आश्चर्य नही।*

राय आनन्दकृष्ण जी ने इन सिक्को के प्रचलित करने का कारण, जीवन के अतिम दिनो मे उद्‌बुद्ध, अकबर की रामभक्ति बताया है। इनका प्रचलन उसने जिस किसी भाव से भी प्रेरित होकर कराया हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि उसकी 'रामसीय' मे निष्ठा थी और उनके 'स्वरूप प्रचार' मे वह प्रजा और राजा दोनो का हित देखता था। शताब्दियो पहले से भारतीय शासको द्वारा शिलालेखों और मूर्तियो मे प्रतिष्ठित विष्णु और कृष्ण को छोडकर यवनशासक अकबर का 'रामसीय' के नाम पर सिक्का चलाना इस देश के इतिहास मे एक अभूतपूर्व घटना थी। जहाँ तक इन पक्तियो के लेखक को ज्ञात है, किसी हिन्दू सम्राट ने भी शासन कार्यों मे सीताराम को इतना महत्त्व नहीं दिया था। इससे तत्कालीन समाज पर रामभक्ति के बढते हुए प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

तुलसीदास का गुरुधाम

गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी एवं साहित्य के अध्येताओं के लिये इधर कुछ वर्षों से तुलसी के गुरुद्वारा 'सूकरखेत' की स्थिति एक पहेली बन गई है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल उसे अयोध्या के निकट गोंडा जिले मे स्थित मानते हैं तो विद्वानो का एक विशिष्ट दल उसे एटा जिले के सोरो से अभिन्न बताता है। इस दूसरे मत के समर्थकों ने गुरु-आश्रम के साथ सोरो को तुलसी की जन्मभूमि और उसी के आस-पास उनकी ससुराल भी सिद्ध करने के लिये प्रचुर प्रमाण एकत्रित किये हैं। किन्तु जितने सुव्यवस्थित ढग से और जैसी योजनाबद्ध पद्धति से यह सोरो-सामग्री प्रकाश मे लाई जा रही है उसी अनुपात से पारखियो की दृष्टि मे उसकी साधुता उत्तरोत्तर संदिग्ध होती जा रही है।

शुक्लजी ने किन प्रमाणों के आधार पर तुलसी के 'सूकरखेत' को गोंडा जिले में स्थित माना था 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे इसकी विस्तृत विवेचना नही की गई है। फिर भी इस सम्बन्ध मे वहाँ जो कुछ मिलता है उससे विदित होता है कि ऐसी धारणा बनाने मे अपनी जन्मभूमि बस्ती के निकटवर्ती इस स्थान से उनका व्यक्तिगत परिचय ही विशेष प्रेरक रहा है। यह दूसरी बात है कि उसकी पुष्टि के लिये उन्होंने तुलसी की भाषा-शैली तथा अन्य साहित्यिक विशेषताओ की भी छानबीन की है जो अवध के उस भू-भाग मे विरचित काव्यग्रंथो में सामान्यतया पाई जाती हैं।

तुलसी के जीवनी-साहित्य का अनुशीलन करते हुए इन पंक्तियो के लेखक को अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध हुए हैं जिनसे इस विवादग्रस्त प्रश्न के समाधान मे सहायता मिल सकती है। अध्ययन की सुविधा के लिये काल-क्रम से इनका विवेचन नीचे किया जाता है।[1]

इनमें प्रथम हैं 'दासानुदास' द्वारा विरचित 'तुलसी चरित' अथवा 'गोसाईं

---

१. दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'तुलसी विचार परिषद्' में ३१ मई १९६० को पढ़े गये निबन्ध का परिवर्द्धित रूप।

चरित' की 'सूकरखेत' विषयक सामग्री। भाषा-काव्य-सग्रह के रचयिता प० महेशदत्त शुक्ल ने उक्त 'दासान्यदास' की अभिन्नता परम्परा से प्रसिद्ध तुलसी क जीवनी-लेखक बाबा वेणीमाधवदास से स्थापित की है।[1] सयोगवश 'भाषा काव्य सग्रह' तथा 'शिवसिंह सरोज' मे गोसाईं चरित से जो पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं वे 'गोसाईं चरित की इस नवोपलब्ध प्रति मे ज्यो की त्यो मिल जाती

---

१ यह शब्द 'दासानुदास' का अपभ्रश है जिसका अर्थ होता है 'दासों का दास'। भक्त लोग विनम्रता प्रकट करने के लिए परम्परा से अपने को इस श्रेणी मे रखते आए हैं। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्ति साहित्य मे आचार्य अग्रदास के निम्नांकित पद मे इसका प्रयोग उक्त अर्थ मे ही हुआ है—

यह मोहिं दीजै राघव राम।
दासनिदास दास के अनुचर कथा श्रवन मुख नाम।
घरनरेन्द्र साधुन के सिर पर कृपा करो सुखधाम।।
सतन को अनुराग निरतर येहि विधि बीते जाम।
'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधा-सिन्धु विश्राम।।
—अग्रदास की अप्रकाशित 'पदावली' से।

'भाषा काव्य सग्रह' मे महेशदत्त शुक्ल ने वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए 'दास या दासानिदास' का उल्लेख उपनाम के रूप मे किया है। इससे यह विदित होता है कि उन्होंने गोसाईं चरित की जो प्रति देखी थी उसमे उक्त तीनों नाम दिए हुए थे। शिवसिंह जी को इस ग्रन्थ का जो हस्तलेख मिला था उसमे रचयिता के रूप मे वेणीमाधवदास का नाम अकित था। उसके छदों मे 'दास' छाप देखकर सेंगर जी ने स्वय उनका परिचय 'सरोज' मे 'दास कवि' के नाम से दिया। किन्तु प्रस्तुत हस्तलेख के लिपिकार मोहन शुक्ल को उक्त ग्रन्थ की जो प्रति मिली थी उससे वेणीमाधवदास का नाम निकल गया था केवल उनका उपनाम 'दासानिदास रह गया था। इसका कारण सम्भवत भवानीदास द्वारा मूल प्रति मे किया गया परिवर्द्धन एव परिष्कार था। किन्तु इन तीनों प्रतियो मे गोसाईं चरित के 'मृतक प्रसग' से जो पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं उनका पाठ साम्य यह सिद्ध करता है कि रचयिता से नाम में साधारण भ्रांति होते हुए भी उन सब का मूल स्रोत वेणीमाधवदास द्वारा विरचित परम्परया प्रसिद्ध गोसाईं चरित ही था।

हैं। यह तथ्य प्राचीन 'गोसाईं चरित' से इसकी निस्सन्देह एकता सिद्ध करता है। उक्त प्रति मुझे सीतापुर जिले मे दिकौलिया के तालुकेदार, ठा० महेश्वरबख्श सिंह से प्राप्त हुई है। प्रतिलिपिकार हैं गोषनी गाँव के निवासी मोहन शुक्ल। वैशाख शुक्ल ७, स० १६२६ को एक प्राचीन पोथी से किसी राजा के आदेश से उन्होंने इसकी प्रतिलिपि की थी।[1]

इस ग्रथ मे तुलसी की अयोध्या से नीमपार (नैमिषारण्य) यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा गया है—

अवधवास बहुकाल करि लाहु जन्म को लीन।
सहसमाज निज गवन तब नीमपार को कीन ॥
प्रथम बास रोन्हाई लपि अनादि थल कीन्हो।
श्री रविकुल अंबरीक नृपति सुकृती जिय चीन्हो ॥
दुतिय बास अघ नास किय पावन सूकरखेत।
त्रै योजन जो अवध ते 'दास' दरस सुप हेत ॥
जहँ थी गुरु नरसिंघ सन सुनो कथा लहि ज्ञान।
सो अनादि तीरथ विदित श्री गुरुदेव अस्थान ॥

यहाँ 'सूकरखेत' को गोस्वामी जी के गुरु 'नरसिंह' अथवा 'नरहरि' का निवासस्थान घोषित करने के साथ ही गुरु-मुख से उनके रामकथा सुनने का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जिसके सम्बन्ध मे स्वय तुलसी की उक्ति है—

सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

इस स्थान को 'सूकरखेत' की सज्ञा किस प्रकार प्राप्त हुई, ग्रथकार ने इसका विवरण देते हुए लिखा है—

श्री नारायण जगतपति, जगहित जगत उधार।
धार्‌यो वपु वाराह जब, आदि पुरुष अवतार ॥

---

१. पढ़नहार सज्जन सुमति, कथा राममनि गोइ।
प्रति पावा सो मैं लिखा, दोस न दीजो सोइ ॥
अग्या मानि नरेस को, सकल चरित लिखि सोइ।
तुलसी चरित कथा सुभ, जो सुनिहै मन फोइ ॥
शुक्रवार तिथि सत्तमी, सुक्ल पक्ष बैसाप।
संवत बनइस से यकइस को, षाता संवत भाप ॥
—गोसाईं चरित, पत्र ३२४।

सब्द घुरघुरा ते भयो, घाघर सरित प्रवाह।
देव जच्छ गधर्व सब, अस्ति प्रबोधत ताहि।।
भई बिमानन भीर तब, सत जोजन के फेर।
तब अज्ञा भइ सबन कहँ, करौ पुन्यथल हेर।।
चली बिमानन भीर तब, श्री बाराह समेत।
सरजू संगम घुर्घरा, तहँ बनो सूकरखेत।।
प्रययोजन है अवध ते, पसका सो परमान।
बास कछुक दिन करि तहाँ, चरचा वेद पुरान।।[1]

अयोध्या से नीमषार की इस यात्रा मे सूकरखेत के पश्चात् सियावार, लखनपुर (लखनऊ), चनहट, मलीहाबाद, कोटरा, बाल्मीकि आश्रम (बिठूर), सन्दीला आदि स्थानो मे तुलसी के ठहरने का वृत्तान्त दिया गया है। ये सभी स्थान किसी न किसी रामभक्त अथवा रामकथा से सम्बद्ध पात्र के निवास-स्थल बताए गये हैं और वहाँ तुलसी के आगमन के अवसर पर कुछ विशेष चमत्कारी घटनाओ के घटित होने की चर्चा की गई है। 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' मे इसे तुलसी की पाँचवी यात्रा (अयोध्या से नीमषार जाने और लौटने की) कहा गया है, और मार्ग मे पडने वाले चौदह तीर्थों का उल्लेख किया गया है।[2] उनके साथ जिस 'सूकरखेत' का नाम आया है वह गोडा जिले का ही 'सूकरखेत' है, इसकी पुष्टि 'गोसाइँ चरित एव 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' के पूर्वोक्त विवरणो से होती है। तुलसीदास से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिपादित करने वाली अनेक कथाएँ अवध प्रदेश मे आज तक प्रचलित हैं।[3]

---

१ वही, पत्र २१५–१६।

२ अयोध्या से रवनाही, सूकरखेत (पसका), सियावार, लखनऊ, मडियाहूँ, मलीहाबाद, बिठूर कोटरा, सडीला, नीमषार, मिसरिख, रामपुर मथुरा, खैराबाद, सूकरखेत और अयोध्या।

—गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, पृ० २८ (रामचरितमानस, हरिप्रसाद भगीरथजी, कालबादेवी रोड, बम्बई की भूमिका रूप में प्रकाशित)

३ इस यात्रा मे नीमसार से लौटते समय गोस्वामी जी मिसरिख, रामपुर मथुरा, खैराबाद और सूकरखेत होते हुए अयोध्या आये थे। स्थानाभाव के कारण केवल रामपुर मथुरा (सीतापुर) मे उनके ठहरने, वहाँ के राजा हृदयराम को मानस की एक हस्तलिखित प्रति देने तथा उस स्थान पर हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित करने का स्थानीय साहित्य मे सुरक्षित वृत्तान्त सक्षेप में नीचे दिया जाता है—

वेणीमाधवदास की ही भाँति गोस्वामी जी के एक अन्य समसामयिक एवं साथी काशी निवासी कृष्णदत्त मिश्र द्वारा विरचित 'गौतम चन्द्रिका' में भी तुलसी

तीरथ नैमिष विदित जहाना। ताके प्राची दिशा सुजाना॥
योजन अष्ट दूरि कवि गावैं। अवधपुरी से पश्चिम पावैं॥
दश योजन प्रमाण महि जाई। सरित चन्द्रभागा तटभाई॥
अरु सरयू के दक्षिण आसा। बसत रामपुर ग्राम सुवासा॥
दोहा—तहाँ महेश्वरबख्श नृप, करत राज्य नय रूप।
विक्रम विक्रम तुल्य बुधि, सुरपति गुरु अनुरूप॥
—महेश्वर गोगज चिकित्सा, पृ० ९८,

ग्राम रामपुर ते कछु दूरी। दिशि कौबेर्य सरित जल पूरी॥
रामघाट गंडकि सरि माहीं। रमई गोड़िया हो तेहि ठाहीं॥
गोस्वामी थी तुलसीदासा। आए तेहि थल सहित हुलासा॥
घाट नाम पूछो हरषाई। रामघाट तेहि दीन्ह बताई॥
नाम रमैया मोर कृपाला। महि कृत करत वंश प्रतिपाला॥
घाट पार को पुर कषु नामा। बसत रामपुर ग्राम ललामा॥
को नृप हृदय राम नरनाहा। सुनि पायो तिन बड़ उतसाहा॥
आवत भे सानन्द तहं, सुनि नृप आयो धाइ।
युत आदर सत्कार तिन, बास करायो आइ॥
सेवन कीन्ह यथाविधि रूपा। भे प्रसन्न तब साधु अनूपा॥
आशिष दीन्ह अचल यह राजू। काहू काल न होइ अकाजू॥
रामायण निजकृत तहँ थापी। पूज्यो यहि अरि सकै न चापी॥
प्रतिमा आंजनेय संगवाई। भूप निकेत आपु पधराई॥
अजहूँ राजत भूपति धामा। पूजत प्राप्त होत मन कामा॥
—महेश्वर गो-गज-चिकित्सा पृ० १०–११ (डायमंड जुबिली यंत्रालय, कानपुर) सं० १९५७ वि०, ।

ग्राम रामपुर नाम, हृदयराम भूपालमणि।
रामघाट सुखधाम, रमई गोड़िया नाम सुनि॥
तुलसीदास कृपाल, रामभक्त तन मन वचन।
आए ग्राम सुकाल, वास कियो कछु काल तहँ॥
रामायण निजकर लिखित, दै पुनि दीन्ह असीस।
अचल होइ नृपता सदा, सुनु तव रामपुरीस॥

के जीवन से सम्बद्ध अनेक आँखो देखी घटनाओ का वृत्त वर्णित है ।[1] इस ग्रन्थ की रचना तुलसी के साकेतवास के ठीक एक वर्ष पश्चात् श्रावणकृष्ण ३, स० १६८१ को हुई थी ।[2] इसमे तुलसी की आदि शिक्षा भूमि—'सूकरखेत' और गुरु 'नरहरिदास' का जो परिचय दिया गया है, वह संक्षेप मे इस प्रकार है—

सरऊ अपर घाघरी दोऊ । संगम तीर्थराज सम सोऊ ॥
धवलि जेठ एकादसि माही । तहाँ विपुल नर-नारि नहाही ॥
बहुरि बराहपेत मोथा सचि । पूजहिं बटु बराह बेदी रचि ॥
तहवा सकल लोक विख्याता । सुपदा भक्तिसूत्र निर्माता ॥
साडिल रिषि आश्रम थल पासा । जहँ तहँ सरुवारिन्ह कर बासा ॥
राम प्रदत्त भूमि अधिकारी । खल दल दलन धर्म धनुधारी ॥
साडिल गोत्रज नरहरि स्वामी । ज्ञान निधान भक्तिपथगामी ॥
अघ गज गंजन नरहरी, सूकरखेत बिहाइ ।
आरन्यक सुषमा भरी, कासी पहुँचे जाई ॥ २ ॥

तात्पर्य यह कि तुलसी ने जहाँ सर्वप्रथम अपने गुरु नरहरिदास के सान्निध्य मे विद्याध्ययन किया था वह स्थान सरयू घाघरा संगम पर है और 'बाराह क्षेत्र' अथवा 'सूकरखेत' नाम से अभिहित किया जाता है । पसका गाँव (सूकरखेत) में 'शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम' नाम से एक स्थान अब तक निर्दिष्ट किया जाता है । पसका के अतिरिक्त नन्दौर तथा उसके निकटवर्ती गावो मे भी शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण बहुत बडी सख्या मे बसे हुए हैं । कहने की आवश्यकता नही कि गोंडा जिले का दक्षिणी भाग, जिसमे सूकर खेत स्थित है, शताब्दियो से सरयू-पारीण ब्राह्मणो का मुख्य केन्द्र माना जाता रहा है ।[3]

—महेश्वर रसमोर ग्रन्थ (रायकवि दौलतराम) लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, अक्तूबर १८६८ ई० ।

१. गौतमचन्द्रिका मे तुलसी का वृत्तान्त (श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६० अंक १, स० २०१२, पृ० १२ ।

२. संवत सोरह सं एकासी । तुलसी बरखी असी प्रकासी ॥
सावन कृष्ण तीज तिथि पाई । यह गौतम चन्द्रिका बनाई ॥
वही, पृ० ३ ।

३. 'देयर आर मोर ब्राह्मन्स इन गोंडा दैन इन एनी अदर पार्ट्स आव अवध एण्ड इन्डीड इन दि होल आव यूनाइटेड प्राविसेज विद दि एक्सेप्शन आव गोरखपुर । दि वास्ट मेजारिटी आव देम बिलांग टु दि सरवरिया सब डिवीजन ।'

—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० ६७ ।

इन दोनो समसामयिक वृतो का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव तुलसी के परवर्ती लेखको द्वारा निर्मित एतद्विषयक साहित्य पर पडा। महेशदत्त शुक्ल ने स० १६३० मे 'भाषा-काव्य सग्रह' मे वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखा—

'ये कवि जिले गोडा में घग्घर के निकट पसका के रहने वाले थे और तुलसीदास जी के शिष्य थे। ये वडे रामोपासक और गुरुभक्त थे। गोसाईं जी के सग ये भी फिरते थे। जो जो सिद्धताये तुलसीदास जी की इन्होंने देखी हैं वे सब अपने ग्रन्थ 'गोसाईं चरित' मे लिखी हैं। ये स० १६६६ मे हरिपुरवासी हुए।[1]

वेणीमाधवदास तथा 'गोसाईं चरित' का जो परिचय इन पक्तियो मे दिया गया है वह गोसाईं चरित की पूर्वोक्त प्रति मे उपलब्ध वृत्त से समर्थित है। इस ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय से सम्बन्ध मे यह लिखकर कि इसमे वेणीमाधवदास ने अपने गुरु की केवल आँखो देखी सिद्धताएँ वर्णित की हैं न कि उनका सम्पूर्ण जीवन वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी गई है। खटकने वाली बात केवल इतनी है कि इसमे एक स्थान पर भवानीदास का नाम लेखक के रूप मे आया है।[2] उन्होंने इस सम्पूर्ण कथा को अपने गुरु, महात्मा रामप्रसाद से सुनी हुई बताया है।[3] महात्मा रामप्रसाद अयोध्या के 'बडा स्थान' के सस्थापक थे। इनका समय १७६० से स० १८६१ तक माना जाता है। मेरी धारणा है कि भवानीदास ने गुरुमुख तथा तत्कालीन अन्य सन्तो से प्राप्त अनुश्रुतियो का सन्निवेश कर पूर्व प्रचलित 'गोसाईं चरित' मे कुछ परिवर्तन एव परिवर्द्धन मात्र किया है।[4] वस्तुत रचना यह वेणीमाधवदास की ही है।

---

१. भाषा-काव्य-सग्रह, पृ० १३५।

२. सब गुन रहित औगुन सहित तव चरन दिढ़ विस्वास है।
घरि आस संज्ञा नाम की जाँचे भवानीदास है॥
—गोसाईं चरित पत्र ५

३ ताते कछुक प्रसंग सुभ, सुनेउ जो सन्त प्रसाद।
सन्त सिरोमन हू दई, अग्या राम प्रसाद॥ :—वही, पत्र २६।

४ डा० माताप्रसाद गुप्त ने रामचरणदास की टीका सहित १९२४ ई० नवल-किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित रामचरित मानस की भूमिका मे उद्धृत जिस गोसाईं चरित्र का विवरण दिया है वह प्रस्तुत गोसाईं चरित का ही प्रतिरूप है।

इसके चार वर्ष पश्चात् विरचित 'सरोज' मे सेंगर जी वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखते हैं—

"दास—२—वेणीमाधवदास, पसका, जिले गोंडा, सं० १६५५ मे उ० यह महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के शिष्य उन्ही के साथ रहे हैं और गोसाईं जी के जीवन चरित की एक पुस्तक गोसाईं चरित बनाई है। सं० १६६६ मे देहान्त हुआ।"[1]

अन्यत्र उसी ग्रंथ मे गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है।

'इनके जीवन चरित्र की एक पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका ग्रामवासी ने जो इनके साथ-साथ रहे बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक मे ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक सक्षेप में वर्णन करें।[2]

सेंगर जी के उपर्युक्त कथन से यह विदित होता है कि उन्होंने 'गोसाईं चरित' को स्वय देखा था, नहीं तो वे इस पुस्तक मे ऐसी विस्तृत कथा को 'हम कहाँ तक सक्षेप मे वर्णन करें' न लिखते। उन्होंने वेणीमाधवदास की रचना शैली के नमूने के रूप मे जो पक्तियाँ उद्धृत की हैं 'गोसाईं चरित' की प्रस्तुत प्रति मे वे अविकल रूप मे पाई जाती हैं। इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महेशदत्त शुक्ल तथा शिवसिंह सेंगर द्वारा निर्दिष्ट 'गोसाईं चरित' दासान्यदास अथवा दासानुदास विरचित प्रस्तुत ग्रंथ से अभिन्न था और उनके रचयिता एक ही वेणीमाधव दास थे जो पसका अथवा सूकरखेत के निवासी और तुलसी के अन्तेवासी थे।

शिवसिंह के परवर्ती 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' के रच-

---

यह ग्रन्थ 'श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदासजू को चरित्र' नाम से खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के साथ १८८१ ई० मे निकल चुका है। डॉ० गुप्त ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि "गोसाईं चरित्र को जिस रूप मे सेंगर जी ने देखा रहा उस रूप मे यह बेनीमाधवदास की ही रचना रही हो और उसे भवानीदास की बनाने के लिए कुछ अवश्य फेरफार बाद में कर लिया गया हो।"

—तुलसीदास, (सं० १९५३ ई०), पृ० ४३।

१ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४३२।

२ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४२८।

पिता भर जार्ज ग्रियर्सन ने भी इसी सामग्री का आधार लेकर वेणीमाधवदास को पसका (सूकरखेत जिला गोंडा) का निवासी बताया है।

"वेणीमाधवदास—पसका, जिला गोंडा के १६०० ई० में उपस्थित यह गोसाईं तुलसीदास के शिष्य थे और लगातार उनके साथ रहते थे। इन्होंने उनका जीवन चरित 'गोसाईं चरित्र' नाम से लिखा था। यह १६४२ ई० में मरे।[1]"

इतना लिखते हुए भी न जाने किस आधार पर उन्होंने सोरों को सूकरखेत का पर्याय मान लिया। यह उल्लेखनीय है कि इस स्रोत से प्राप्त सामग्री में परम्परा से गोंडा के ही सूकरखेत से तुलसी का सम्बन्ध बताया जाता रहा है। पीछे अंग्रेज शासकों ने भी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर के लिए सामग्री एकत्र करते समय इन्हीं स्रोतों को विश्वसनीय माना।[2]

यह तो हुआ हिन्दी साहित्य के प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में पसका अथवा सूकरखेत की वास्तविक स्थिति और तुलसी से उसके सम्बन्ध का दिग्दर्शन। इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि उसकी तीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का रहस्य क्या है?

हम यह कह चुके हैं कि बाराह क्षेत्र अथवा सूकरखेत गोंडा जिले की दक्षिणी सीमा पर सरयू घाघरा संगम पर स्थित है। इसलिये कुछ लोग इसे 'संगम' के नाम से भी पुकारते हैं। स्कन्दपुराण में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।[3]

---

१. माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान (हिन्दी अनुवाद—डा० किशोरी लाल गुप्त), पृ० १३५।

२. "वन आर टू गोंडा वर्थीज हैव अटेन्ड सम मेजर आव लिटरैरी फेम। वेनीमाधोदास ऑव पसका वाज ए डिसाइपिल एण्ड कम्पैनियन आव तुलसीदास हूज लाइफ ही रोट इन दि फार्म आव ए पोयम, एन्टाइटिल्ड 'दि गोस्वामी चरित'।"

—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० ७५

३. दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।
तीर्थानि सरयू नद्या घर्घरोदक संगमे॥
निवसन्ति सदा विप्र स्कंदादवगतं मया।
तस्मिन्संगमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः।
संतर्प्य पितृ देवांश्च दत्वा दानं स्वशक्तितः॥
पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृशः।
ब्राह्मण. क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसंकरः॥

पौष मास मे इस तीर्थ मे स्नान विशेष फलप्रद कहा गया है। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र का वार्षिक पर्वस्नान अब भी पौष पूर्णिमा को ही होता है।[1]

इसके अतिरिक्त 'रुद्रयामल तन्त्र' के अयोध्या खड मे भी इस सगम तीर्थ का महात्म्य विस्तार से बताया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसा पुण्यक्षेत्र है जिसको वैष्णव मात्र मे बडी प्रतिष्ठा है और जहाँ प्रतिवर्ष पौष मास मे एक महान् पर्वस्नान होता है। इसी सगम पर सत्ययुग मे भगवान ने वाराह अवतार धारण किया था और हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया था, जिससे इसे वाराह क्षेत्र की सज्ञा मिली।[3] 'गोसाईं चरित' मे दिया गया सूकरखेत का वृत्तान्त 'रुद्रयामल तन्त्र मे उपलब्ध विवरण से पूर्णरूपेण समर्थित है।

स याति ब्रह्मण स्नान पुनरावृत्ति वर्जितम्।
एकत सर्वतीर्थानि नाना विधि फलानि वै।
सरयू घर्घरोत्पन्न सगमस्त्वधिको भवेत्॥
—स्कदपुराण (वेंकटेश्वर प्रेस, १९६७ वि०) वैष्णव खड—२, अयोध्या महात्म्य, अध्याय ६, श्लोक ७९, ८१, ८२, ९०, ११०।

१. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० २४६।

२. सगमे वतते देवि सर्वपाप प्रणाशन।
तत्र स्नात्वा तु यत्पुण्य शृणु तत्कथयामि ते॥
दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।
सरयू घर्घरे सगे तीर्थानि सति पार्वति॥
हुत्वा वैष्णव मत्रेण विष्णुलोक व्रजेन्नरः।
पौषे मासि विशेषेण स्नान बहु फलप्रदम्॥
प्राप्नोति सकल राज्य दीपदानेन सुव्रते।
यस्तु शुक्ल चतुर्दश्या पौषे च सयतो व्रती॥
वैष्णवो विष्णु पूजा च कुर्वन्नरहरे कथाम्।
गीत-वादित्र नृत्यैश्च विष्णु सतोष कारकै॥
सगमे विधिवद्दत्वा स याति परमा गतिम्।
वर्षे वर्षे तु कर्तव्य यात्रा धर्मार्थ तत्परै॥
—*रुद्रयामल, तन्त्र, अयोध्या खड, अध्याय २६,* श्लोक ३६, ३७, ४३, ४४, ४५।

३ पुराकृतयुगे देवि! पृथिव्युद्धरण कृतम्।
तत्र निष्पादिततीर्थं वराहेण महात्मना॥

पुराणो मे अवतारो के साथ उनकी शक्तियो के भी आविर्भाव की चर्चा यत्र-तत्र मिलती है। 'देवी भागवत' मे वाराह भगवान की आदिशक्ति वाराही देवी का उल्लेख है।'[1] गोडा जिले मे 'मूकरखेत' के समीप वाराही देवी का स्थान 'उत्तरी भवानी' के नाम से अब भी एक सिद्धपीठ माना जाता है और वह वाराह भगवान की आदिशक्ति रूप में पूजी जाती हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल सप्तमी को एक बहुत बडा मेला लगता है।

इस सम्बन्ध मे एक अन्य प्रामाणिक साक्ष्य अनादि काल से रामभक्तो मे प्रचलित परिक्रमा के अन्तर्गत गोडा के मूकरखेत की विशिष्ट तीर्थ के रूप में ख्याति भी है। महात्मा बनादास (स० १८७८-१६४६ वि०) ने रामभक्तो की तीन परिक्रमाओ का उल्लेख किया है—पचकोसी, चौदहकोसी और चौरासी-कोसी।[2] इनमे से प्रथम दो अयोध्या के सीमित तथा विस्तृत क्षेत्र की प्रदक्षिणायें हैं किन्तु तीसरी अर्थात् चौरासी कोस की परिक्रमा मे अयोध्या के निकटवर्ती

हत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथ्वी स्थापनं कृतम्।
अथ देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भर मानसाः॥
समागम्य स्तुति चक्रुर्यज्ञवाराहतुष्टये।
इति श्रुत्वा तदा देवा गंधर्वा मुनयस्तथा॥
तत्रैव निवसन्ति स्म समांकृत्वा विधानतः॥

—वही, श्लोक ५६, ५७, ५८, ६३।

१. (क) वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाथया सती।
मूल प्रकृति संभूता पंचीकरण मार्गतः॥
वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात्॥
पूर्वं रूपं वराहं च बभार स च लीलया।
पूजां चकार तां देवी ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥

—देवीभागवत, नवम् स्कन्ध, अध्याय ६, श्लोक २५, २७, ३३।

(ख) डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा, पृ० ३८ (परिशिष्ट)।

२. पचकोस मरजाद चौदह चौरासी कोस
करत प्रदक्षिणा जो अति मन लाई है।
अक्षय पुण्य ताको सब तीरथ किये को फल
करत पुराण मुनि जाकर बड़ाई है॥

—उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८।

फैजाबाद, गोंडा तथा बस्ती जिलों के कतिपय अन्य छोटे-छोटे तीर्थ भी आ जाते हैं। पहली दोनों परिक्रमायें क्रमशः कार्तिक शुक्ला एकादशी तथा नवमी को आरम्भ होती हैं और एक ही दिन मे समाप्त हो जाती हैं। किन्तु तीसरी परिक्रमा चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) से लेकर पूर्णिमा तथा किसी भी दिन उठाई जा सकती है। उसका आरम्भ मनोरमा[1] से होता है जो अयोध्या से उत्तर गोंडा जिले मे मनवर नदी के उद्गम स्थल तथा उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता के आश्रम रूप मे विख्यात है। इसी तीसरी परिक्रमा मे सूकरखेत एक विश्राम स्थल है।[2] परिक्रमा समाप्त होने पर यात्री अयोध्या आकर जानकी-नवमी (वैशाख शुक्ल ६) के दिन सीताकुंड मे स्नान करते हैं।

महात्मा बनादास ने उपर्युक्त तीन परिक्रमाओं के अतिरिक्त रामभक्तों मे परम्परा से प्रचलित एक चौथी बृहत् परिक्रमा का भी वर्णन किया है जिसके भीतर अधिकांश रामतीर्थ आ जाते हैं। उनके शब्दों मे उसका स्वरूप इस प्रकार है—

कासी से उठावे राम नाम लव लावै,
प्रागराज मे अन्हावै चित्रकूट कहँ आवई।
नीमषार धावै हिय अति हरषावै,
क्षेत्र सूकर अन्हावै मनोरामा पर जावई॥
मिथिला को पाय नहिं आनन्द समाय,
बक्सर वाराणसी पुर-कोशल चलावई॥

---

१. उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनि कारणात्॥
पूज्यमाना मुनि गणैर्वल्कलाजिन संवृतैः।
मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता॥
—महाभारत, शल्यपर्व, ३८ वाँ अध्याय, श्लोक २४, २५।

२. चौरासी कोस की परिक्रमा के विश्राम स्थल ये हैं— मनोरामा, श्रृंगी ऋषि का आश्रम, गोसाईंगंज, सूर्यकुंड, दराबगज, आस्तिकाश्रम, जन्मेजय कुण्ड, अमानीगंज, मिश्र केडरवा, ललनीपुर, पटरगा, कमियार, जम्बूतीर्थ, सूकरखेत, उत्तरी भावनी (वाराही देवी), अमवही, गोकुलपुर, टेढ़ी सगम, नवाबगज, नगवा और सिकन्दरपुर।
—विशेष विवरण के लिए देखिये—अयोध्या दिग्दर्शन, पृ० ५८-५९, (पं० रामरक्षा त्रिपाठी, एम० ए०)

बदे 'बनादास'-परिक्रमा को स्वरूप यह,

रीझें सियाराम मुख माँगे सोई पावई ॥[1]

यहां भी नीमपार (नैमिषारण्य) के पश्चात् और मनोरमा के पूर्व जिस 'क्षेत्र सूकर' अथवा 'सूकरखेत' का उल्लेख' है, वह गोंडा जिले का ही सूकरखेत है क्योंकि उसकी स्थिति उपर्युक्त दोनो तीर्थों—नीमपार और मनोरमा के मध्य मे है। 'उभय प्रबोधक रामायण' मे बनादास जी ने इसी प्रसग मे अपने तीर्थाटन का वर्णन करते हुए सूकरखेत के स्थान पर उसके दूसरे नाम 'सगम' की भी चर्चा की है।[2] इससे उक्त धारणा निर्भ्रान्ति ठहरती है।

'गौतम चन्द्रिका' मे एक स्थान पर कृष्णदत्त मिश्र ने तुलसी द्वारा रामतीर्थों के पर्यटन का भी उल्लेख किया है। उसमे दिए गए प्रारम्भिक तथा अतिम यात्राक्रम से बनादास जी द्वारा प्रस्तुत परिक्रमा का स्वरूप बिल्कुल मिल जाता है।[3]

---

१ रामछटा, पत्र ६६। इस सगम नाम का उल्लेख 'रुद्रयामल तन्त्र' और 'गौतम चन्द्रिका' दोनों ग्रथों मे हुआ है। महात्मा बनादास ने भी सूकरखेत के इस पर्याय की चर्चा अपने यात्रा-विवरण मे की है।

२ काशी तीर्थराज चित्रकूट नीमसार लैंके,

सगम औ मनोरमा मिथिला सियाई है।

बनावास बक्सर वाराणसी पूर करै,

रीझें सीयराम मुख माँगे तौन पाई है॥

—उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८।

३ रामभक्ति रसमय भरी, सरि गोमती नहाइ।

ज्ञानखानि अघ हानि कर, कासी निवसे आइ॥

तीर्थराज भरि मकर नहाहीं। फागुन चित्रकूट चलि जाहीं॥

अवध निवास करहि मधुमासा। आइ करहिं पुनि कासी वासा॥

लागत मार्गसीर्ष मन भावन। कथित कृष्णगीता अति पावन॥

रामविवाह महोत्सव जानी। तुलसी हिये भवित हुलसानी॥

गुरु सन कहि मोहि सग लिवाई। सिय मइके सुति रमा लपाई॥

अवध सत मडली निहारी। गावहि नारि मैथिली गारी॥

बकसर वापीं गोतमी, तुलसी मुदित नहाइ।

मुक्ति जन्म महिमा मही, कासी निवसे आइ॥

—गौतम चन्द्रिका मे तुलसी का वृत्तान्त, पृ० ११।

इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि सूकरखेत का नामोल्लेख तुलसी ने 'रामचरितमानस' के जिस दोहे में किया है उसकी टीका करते हुए मानस-मर्मज्ञों ने क्या विचार प्रकट किये हैं और उनकी इस स्थान की स्थिति विषयक क्या धारणा रही है। इससे यह भी प्रकट हो जायेगा कि प्राचीन काल से साधु समाज और तुलसी साहित्य के प्रेमियों में किस सूकरखेत को मान्यता दी जाती रही है। यहाँ 'मानस' की केवल उन्हीं टीकाओं से उद्धरण दिये जायेंगे जिनकी रचना सूकरखेत सम्बन्धी विवाद छिड़ने के बहुत पहले १६ वीं शताब्दी में हो चुकी थी।

रामचरितमानस के प्रथम टीकाकार महात्मा रामचरणदास ने अपनी 'रामायण टीका' यद्यपि स० १८८० में समाप्त कर ली थी किन्तु बालकांड का तिलक, जिसमें वह छंद आया है, स० १८५० में ही पूरा हो चुका था।[1] रामचरितमानस बालकांड के सातवें दोहे की टीका करते हुए वे लिखते हैं—

मूल—सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहीं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

दोहार्थ—सोई कथा हमारे गुरुन को जाने कहाँ ते प्राप्त भई। सोई कथा है मैं अपने गुरु ते सुन्यो है। कथा गु कहै सुष्टु पदार्थ को उत्पन्न करै ताको सूकरखेत कही। तहाँ सुष्टु पदार्थ श्री रामयश-गुण चरित सो सत्संग मे गुरुन ते सुन्यो है अथवा **शूकरखेत कहै बाराह क्षेत्र, श्री अयोध्या के पश्चिम तीनि योजन सरयूतीर तहाँ सुनेउँ** तब मेरी बाल अवस्था रहे अचेत दसा रहे।

इसके पश्चात् स० १६३२ मे विरचित 'रामायण मानस प्रचारिणी टीका' मे मानस के उपर्युक्त दोहे का अर्थ करते हुए जानकीदास कहते हैं—

'अब जो कोई पूछै कि भला तुम कहाँ पायो तापर कहते हैं कि पुनः यही कथा जो शंभु कीन्ह फेरि काक भुशुण्डि दीन्ह तिन्हते याज्ञवल्क्य पाये ते भरद्वाज प्रति गाये सो कथा कहूँ से हमारे गुरुजी को प्राप्त भई सो हम अपने गुरुजी से सुना कहाँ सुना सूकरखेत नाम बाराह क्षेत्र **जो श्री अयोध्या जी से पश्चिम भाग मे सरयू घाघरा को संगम है** तहाँ पर अथवा सूकर नाम सुष्टु वस्तु जो करै सो को है सत सग सो सतसग क्षेत्र मे अपने गुरु से सुनी परन्तु समझी नही तस

---

१. संवत अष्टादस सुभग, सत्तरि अर्द्ध सपाख।
रामचरण ऋतुराज तिथि, पंच शुक्ल वैसाख ॥
—रामचरितमानस (ले० रामचरणदास)

२. रामायण टीका (रामचरणदास) नवलकिशोर प्रेस १८८७ ई० पृ० ६१।

जस श्री रामचरित मानस को स्वरूप है काहे ते कि तव बाल्यावस्था अति अचेत रहेउँ ।[1]

'मानस' की 'सत उन्मनी टीका' के रचयिता ने इसी प्रसग की व्याख्या करते हुए लिखा है—

'तत्पश्चात् नैमिषवन के बाराह क्षेत्र नाम स्थान को साथ ही आये । तहा कुछ दिन रहे । वा वाल्मीकि अध्यात्म इत्यादि रामायण श्रवण कियो । उनकी कृपा करि काव्य-शक्ति भई । ·· बाराह क्षेत्र मे, जो अयोध्या के पश्चिम ओर है ।'[2]

गोंडा के इस सूकरखेत में पौष की पूर्णिमा को एक विशाल मेला लगता है जिसमे दूर-दूर से साधुओं के अखाडे कल्पवास के लिये आते हैं । पसका गाँव मे ही, बाराह मन्दिर[3] और घाघरा तट के बीच, एक पुरानी कुटी है जिसे वहाँ के लोग नरहरिदास की कुटी बतलाते हैं । इस स्थान मे सीताराम लक्ष्मण विग्रह स्थापित हैं । मदिर मे पुराने बस्तो मे बँधा हुआ हस्तलिखित एव प्राचीन मुद्रित पुस्तको का छोटा-सा पुस्तकालय भी है । उसमे आनदराम नामक किसी व्यक्ति की लिखी स० १८८४ की एक हस्तलिखित रामचरितमानस की प्रति सुरक्षित है । इस गद्दी पर अब बाबा जगदेवदास आसीन हैं । इनके गुरु स्वर्गीय बाबा 'रामअवधदास' ने मुझे १८ वर्ष पूर्व अपनी परम्परा नरहरिदास के द्वितीय शिष्य रामकिशुनदास द्वारा प्रवर्तित बताई थी और अपने को नरहरिदास जी के पश्चात् उस गद्दी का आठवाँ महन्त बताया था । सम्भव है लिखित रूप मे परपरा सुरक्षित न रहने के कारण पूर्वाचार्यों की नामावली मे दो-चार पीढ़ियाँ छूट गई हो ।

गुरु के साथ ही गोस्वामी तुलसीदास के तथाकथित चचेरे भाई और सोरो सामग्री के मेरुदड, प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि नददास के भी निवासस्थान की स्थिति पर विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा । 'भक्तमाल' मे वे चन्द्रहास के भाई और रामपुर नामक गाँव के रहने वाले बताए गये हैं । 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' के अनुसार वे पूरब के निवासी और तुलसीदास के छोटे भाई थे । पहले वे रामानन्दीय सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे और तुलसीदास के साथ काशी

---

१ रामायण मानस प्रचारिका टीका ले० जानकीदास पृ० १२४ ।

२ सन्त उन्मनी टीका (१८८६ ई०) बालकांड पृ० २०४ ।

३. सरकारी कागजों मे "कोठरी बाराह जी" का विवरण नकल खसरा आबादी गाँव पसका नम्बरी ४६७ हाता नम्बरी ६ मे दिया गया है ।

राम चरित जिन कीन ताप त्रय कलिमलहारी ।
करि पोथी पर सही आदरेउ आपु मुरारी[1] ॥
राखी जिसकी टेक मदन मोहन धनुधारी ।
बालमीकि अवतार कहत जेहि सत प्रचारी ॥
नन्ददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई ।
उज्ज्वल रस टपकाइ दियो जानत सब कोई[2] ॥

मीतल जी के अनुसार इस प्रसग मे 'गुरुभ्राता' से रचयिता का तात्पर्य है 'बडा भाई' । यह विचारणीय है कि 'गुरु भ्राता' लोक प्रचलित 'गुरुभाई' का पर्याय है जिसका अर्थ सतीर्थ, सहदीक्षित अथवा सहपाठी होता है, अग्रज नही। वार्ता-साहित्य मे नन्ददास गोस्वामी तुलसीदास के साथ काशी मे निवास करने और रामानन्दीय सम्प्रदाय मे दीक्षा लेने की चर्चा है । मीतल जी द्वारा उद्धृत उपर्युक्त छद मे काशी के प्रसिद्ध विद्वान् 'शेष सनातन'[3] का विद्यागुरु के रूप में

---

१. मेरे विचार में यहाँ 'पुरारी' पाठ होना चाहिए 'मुरारी' नहीं । गोस्वामीजी के जीवनवृत्त से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध किंवदती के अनुसार, जिसका उपयोग प्राय तुलसी के सभी जीवनीलेखकों ने किया है, भाषा मे लिखे गये मानस की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देख कर काशी के संस्कृताभिमानी पडितों ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि विश्वनाथ जी उसकी सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित कर दें तो हम विरोध करना छोड देंगे । कहते हैं गोस्वामी जी ने यह शर्त मान ली । फलत उसी रात को 'रामचरित मानस' की एक प्रति विश्वनाथ मन्दिर में कपाट मे बन्द होते समय रख दी गई । प्रात काल द्वार खुलने पर एकत्र जनसमुदाय यह देख कर स्तब्ध रह गया कि उक्त ग्रन्थ पर विश्वनाथजी की 'सही' अकित थी । प्रसग मे निर्दिष्ट सही' से रचयिता का आशय त्रिपुरारि शिव द्वारा की गई उक्त सही से है, 'मुरारि' से उसका कोई सम्बन्ध लक्षित नहीं होता ।

२. अष्टछाप परिचय—श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३०२ ।

३ तुलसी के काशीवासी विद्यागुरु 'शेष सनातन' अद्वैत मतानुयायी थे । डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने इनकी अभिन्नता की सम्भावना शेष पडित से व्यक्त की है जो शकराचार्य के 'सर्व सिद्धान्त सग्रह' के टीकाकार शेष गोविन्द के पिता थे । ये रामचरित मानस के विख्यात प्रशसक मधुसूदन सरस्वती के समसामयिक थे जिन्हें म० म० डा० गोपीनाथ कविराज ने स० १६५७ तक विद्यमान रहना स्वीकार किया है । डा० बडथ्वाल का अनुमान है कि

उल्लेख भी है। ये तथ्य नन्ददास और तुलसीदास का गुरुभ्रातृत्व सर्वथा सगत ठहराते हैं। अतः सोरो-सामग्री का समर्थक कहा जाने वाला उपर्युक्त छद स्वतः तुलसी और नन्ददास के सहपाठी होने की ही पुष्टि करता है—सगोत्री अथवा पितृव्य पुत्र होने की नही।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत छन्द मे सकेतित अन्य तथ्य भी सोरो सामग्री तथा उसकी एक प्रमुख आधारशिला 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे वर्णित घटनाओं का प्रत्याख्यान करते हैं। प्रथम पक्ति मे जिस 'स्वगुरुभ्राता' तुलसी की पद-वदना नददास ने की है उसकी 'टेक' रखने के लिए ही 'मदनमोहन' श्री कृष्ण ने 'धनुषधारी' राम का रूप धारण किया था और उसी के दिव्य उपदेश से विषयासक्त नन्ददास को भगवदासक्ति की प्रेरणा मिली थी। इसके विपरीत सकुचित साम्प्रदायिकता के रग मे सराबोर 'वार्ता' के 'नन्ददास' पग-पग पर उपास्य के स्वरूप-भेद को लेकर तुलसी का विरोध करते और अपनी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति के द्वारा उनका पथप्रदर्शन करते दिखाए गए हैं। नन्ददास की उपर्युक्त रचना मे अभिव्यक्त आत्मोल्लेखो के होते हुए भी परवर्ती भक्तो द्वारा साम्प्रदायिक महत्त्व को बढाने के लिए गढी गई वार्ताओ पर विश्वास कैसे किया जाय। समझ मे नही आता कि मीतल जी ने इस छन्द को सोरो सामग्री का समर्थक कैसे मान लिया ?

'गोसाइँ चरित' मे नन्ददास को तुलसी का 'गुरुबन्धु' बताया गया है जो पूर्वोक्त 'गुरुभ्राता' का ही पर्याय है। किन्तु यहाँ ये सनाढ्य नही कान्यकुब्ज कहे गये हैं—

> कान्यकुब्ज एक विप्र नगर कनउज ढिगवासी।
> श्री गोसाइँ गुरुबन्धु रहे श्री कृष्ण उपासी।।
> नन्ददास सुभ नाम स्वच्छ कृत पद जग गावै।
> और कुटुम्बी विप्र भक्ति प्रतिपच्छ न भावै[1]।

शेष पडित अपने पुत्र शेष गोविन्द को बाल्यावस्था मे ही दिवगत हो गये थे। इसलिए उनकी शिक्षा-दीक्षा आचार्य मधुसूदन सरस्वती की देख-रेख मे हुई (योग प्रवाह पृ० २९८-२९९)। सगुणमार्गी भक्त गोस्वामी तुलसीदास को दार्शनिक विचारधारा पर अद्वैतमत का गहरा प्रभाव इन्हीं शेषसनातन द्वारा प्राप्त शिक्षा का फल था। नन्ददास के 'भ्रमरगीत' मे उद्धव द्वारा अद्वैत सिद्धान्त का निरूपण तथा भोली-भाली गोपियों की तार्किकता भी इन्हीं का प्रसाद हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१. गोसाइँ चरित, पद्य ५२।

'गोसाईं चरित' के प्रसगो के उद्धारक भवानीदास ने कदाचित् प्रमादवश 'नन्ददास प्रसग' मे एक अन्य नन्ददास का वृत्त सग्रथित कर दिया है जिन्होंने अपने तपोबल से, भक्तमाल के अनुसार, एक मरी हुई गाय जिला दी थी।[1] प्रियादास ने इनको बरेली निवासी बताया है। इतना छोडकर उक्त प्रसग में दिया गया समस्त वृत्त प्रसिद्ध अष्टछापी नन्ददास का ही है। 'गोसाईं चरित' के इन नन्ददास का आचरण तुलसी के कृष्णोपासक गुरुबन्धु नन्ददास के सर्वथा अनुरूप है। नन्ददास की रामावतार सम्बन्धी रचनाओ से यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी की भाँति वे भी राम और कृष्ण मे अभेद भावना रखते थे और उनकी लीला गाकर अपनी वाणी पवित्र करते थे।[2]

रामगुणगान के साथ ही नन्ददास द्वारा लिखे गये 'हनुमान जी के पद'[3]

---

१. नाभा ज्यो नन्ददास मुई यक बच्छि जिलाई।

—श्रीभक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ४६०

भवानीदास की ही भाँति 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित' की रचयिता रानी कमल कुँवरि और तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथ कूर्मवंशी ने भी बरेली जिले के हवेली नामक ग्राम के निवासी इन्हीं नन्ददास को तुलसी का भाई माना है।

२ रामकृष्ण कहिए उठि भोर।
ओहि अवधेश वही ब्रजजीवन धनुषधरन अरु माखनचोर॥
इत मे अयोध्या निर्मल सरजू उतै जमुना जल करत किलोल।
उत में दशरथ पुत्र कहाए इतै कहाए (बाबा) नदकिशोर॥
उत मे जानकी बाएँ विराजे इत राधे सग जुगल किशोर।
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथसुत बाबा नन्द किशोर॥

—नन्ददास ग्रन्थावली पृ० २७९-८०।

३ जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को।
देखत दसमाथ अपने नाथ को सुखदेन को॥
अरुन बदन तेज सदन पीत नयन गात है।
उत्तर ते दच्छिन मानों मेरु उड्यो जात है॥
जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात है।
सत जोजन सिंधु कूद्यो तो कितो एक बात है॥
श्री रामचन्द्र पद प्रताप जग में जस जाको।
'नन्ददास' सुरनर मुनि कौतुक भूले ताको॥ —वही, पृ० २८५

इस सम्भावना को और बदल देते हैं कि उनके भक्त हृदय पर किसी समय रामभक्ति की छाप पडी थी। मेरी यह धारणा है कि ये रामानन्दीय संस्कार नन्ददास को अपने गुरु नरहरिदास तथा गुरुभाई तुलसी के दीर्घ सहवास से प्राप्त हुए थे। इनसे सोरों-सामग्री मे चित्रित 'रामपुर' को खरीदकर 'श्यामपुर'[1] बनाने वाले 'महाप्रभून के सेवक' कट्टरपथी कृष्णोपासक नन्ददास के आचरण का प्रत्यक्ष विरोध पडता है और यही तथ्य साम्प्रदायिक द्वेष से अनुप्राणित उक्त वार्ता की स्थिति स्पष्ट कर देता है। सोरो के नन्ददास, लीलापुरुषोत्तम के चरित गायक उदार, निस्पृह, भावावेशी भक्त तुलसी के गुरुबन्धु नन्ददास की अपेक्षा अत्यत अनुदार एव लोकप्रपचग्रस्त प्राणी प्रतीत होते हैं। उनका तुलसी से बिन्दुमार्गी बन्धुत्व प्रमाणित करने के लिए सोरो-पक्ष के समर्थको ने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे अत्यन्त एकागी एव भ्रामक हैं। नन्ददास की कृतियो मे उपलब्ध अन्त: साक्ष्यो से उनकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है।

सोरो के समर्थको ने अपनी उपपत्ति की पुष्टि के लिए तुलसीदास की कृतियो में प्रयुक्त भाषा की भी गवाही प्रस्तुत की है और उसमे से कुछ ऐसे शब्द, वाक्याश, लोकोक्तिया तथा मुहाविरे, ढूंढ निकाले हैं जो, उनके अनुसार, सोरो के आसपास ही व्यहृत होते हैं।[2] किन्तु डा० गोवर्द्धनलाल शुक्ल ने, जिनका उस प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जो वहाँ के रीति-रिवाजो तथा भाषा से भलीभाँति परिचित हैं, उनकी यह धारणा सर्वथा निर्मूल बताई है। उन्होंने विस्तृत परीक्षा के अनन्तर तुलसी के ठेठ प्रयोगो को पूर्वी अवधी का अभिन्न अग मानते हुए तुलसी साहित्य मे निर्दिष्ट सस्कार, सगीत तथा व्यवसाय सम्बन्धी कतिपय शब्दो को सोरो मे अप्रचलित तथा वहाँ के निवासियो को उनसे अपरिचित बताया है।[3]

तुलसी साहित्य मे प्रयुक्त भाषा के विकासात्मक अध्ययन से यह विदित होता है कि उनकी कृतियो मे क्रमश: ठेठ अवधी (रामललानहछू, पार्वती मगल, जानकी मगल आदि) परिष्कृत अथवा सस्कृतनिष्ठ अवधी (रामचरित मानस, रामाज्ञा

---

१. तीरथ वर सौकर निकर, ग्राम रामपुर वास।
सोई रामपुर श्यामपुर, कर्यो पिता नन्ददास॥
—सूकरक्षेत्र माहात्म्य (कृष्णदास) से अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयाल गुप्त, पृ० ६०१ पर उद्धृत।

२. तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० ७२-७५।

३. सोरों सामग्री पर एक दृष्टि—डा० गोवर्द्धनलाल शुक्ल, पृ० २७-२६।

प्रश्न, वरवै) तथा ब्रजभाषा (वैराग्य-सदीपनी, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, कवितावली और विनयपत्रिका) का प्रयोग हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असगत न होगा कि उन्होने अपनी आरम्भिक रचनाओ मे जिस भाषा का प्रयोग किया वही उनकी मातृभाषा अथवा बाल्यावस्था मे गृहीत भाषा थी। सयोगवश वह भाषा उसी स्थान की है जहां उन्होंने अति अचेतन अवस्था मे गुरु के अन्तेवासी रूप मे अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और प्रतीक उसी क्षेत्र की भाषा से चुने गये हैं। शनै -शनै शिक्षा एव सामाजिक सम्पर्क से ज्ञानवृद्धि होने पर प्रौढावस्था मे उन्होने उसका परिष्कार किया और उसी मे मानस की रचना की। आगे चलकर साहित्यानुशीलन एव देशाटन करते हुए उन्होने यह अनुभव किया कि, बल्लभ, राधावल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्णभक्तो और दरबारी कवियो ने ब्रजभाषा मे अत्यन्त सरस काव्य रचना की है। उन्होने देखा कि इसी गुण के कारण वह उत्तरी भारत की एक सामान्य काव्य भाषा के रूप मे समादृत हो चुकी है, अत अपनी अधिकाश उत्तरकालीन कृतियो मे उन्होने ब्रजभाषा को ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह उल्लेखनीय है कि तुलसी ने ब्रजभाषा का ग्रहण एक परिनिष्ठित काव्यभाषा के रूप मे किया था जैसे उनके अन्य समकालीन एव परवर्ती अवध प्रदेशवासी भक्ति एव रीति-परम्परा के कवियो ने किया था, कुछ मातृभाषा के रूप मे नही। उनकी ब्रजभाषा मे लिखी गयी रचनाओ म पूर्वी अवधी के शब्दो तथा मुहाविरो का प्रचुर प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।[1] इसके विप-

---

१. (क) वैराग्य सदीपनी छ० १३, को मुखपट दीन्हे रहै। १४, ताहि। १६, गहेउ ३३, सहिदानु। ३६, जैसेहु कैसेहु। ४०, हम नीके देखा कब जाई। ४५, फिरी दोहाई राम की गे कामाविक भागि।

(ख) गीतावली—बालकांड छ २, असही दुसही। ४, कोसिजुडानो। १७, लेरुआ। ८३, कनियां।

अयोध्या—१८, बटोही। २०, चकचौंधी लागे। २८, बरियार। ३१, बराइ। ३२, निसरिगे। ३७, देखवैया। ४०, उपही। ४६, उकठेउ। ६६, गोड। ८७, चुचुकारे। ८६, चाह।

आरण्य—३, गवैंहि। ५, मेरवति। १७, अंचइ (भोजनोपरान्त हाथ मुंह धोकर)। किष्किधा—२, बदिबदि।

सुन्दर—१, तरकि, लुक। १२, मोखे। २५, हुमकि, ताकि ३७, सई।

उत्तर , थरहरिकरत। ६, बतकही। २१, सुधर। २२, कूटि।

रीत ब्रजभाषा क्षेत्र में उत्पन्न हिन्दी के प्रसिद्ध कवियो मे एक भी ऐसा नहीं दिखाई देता जिसने ठेठ अवधी में सफल काव्य-रचना की हो। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए तुलसी इसके अपवाद नहीं बनाये जा सकते।

तुलसी की ठेठ एव परिष्कृत अवधी मे लिखी गई कृतियो मे प्रयुक्त भाषा का स्वरूप प्रायः वही है जो आज भी गोंडा जिले के पश्चिमी एव दक्षिणी सीमान्त क्रमशः घाघरा के पुल से लेकर बस्ती जिले के पूर्वी भाग मे बोली जाती है। 'सूकरखेत' इसके मध्य मे स्थित है। इससे भी यही विदित होता है कि इस प्रदेश मे गोस्वामी जी ने अपने बाल्यजीवन का अधिकाश व्यतीत किया था क्यो कि किसी स्थान की भाषा अपनी मौलिक प्रवृत्तियो सहित उसी अवस्था मे पूर्ण-रूपेण ग्रहण की जा सकती है। इसी भाति दीर्घकाल तक काशी और चित्रकूट मे निवास करने के कारण उनकी कृतियो में क्रमशः भोजपुरी और बुन्देली के भी शब्द और मुहाविरे स्वाभाविक रूप मे आ गये हैं।

गोस्वामी जी की रचनाओ मे यत्र-तत्र फारसी तथा अरबी भाषा के शब्दो का प्रयोग देखकर कुछ आलोचको ने उन्हें उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अचल अर्थात् सोरो का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है।[1] उनकी यह दलील है कि

(ग) विनय पत्रिका—छं० ३३, लोंची। ३४, बिलगु न मानिए। ७०, खँगिहै। ७५, ऐसी हठ जैसी गाँठि परेसन की। ७६, रोटी लूगा नीके राखें। १०१, बराय। १०६, भेंई। १४१, डहकत। २०४, खटाई। २१६, रिरिहा। २२६, कौर। २६१, आउ बाउ। १८४, फोकट। १८६, अटखट, सरल, खटोला, बिहल, बटोरा।

(घ) दोहावली—छं० १५, मीठो अरु कठवत भरो। १४३, पुरखा। १६८, इगारहो। ३७७, निराबहिं। ४०२, भरदर। ४२२, भरहाये। ४६६, अगह। ४७८, पाही खेती।

(च) कवितावली—सुन्दरकांड—छ० ४, निबुकि। ६, बुबुक बुबुकारी देत ११, दाढ़ीजार।
लंका काण्ड—१६, टसकत। २०, बहपट। ४६, फेकरि फेकरि।
उत्तर काण्ड—६, उपारि। १२, बेसाहे। १६, रिनियाँ। २२, खटाई। २४, देवैया। ४६, खुरपा खटिया। ६३, गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि। ६७, कहाँ जाई का करो।

१. प० रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी की भाषा पर तत्कालीन राजभाषा फारसी के प्रभाव की विवेचना करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के जो उदाहरण

सोरो और उसके आस-पास मुसलमानो की बस्तियाँ अधिक हैं। इसी से अरबी फारसी के जितने सब्द पश्चिमी हिन्दी मे मिलते हैं उतने पूर्वी हिन्दी मे नही।[1] इस सम्बन्ध मे इतना ही सकेत कर देना पर्याप्त होगा कि यदि मुसलमानो की बहुसख्यक बस्ती और उनका सम्पर्क की तुलसी साहित्य मे अरबी फारसी के शब्दो के अबाध प्रवेश का कारण मान लिया जाय तो सोरो की अपेक्षा मानस की आविर्भावस्थली अयोध्या और उसका निकटवर्ती प्रदेश तुलसी की जन्मभूमि होने का अधिक अधिकारी है। इतिहास इसका साक्षी है कि उत्तरी भारत मे दिल्ली और आगरा को छोडकर अयोध्या ही सुलतानो के समय (१२८० ई०)[2] से लेकर नवाब आसफुद्दौला के शासन काल, १७७५ ई० तक लगातार पाच सौ वर्षों तक प्रान्तीय शासन का मुख्य केन्द्र रहा है और उसी के नाम पर उक्त सरकार और सूबे को अवध की सज्ञा दी जाती रही है।[3] इसके धार्मिक महत्व

दिये हैं उनमे से एक हैं 'सीपर'। इसका शुद्ध फारसी रूप 'सिपर' है जिसका अर्थ होता है ढाल। त्रिपाठी जी का निश्चित मत है कि 'यदि सीपर' शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता तो फारसी कोष में से निकाल कर वे इस शब्द को प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।' तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५)। त्रिपाठी जी ने सोरो को तुलसी की जन्मभूमि मानते हुए भी उस क्षेत्र के कवियों की रचनाओं से ऐसे उदाहरण नहीं दिये हैं जिनसे यह विदित होता हो कि वहाँ की बोल- चाल मे ऐसे शब्द परम्परा से प्रयुक्त होते रहे हैं। किन्तु मुझे गोंडा के महाराज दत्तसिंह के शौर्य की प्रशसा मे कहा गया 'भानु कवि' का निम्नांकित दोहा मिला है जिसमे उक्त शब्द अपने प्रकृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

सिपर सिरोही सूरता, गई दत्त के साथ।
झाझ मजीरा सारगी, रही बिसेनैं हाथ॥

महाराज दत्तसिंह १६९६ मे गोंडा के सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने नवाब सआदत अली खाँ की सेनाओ को परास्त कर पूर्वी अवध मे एकछत्र राज्य स्थापित किया था।

—देखिए डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा, पृ० १४६

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५।
२. ए हिस्टारिकल स्केच आव दि फैजाबाद तहसील—कार्नेगी, पृ० २१।
३. वही, पृ० २।

को मिटाने के लिए मध्यकालीन मुसलमान शासक निरन्तर प्रयत्नशील रहे।[1] १५२८ ई० में बाबर ने रामजन्म भूमि का प्राचीन मन्दिर तोड कर उसके ध्वंसावशेषो से एक मस्जिद बनवाई जो अब तक विद्यमान है।[2] उसके परवर्ती मुसलमान बादशाहो ने इसका नाम बदल कर 'अख्तर नगर'[3] रखा किन्तु वह सरकारी कागज-पत्रों मे ही दफन होकर रह गया। जनमानस मे अयोध्या की स्मृति पूर्ववत् बनी रही और विशिष्ट पर्वों पर उसकी यात्रा कर वे मर्यादापुरुषोत्तम राम की राजधानी को श्रद्धाजलि अर्पित करते रहे। इसके महत्व को नष्ट करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने त्रेता के ठाकुर का मन्दिर तोडकर एक विशाल मस्जिद बनवाई जिसके खंडहर अब भी स्वर्गद्वार पर देखे जा सकते हैं। मुसलमान बादशाहों ने अयोध्या के आस-पास अपने सहधर्मियो की अनेक बस्तियाँ बसाईं और उन्हे बडी-बडी जागीरें देकर स्थायित्व प्रदान किया। बाराबंकी, दरियाबाद, फैज़ाबाद, अकबरपुर, शाहगज, जौनपुर आदि नगर तथा अयोध्या मे असख्य कबरें और टूटी हुई मस्जिदो की मीनारे अब तक धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारो की गवाही दे रही हैं। इस प्रदेश मे शताब्दियो तक प्रतिष्ठित मुसलमानी शासनकेन्द्र और उसके द्वारा प्रचारित इस्लामी रीति-रिवाजो और भाषा के दीर्घकालीन सम्पर्क से ही परवर्ती भक्त कवियो—मोहन साईं, दूलनदास, बनादास, और युगलानन्यशरण ने फारसी अरबी के शब्द ही

---

१. अयोध्या पर चढ़ाई करने वाले सर्वप्रथम मुसलमान सेनाध्यक्ष सालार मसऊद ग़ाज़ी के प्रतिनिधि सय्यद मसूद बेहानी (१०३० ई०) तथा शहाबुद्दीन ग़ोरी के सेनाध्यक्ष मकदूमशाह जूरन गोरी (११९२ ई०) की कबरें क्रमशः बिड़हर और अयोध्या में अब तक देखी जा सकती हैं। जौनपुर में शर्की सल्तनत के संस्थापक ख्वाजा जहाँ ने भी अपनी आयु का एक बहुत बड़ा अंश इसी नगर में व्यतीत किया था। उसकी मृत्यु भी यहीं हुई।

२. इसी मस्जिद को लेकर इधर कई वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों में वाद चल रहा है।

३. (क) ए हिस्टारिकल स्केच आव दि फैज़ाबाद तहसील, पृ० २३।
(ख) अयोध्या वाज़ ए मिन्ट टाउन आव अकबर एण्ड मुहम्मद शाह, सम वाम्स आव दि लैटर बीँग इन्सक्राइब्ड 'अख्तर नगर अवध'।
—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, फैज़ाबाद, पृ० १७२।

नहीं बनाये, रेखता भाषा में काव्य रचना भी की।[1] मेरी यह धारणा है कि सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में फारसी, अरबी तथा इनकी उत्तराधिकारिणी उर्दू का जितना प्रभाव पूर्वी अवधी क्षेत्र में लिखे गये काव्य-ग्रंथों में मिलता है उतना ब्रज ही नहीं उसकी किसी भी अन्य उपभाषा में नहीं पाया जाता। अतः इन्स्वामी

---

१. इनकी रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें है तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका विरचि नारद महेश गौरा॥
वह घड़ी अजब थी कि जिस घड़ी, वह दरख्त बट का उगा यहाँ।
उसी शाख में अड़के बुलबुल गुल उसे कैसे कोई करे वर्मां॥
हैरॉ हुए सब देख कर कुदरत इलाही वर जहाँ।
न सुना मुअम्मा किसी से भी पोशीदा इसरारे निहाँ॥
सुना न देखा किसी ने पहले बना दिया उसने सबको बौरा॥

—मोहन साईं (सं० १८१२ में वर्तमान) का एक गीत, माधुरी, वर्ष १४, खंड २, सं० ३, पृ० ३७४-६५ से उद्धृत।

अब तो अफसोस मिटा दिल का दिलदार दौर में आया है।
संतों की सुहबत में रह कर हक हादी को तिर लाया है॥

—सन्तवाणी संग्रह, भाग २, बुल्लादास, पृ० ६४।

सालो में फेरों दिलों को दम वह बान गुन के।
कफनो में डालो लाशों की आशिक उसी मकबूल के॥

—पलटू साहब की शब्दावली, पृ० २३६।

चश्मों की अदा देखि के चितचूर हुआ है।
क्या दिल के अँधेरे में यह पुरनूर हुआ है॥
खाली था बहुत रोजों से खातिर सराव सार।
मेहनत बगैर शौक से भरपूर हुआ है॥

—रहस्य पदावली, युगलानन्दशरण, पृ० ५६।

जिगर से जख्म भारी है। दसा विरही की न्यारी है॥
खरे नैना उदासे हैं। लेत गहरी उसासें हैं॥

स्रोतों से आये हुये शब्दों, लोकोक्तियों और मुहाविरों के सफल प्रयोग को ध्यान में रखते हुए भी अयोध्या और उसके निकटवर्ती 'सूकरखेत, को तुलसी की आदि शिक्षाभूमि मान लेने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती।

इसी प्रसंग में तुलसी द्वारा निर्दिष्ट तत्कालीन लोक जीवन में फैली हुई बहराइच की दरगाह के चमत्कारी प्रभाव विषयक भ्रान्त धारणाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए।[1] यह विचारणीय है कि रामकथा तथा अपने विरक्त जीवन से सम्बद्ध तीर्थों के अतिरिक्त तुलसी ने अपनी कृतियों में केवल इसी स्थान की चर्चा की है, जो गोंडा वाले 'सूकर खेत' से कुछ ही दूरी पर स्थित हैं। बाल्यकाल में गुरु के सान्निध्य में पसका अथवा सूकरखेत में तथा वयस्क होने पर अयोध्या निवास करते समय उन्होंने प्रतिवर्ष जेठ के महीने में हजारों की संख्या में लोगों को नेत्रज्योति, पुत्र तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा से सालार मसऊद ग़ाज़ी के दरगाह की जियारत के लिए जाते हुए देखा होगा और उस समय उनके हृदय में जनता की अंधानुसारिणी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई होगी। क्षुद्र सांसारिक स्वार्थों के लिए एक नृशंस आक्रामक की कब्रपूजा उनकी दृष्टि से भूत पूजा से भी अधिक निंदनीय थी। बहराइच की दरगाह के मेले में आनेवाले यात्रियों की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में तुलसी की इस विस्तृत जानकारी का कारण उनका उसके निकटवर्ती प्रदेश में दीर्घकाल तक निवास ही हो सकता है।

सूकरखेत की स्थिति पर विचार करते हुए *यह भूलना चाहिए कि गोंडा का* सूकरखेत आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है जिस रूप में उसका उल्लेख परम्परागत साहित्य में होता आया है। सोरों को तुलसी के जीवन से सम्बद्ध करने के लिए जो नए-नए प्रमाण नित्य लाए जा रहे हैं वे उसे वाराहवतार का स्थान तो बना सकते हैं, क्योंकि इस गौरव के अधिकारी अनेक तीर्थ हमारे यहाँ बहुत

अधर सूखे मदन जरदी। रंगे अँगरंग ज्यों हरदी।।
भले अंदर जलाया है। याह्य सो रंग छाया है।।
हृदय को कौन लखि पावं मुहब्बत जाते बढ़ती है।
बना माशूक जब राखो वशा निसि दिवस चढ़ती है।।

१. लही आँख कब आँधरे बाँझपूत कब ल्याय ?
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाय।।

—दोहावली, छं० ४९६।

पहले से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं किन्तु उनके आधार पर उसे तुलसी का 'सूकरखेत' सिद्ध नही किया जा सकता ।

अत जब तक सस्कारमुक्त चित्त से विपक्ष मे ठोस प्रमाण प्रस्तुत नही किये जाते, तब तक शताब्दियो से तुलसी के गुरुद्वारा रूप मे प्रतिष्ठित, तुलसी-प्रेमियो तथा रामभक्तो के बीच एक पुण्य क्षेत्र की भाँति समादृत और 'मानस' एव उसके चरित नायक की जन्मभूमि अयोध्या के निकट सरयू तट पर स्थित, गोंडा के सूकरखेत का महत्व अक्षुण्ण रहेगा ।

रामलला नहछू : पुनर्विचार

रामलला नहछू लोकगीत शैली मे लिखी गई तुलसी की एक छोटी-सी रचना है। इनकी भाषा ठेठ पूर्वी अवधी है। जानकी-मगल तथा पार्वती-मगल की भाँति यह भी मुडन, उपनयन, विवाह आदि मगल अवसरो पर गाया जाने वाला एक सस्कार-गीत है।[1] रचयिता ने इनका गान सभी प्रकार की भौतिक एव पारमार्थिक उपलब्धियो का साधक बताया है—

जे यह नहछू गावइँ गाइ सुनावइँ हो।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो ॥[2]

प्रेरणा एव आधार :

इस ग्रन्थ के उपक्रम एव उपसहार से यह स्पष्ट विदित होता है कि इसकी रचना मे कवि का उद्देश्य मागलिक अवसरो पर स्वस्थ सामाजिक मनोरञ्जन के साथ ही उपयुक्त गीतो के माध्यम से गायको तथा श्रोताओ का आध्यात्मिक उन्नयन भी रहा है। उक्त तीनो मगल-काव्य विशेषरूप से अशिक्षित ग्रामीण स्त्री-समाज को दृष्टि मे रखकर लिखे गए हैं।[3] लोकभाषा का प्रयोग इसीलिए किया गया है।

---

१ (क) उपवीत ब्याह उछाह जे सिय राम मगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं ॥
—जानकीमगल, २१६।

(ख) कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमाशकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥
—पार्वतीमगल, १६४

२. रामलला नहछू, २०।

३. प्रेमपाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि।
मगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ॥

कुछ विद्वानो का विचार है कि अपने समय मे नहछू के अवसर पर गाये जाने वाले अश्लील गीतो को सुनकर उनकी प्रतिक्रिया-स्वरूप तुलसी ने इस भक्तिपूर्ण सस्कार-गीत का निर्माण किया था ।[1] किन्तु निम्नाकित तथ्यो के प्रकाश मे यह अनुमान निराधार ठहरता है—

(१) तुलसी इस बात से पूर्णतया अवगत थे कि लोक-जीवन मे जो मागलिक गीत प्रचलित हैं, उनमे राम तथा सीता चरित व्यापक रूप से गाया और सुना जाता है । रामचरित मानस मे इसका स्पष्ट उल्लेख है—

स्याम सुरभि पय बिसद अति, करहिं गुनद सब पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ।।[2]

रामकथा पर आधारित ये ग्रामगीत सस्कार-गीत ही रहे होंगे, कारण कि लोक-स्तर पर व्यापक रूप से वे ही प्रचलित होते हैं । स्वय तुलसी ने 'रामलला नहछू' की रचना उन्ही से प्रेरणा प्राप्त करके की, यह 'रामलला नहछू' और उस अवसर से सम्बद्ध लोकगीतो की शब्दावली की समानता से स्वत सिद्ध हो जाता है ।[3]

मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मजु मजुल हार सो ।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो ।।
—पार्वतीमगल, १६३–६४ ।

१. 'श्री अयोध्याजी में किसी के नहछू उत्सव में श्रीगोस्वामी जी पधारे थे । वहाँ किसी भाटिन के कुछ अनुपयुक्त एव अश्लील नहछू गीत सुने । आप वहाँ से उठ चलने पर उद्यत हुए । जानकर लोगों ने गान बन्द करा दिया । तब उस भाटिन ने क्षमा माँगी और उपयुक्त गीत बना देने की प्रार्थना की । तब ग्रन्थकार ने इसका निर्माण किया ।'
—रामलला नहछू (सिद्धांत तिलक), उपोद्घात, पृ० ३ ।

२. रामचरित मानस, बालकाण्ड, दो० २० ।

३ 'के बिहल चुटकी मुँदरिया के बिहल रूप हे ।
के बिहल रतन पवारय भरि गयउ सूप हे ।।
केकइ बिहल चुटकी मुँदरिया सौमित्रा बिहल रूप हे ।
कौसिला बिहल रतन पवारय भरि गयउ सूप हे ।।
—तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० २०४ पर रामलला नहछू (स० १६६५ के हस्तलेख से उद्धृत) ।

(२) मर्यादानिष्ठ काव्य-रचना के समर्थक होते हुए भी तुलसी मांगलिक अवसरो पर गये जाने वाले गीतो मे हास-परिहास के लिए छूट देने के पक्षपाती थे। जनकपुर मे रामविवाह के अवसर पर वरपक्ष के पुरुषो और स्त्रियो का नाम लेकर गाई जाने वाली गालियो मे उन्होने रस लिया है और उन्हे अवसरोचित मानकर अभिनंदनीय ठहराया है—

'जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥'[1]

'रामलला नहछू' मे इन गालियो के एकाध नमूने रख कर कृतिकार ने प्रकारान्तर से लोकमानस से तादात्म्य स्थापित किया है। इस प्रकार की शिथिलता आलोच्य ग्रन्थ के शृङ्गारी वर्णनो मे कई स्थलो पर, विशेष रूप से नेगहारिनो के हावभावो के वर्णन मे, तुलसी ने जानबूझ कर बरती है, जिससे चिढ कर नवीन दृष्टि सम्पन्न आलोचको ने 'रामलला नहछू' को 'महात्मा कहलाने वाले एक मनोरोगी कवि मनीषी की मानसिक रतिलीला'[2] तक कह डाला है। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परपराओ से विच्छिन्न साहित्यक मूल्यांकन मे इस प्रकार का दृष्टिदोष सहज सभव है।

कहने का तात्पर्य यह कि ग्राम्य भाषा एवं लोकगीत शैली में रामचरित के मांगलिक प्रसगो का वर्णन कर तुलसीदास जहाँ एक ओर इनके माध्यम से लोकजीवन मे व्याप्त रामनिष्ठा को सांस्कृतिक स्तर से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर तथाकथित शिष्ट एवं

केई दीना चुटकी मुंदरिया केई दीना रूप।
केई दीना रतन जडाऊ त भरिगा है सूप॥
केकई ने चुटकी मुंदरिया कौशिल्या रानी रूप।
सुमित्रा रानी रतन जडाऊ तो भरिगा है रूप॥ —ग्राम्य साहित्य
(पं रामनरेश त्रिपाठी) पृ० २५५।

अन्य मुद्रित प्रतियों में यही पंक्तियाँ इस रूप मे मिलती हैं—
राजन दीन्हे हाथो रानिन्ह हार हो।
भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो॥
—तुलसी ग्रन्थावली (रामलला नहछू) छंद १७, पृ० ५।

१. रामचरित मानस : बालकाण्ड : ३५९।
२. परितोष, अंक ११, पृ० २९।

(१) 'नहछू' में तुलसी ने स्पष्ट रूप से संस्कार वर्णन के प्रसंग में राम को 'दूलह' और 'वर' की संज्ञा दी है, जो किसी भी स्थिति में उपनयन के लिए अनुष्ठित ब्रह्मचारी का बोधक नहीं माना जा सकता। यह लोकप्रसिद्ध है कि यज्ञोपवीत के हेतु वेदी पर उपस्थित बालक 'बटु, ब्रह्मचारी या बरुआ'[1] के नाम से संबोधित होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में राम के भी जनेऊ के गीत पाये जाते हैं। उनमें भी राम को बरुआ या बटु ही कहा गया है—दूलह या वर नहीं।

(२) 'नहछू' में कहीं भी यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन नहीं आया है। परंपरागत लोकाचार के अनुसार इस अवसर पर बटु का क्षौर-संस्कार, शरीर में हल्दी लेपन, मृगछाला तथा कुश की आसनी बगल में दबाकर पुस्तक और काठ की तख्ती लेकर अध्ययन के लिए काशी जाने को उद्यत होना,[3] वेदपाठ,[4]

---

१. कासी में बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा लेले।
है कोई कासी के ठाकुर हमके जनेउवा दिहे।
कासी के ठाकुर विस्वनाथ बाबा उहे उठि बोललें।
हम अही कासी क ठाकुर हमही जनेउवा देबों॥
—ग्राम्य साहित्य, पृ० २४।

२. राजा दसरथ आँगना मूँजि कौसिल्या रानी भल चीरें।
लपकि झपकि चीरें दूनौ हाथे चीरें।
रामचन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन॥
—ग्राम साहित्य, पृ० २४२।

३ देहु न माता मोहि सतुव औ गुड़ गेंडुवा।
जैहों मैं कासी बनारस बेद पढ़ि अइहों॥
—वही (जनेऊ गीत), पृ० २३६।

४. गलिया के गलिया पंडित घूमैं हथवा पोथिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ राम कै जनेऊ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं बरुआ जेंवत होइहैं
पंडित बेद पढ़ें रैं।
आँगन ढोल घमाकै दइव क्षस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ राम कै जनेऊ॥२॥
गलिया कै गलिया नाऊ घूमैं हथवा किसबतिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ राम कै जनेऊ॥३॥

ब्राह्मण भोज, कुल के मान्य (फूफा या बहनोई) के द्वारा जनेऊ अर्पण' मृगछाला एवं पलास दड धारण` आदि क्रिया कलापो का आयोजन होता है किन्तु 'नहछू' में इसका कही उल्लेख नही है। जिस लोकगीत शैली मे इस सस्कार गीत की रचना हुई है, उसमे राम के जनेऊ के भी गीत हैं और उनमे इन सारे कृत्यो का वर्णन बडे ही सरस ढग से किया गया है। एक गीत मे राम जनेऊ के लिए हठ करते हुए भूमि मे लोटते हुए दिखाये गये हैं। महाराज दशरथ उन्हे उठाकर गोद मे बैठाते हैं और सोने का जनेऊ मँगा देने का आश्वासन देकर उन्हे बहलाते हैं।[3] एक दूसरे गीत में आठ वर्ष की अवस्था होने पर राम को जनेऊ देने के लिए महाराज दशरथ वशिष्ठ से प्रार्थना करते-हैं—माडव बनाया जाता है, उसके नीचे राम खडे होते हैं। वे तीक्ष्ण धूप के कारण व्याकुल हो जाते हैं और माता कौशिल्या को वे शीघ्र भिक्षा की तैयारी करने को कहते हैं, शास्त्रीय नियम

बाँसन धोतिया····· ···
गलिया के गलिया बढैया घूमै हथवा लिहे पटुलिया।
कवन बखरिया ·· ·····
बाँसन धोतिया······· ··
गलिया के गलिया कुम्हरवा घूमैं हथवा बरौवा लिहे ।।७।।
कवन बखरिया ·······
बाँसन धोतिया·········

१. गलिया के गलिया फूफा घूमै हंथवा जनेउवा लिहे ।।६।।
कवन बखरिया ········
बाँसन धोतिया ········
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ राम क जनेऊ ।।१०।।

२ पूछै कौसिला देई राजा दसरथ से बात रे।
कसैक होई राजा रामजी के जनेउ रे।
हथवा पलास बड़ा गले मृगछाल रे।
सोने का खड़उआ राम क जनेउ रे।

३. राजा दसरथ अँगना मूँजि सुमित्रा रानी भल चीरैं
लपकि झपकि चीरैं दूनौ हाथे चीरैं।
रामन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ।।
राजा दसरथ झारिनि झूरिन जाँघ बैठाइनि।
देवे बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ।।—वही, पृ० २४२।

से क्षत्रियो का यज्ञोपवीत ग्रीष्म मे होना चाहिए—लोकगीत मे इसका भी निर्वाह किया गया है।

(३) यज्ञोपवीत के गीतो की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमे चित्रित वातावरण आद्योपात गम्भीर, सात्विक और मर्यादाबद्ध रहता है। शृङ्गारिकता की कही झलक तक नही आने पाती। इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए इस अवसर के सारे नेगी नाई, माली, कुम्हार, लोहार पुरुष होते हैं किन्तु इसके विपरीत विवाह के अवसर पर आयोजित 'नहछू' मे शृङ्गारिकता का पर्याप्त पुट रहता है। इसलिए उसमे पुरुष के स्थान पर स्त्री नेगहारिनी की योजना की जाती है। तुलसी के 'नहछू' मे प्राप्त शृङ्गारी वर्णन उसे विवाह सस्कार से घनिष्ठरूपेण सम्बद्ध सिद्ध करते है।

(४) तुलसी ने अपनी अन्य कृतियो मे—यहाँ तक कि रामचरित मानस मे भी, यज्ञोपवीत सस्कार को अपेक्षित महत्त्व नही दिया है। मात्र एक चौपाई मे कुमार होने पर चारो भाइयो को गुरु, पिता तथा माता द्वारा 'जनेऊ' प्रदान करना और उसके पश्चात् गुरु के घर जाकर राम का अल्पकाल में ही सभी विद्याओ मे निष्णात हो जाना बताया गया है।[1] उनकी किसी रचना मे इस अवसर पर आयोजित 'नहछू' का निर्देश नही है। यह वृत्त भी उत्तरी भारत मे प्रचलित 'जनेऊ' सम्बन्धी लोकगीतो के अनुकूल ही है।

(५) तुलसी ने महाराज दशरथ द्वारा चारो भाइयो के नामकरण, चूडाकरण और यज्ञोपवीत सस्कारो का साथ साथ आयोजित होना बताया है।[2] इसके दो कारण थे—एक था सबका प्राय समवयस्क होना और दूसरा था आगे-पीछे करने मे रानियो के बीच मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना। परन्तु जनकपुर से प्राप्त सूचना के अनुसार केवल राम का विवाह करने के लिए उनका बारात सजाकर ले जाना दिखाया गया है।[3] यह दूसरी बात है कि राम का

---

१ भये कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृह पढ़न गये रघुराई। अलप काल विद्या सब आई॥
—रामचरित मानस, बाल० २०२।३।४।

२ जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध, उपवीत बियाहा। सग सग सब भये उछाहा॥
—वही, अयो० १०। ५, ६।

३. महाभारत के रामोपाख्यान मे केवल राम के विवाह का उल्लेख है, उसमे धनुर्भङ्ग तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह की कोई चर्चा नहीं है। सम्भ-

विवाह हो जाने पर बाद मे शेष तीनो भाइयो की भी उसी घर की तीन कन्याओ के साथ भाँवरें पड गई। इस विचार से 'राम विवाह' के साथ ही 'रामलला-नहछू' मे सम्बन्धित नहछू विषयक लोकाचार का पृथक् रूप से वर्णन सगत था किन्तु उसे एक साथ आयोजित चारो भाइयो के यज्ञोपवीत के साथ जोड देना अनुचित ठहराया जाता।

इन असंगतियो के होते हुए 'नहछू' को यज्ञोपवीत के अवसर पर अनुष्ठित मानना तथ्यो की ओर से आँख मूँद लेना है।

(ख) नहछू विवाह के समय का है और मिथिला मे हुआ—इस मत के पुरस्कर्ता हैं सम्पूर्ण तुलसी साहित्य के सिद्धांततिलककार अयोध्या के महात्मा श्रीकान्त शरण।

राम विवाह की ऐतिहासिक परिस्थितियो को देखते हुए यह स्वीकार करने में कोई अडचन नहीं दिखाई देती कि राम का नहछू सस्कार महाराज दशरथ के अयोध्या से बारात लेकर मिथिला पहुँचने के बाद और विवाह के पूर्व मिथिला में ही हुआ होगा। परन्तु तुलसी ने 'मायन' 'नहछू' आदि कृत्यो का अयोध्या मे होना और उनम राम-लक्ष्मण की उपस्थिति दिखा कर इसकी यथार्थता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। श्रीकान्तशरण जी ने अपनी धारणा की पुष्टि रामचरित मानस में निर्दिष्ट कल्पभेद सिद्धान्त के अनुसार रामचरित की विभिन्नता का साक्ष्य प्रस्तुत करके की है और इसी नियम के अनुसार जनकपुर मे कृत्रिम अयोध्या निर्मित कर 'नहछू' का उत्सव करने की बात लिखी है।[1]

वत यह वाल्मीकि रामायण के पूर्ववर्ती लोक परम्परा मे प्रचलित किसी आख्यान पर आधारित है। बाद की रामकथा मे वाल्मीकि रामायण के अनुसार उक्त दोनों प्रसङ्गों का समावेश हो गया किन्तु लोकमानस उसी प्राचीन वृत्त को सँजोए रहा जो लोकगीतों मे अब तक सुरक्षित हैं। 'रामलला नहछू' मे इसकी छाया उसी माध्यम से आई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१ 'श्रीरामजी के अवतारों एव उनके चरितों मे ऐसे भेद कल्पभेद के माने जाते हैं। जैसे कि गोस्वामी जी ने ही श्रीरामचरित मानस मे परशुराम पराजय प्रसग, धनुषभग के साथ उसी मडप मे लिखा है और फिर उसी चरित को अपने गीतावली रामायण मे उन्होंने ही वाल्मीकीय रामायण की रीति से बारात लौटने के समय मार्ग मे लिखा है, यथा—'जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अतिभयहारी (गी० ३. ३८)। यह भेद कल्पभेद का है। किसी

श्रीकान्तशरण जी की यह उपपत्ति एक दूरारूढ़ कल्पनामात्र प्रतीत होती है। परशुराम प्रसग के जो दो भिन्न उदाहरण उन्होंने दिय हैं, उनके उत्स राम-कथाश्रित किसी न किसी प्राचीन ग्रन्थ मे मिल जाते हैं। इसीलिए तुलसी की कृतियो में लक्षित तत्सम्बन्धी भेद निराधार नही कहा जा सकता। किन्तु 'कृत्रिम' अयोध्या वाली उनकी कल्पना वाल्मीकिरामायण की परम्परा मे निर्मित परवर्ती रामायणो, सस्कृत के ललित रामकाव्यो, जैन एवं बौद्ध रामचरितो—आदि स्रोतो मे से किसी के द्वारा समर्थित नही है।

इसकी अपेक्षा मिथिलावासियो की 'लहछूगीत' मे अभिव्यक्त वह धारणा कही अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय कही जा सकती है, जिसमें कृत्रिम अयोध्या का झमेला न खडा कर खुले रूप मे राम का नहछू जनकपुर मे होना स्वीकारा गया है और नेगिहारिनो के निछावर माँगने पर राम के द्वारा उन्ह अयोध्या लौटने पर मनचाहा नेग देने का आश्वासन दिलाया गया है।[1]

(ग) नहछू विवाह के समय का है किन्तु हुआ है अयोध्या मे ही। तुलसी ने प्रस्तुत रचना मे इन दोनो बातो का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। इन पक्तियो के लेखक का मत है कि रचयिता के एतद्विषयक निर्देशो को प्रकृत रूप मे स्वीकार करने मे कोई बाधा नही उपस्थित होती। वस्तुत होनी भी नही चाहिए क्योकि रचना की निर्माण-प्रक्रिया, समय, स्थल तथा प्रयोजन के सम्बन्ध मे कृतिकार का ही साक्ष्य सर्वाधिक विश्वसनीय एव अन्तिम माना जाता है। जब तक इस

कल्प में इस रीति से लीला हुई है। यथा—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कल्पभेद हरिचरित सोहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये।
करिय न ससय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी। ?

मानस, बा० ३३/६,७,८।

इस नियम के अनुसार किसी कल्प मे श्रीरामजी के 'मायन' एव 'नहछू' आदि कृत्यों के उत्सवानद की लालसा से बारात के साथ श्री अयोध्या जी के नेगी एव मातागण तथा निछावर लेने के लिए याचक आदि गये थे। उस कल्प में श्री जनकपुर मे ही जनवास के पास कृत्रिम श्री अयोध्या नगर एव श्रीदशरथगह तथा मांडव आदि बने थे। वहीं पर उक्त 'मायन' और 'नहछू' के कृत्य हुए थे।'

—रामलला नहछू (सिद्धात तिलक), उपोद्घात, पृ० १,२।

१ मैथिली लोकगीत (डा० अणिमा सिंह), पृ० ४४८।

विषय मे जो मतभेद प्रदर्शित किये गये हैं, उनका मूल कारण आलोचको अथवा टीकाकारो का शुद्ध भ्रम रहा है, 'रामलला नहछू' और उसके रचयिता की शब्दावली नही। आलोचको को यह ध्यान ही नहीं रहा कि वे जिस रचना की समीक्षा करने जा रहे हैं, वह लोकगीत शैली की है, अतः उसकी प्रकृति एव परम्पराओ को समझ कर तदनुकूल सिद्धान्तो के द्वारा उसका मूल्याकन करें। ऐसा न करके उसे इतिहास एव साहित्यशास्त्र के नियमो की कसौटी पर कसा गया। इस विवेकहीन पद्धति का अनुसरण करने से कुछ गण्यमान्य विद्वानो को तुलसी ऐसे समर्थ मर्यादानिष्ठ एव जागरूक कवि की लेखनी से नि सृत पक्तियो मे स्थान-स्थान पर शिथिलता, अनैतिहासिकता, अश्लीलता, आदि दोषो की भरमार दिखाई पडी।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की प्रामाणिक रचनाओ और उनके रचना-क्रम पर विचार करते हुए 'रामलला नहछू' की विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। उनके पहले और बाद मे भी अब तक उतने विस्तार से उक्त ग्रथ पर विषय तथा शैली की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है।

गुप्तजी ने 'नहछू' को विवाह के अवसर पर अयोध्या मे अनुष्ठित तो स्वीकार किया है किन्तु कुछ आपत्तियो के साथ। उनका सबसे सबसे बडा एतराज इस बात पर है कि जब विवाह के सारे कृत्य मिथिला मे हुए और उसके पूर्व राम अयोध्या आये ही नही तो 'नहछू' का अयोध्या मे होना कैसे लिख दिया गया? इसे वे तुलसी की पहली और अक्षम्य ऐतिहासिक भूल मानते हैं। उनके इस मत का समर्थन कुछ अन्य विद्वानो ने भी किया है। 'नहछू' के अनुष्ठान स्थल के सम्बन्ध मे व्याप्त सारी भ्रातियो एव आपत्तियो की जड यही ग्रन्थि है। अतः इसका विश्लेषण एव अन्वीक्षण आवश्यक है।

लोकगीत शैली मे निर्मित 'रामलला नहछू' मे ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव घोषित करने के पूर्व सुधी आलोचकों को यह देखना चाहिए था कि नागर साहित्य की भाँति लोकगीतो मे घटनाओं के कालक्रम तथा कार्यकारण-सम्बन्ध का निर्वाह नही पाया जाता। लोककाव्य का उद्गम स्थल समष्टि मानस है। समाज का मन एक स्वर मे बँध कर ही गीत का रूप धारण करता है—इस प्रक्रिया मे विशेष का परिहार होकर सामान्य ही अवशिष्ट रह जाता है[1]—भावों का साधारणीकरण तभी सम्भव है। लोककवि साधारणीकृत भाव को

---

१. नागमती के विरह वर्णन मे जायसी ने इस लोकव्यापी भावना का सत्कार

स्वर एवं लय प्रदान करता है—इसीलिए जन-मन के अपने भाव और उनमें संवलित गीत सबके अपने भाव एवं गीत बन जाते हैं। लोकगीतों में वर्णित 'राम' और आज के देहाती 'रामदीन' के नहछू में तत्वतः कोई अन्तर नहीं होना चाहिए वह रहता भी नहीं है। राम विवाह के समय ससुराल में ही थे, लोककवि के लिए उनकी यह विशेष परिस्थिति उल्लेखनीय है, वह तो सामान्यतया समाज में विवाह के पूर्व घर पर आयोजित 'नहछू' का ही वर्णन करेगा—क्योंकि लोकाचार सम्मत होने से वही सर्वग्राह्य और सर्वोपयोगी हो सकेगा 'नहछू' के मांगलिक अवसर पर वही आदर्श गीत की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा।

लोकगीतों में रामविवाह के पूर्व अयोध्या में होने वाले इस 'नहछू' की एक बद्धमूल परम्परा थी। एक गीत में अवसरोचित सभी लोकाचारों—नहछू के पूर्व वर का स्नान करना, गोत की स्त्रियों को बुलावा भेजना, नहछू के अवसर पर समागत *स्त्रियों द्वारा न्योछावर, नाइन का नेग के लिए ठनगन करना,* कौशल्या का उनको आश्वासन देना आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है[1]—

के यह पोखरा खनावा घाट बधावा रे।
राम केहकर भरहिं कहार राम नहवावैं रे॥
राजा दसरथ पोखरा खनावा औ घाट बधावा रे।
कौसिला के भरहिं कहार राम नहवावैं रे॥
घर घर फिरहिं नउनिया गोतिनी बटोरै रे।
आज राम जिव के नेहछू सबै कोइ आवैं रे॥

करते हुए चित्तौर की महारानी के मुख से सामान्य ग्रामीण वियोगिनी स्त्रियों के उद्‌गार व्यक्त कराये हैं—

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भइ मो कहँ यह छाजनि गाढ़ी॥
साँठि नाहिं लाग बात को पूँछा। बिनु जिय भएहु मूँज तनु छूँछा॥
बरसहिं नैन चुवैं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाहाँ॥
—पद्मावत, ३०/३५६–१,३,६।

१. डा० माता प्रसाद गुप्त की सं० १६६५ वाली नहछू की प्रति में 'नहछू' विषयक प्रचलित लोकगीत की बहुत सी पंक्तियाँ शब्दशः पाई जाती हैं। इससे भी इस मान्यता को बल मिलता है कि तुलसी को 'नहछू' रचना की प्रेरणा लोकगीतों से ही प्राप्त हुई थी।

के दीन चुटकी मुँदरिया के दीना रूप रे।
के दीना रतन पदारथ भरिगा है सूप रे॥
कौसिला दिहिन चुटकी मुँदरिया सुमित्रा दिहिन रूप रे।
केकई दिहिन रतन पदारथ भरिगा है सूप रे॥
मड़वै झगरै नउनिया निछावरि थोर रे।
आजु राम जिव के नेहछू मे लेबो ढेर रे॥
का तू झगरौ नउनिया नेवछावरि थोर रे।
राम बियहि घर ऐहैं मैं देबौं करोरि रे॥[1]

डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त को 'रामलला नहछू' की स॰ १६६५ की जो प्रति मिली है, वह कवि के जीवन काल की है। उसमे उपयुक्त लोकगीत की बारह पक्तियाँ ज्यो की त्यो मिल जाती हैं।

मिथिला मे यह 'नहछूगीत' तुलसी के ही नाम से किंचित् परिवर्तन के साथ प्रचलित है। एक विशेष बात यह है कि उसमे गुप्तजी वाली प्रति की कुछ और पक्तियाँ भी आ गई हैं। भेद केवल इतना है कि जहाँ हस्तलेख की भाषा भोजपुरी प्रभावित है वहाँ उक्त गीत मैथिली बोली म है।[2]

---

१ 'ग्राम साहित्य' में प॰ रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सग्रहीत 'नहछू' गीत मे निम्नाकित पक्तियाँ और हैं। उनमे तीसरी और अतिम पक्ति मे 'थोर' के के स्थान पर 'घोड' है जो डा॰ गुप्त की प्रति मे 'थोर' हो गया है—
पातरि पातरि अगुली तौं नाउनि गोरी।
करत राम जीव के नेहछू तौ घूघुट खोली॥
पाँच पाट कं जाजिम झारि बिछाइय।
जेकरे जहाँ मन होय तहाँ ते बैठय॥
—ग्राम साहित्य, पृ॰ २५५।

२ चलहु सबहि मिलि देखन शोभा राम क हे।
आजु सुदिन दिन नहछू राम क हे॥
जुथं जुथ जब जायथि मगल गावथि हे।
राम घुमावन हार धाए दिसि धावथि हे॥
नाओनी ऐली गुनमती बेगि बोलाबिथ हे।
सीताराम घुमावहु चौक बैसावहु हे॥
सोना क नहरनी महा भली नाओनि गोरिथ हे।
प्रभु जी क बदन निहारि बिहँसि मुख फेरं हे॥

स्पष्ट है कि तुलसी ने अयोध्या मे अनुष्ठित राम के इस नहछू वर्णन की लोकव्यापी परपरा का सत्कार रामविवाह की विशेष परिस्थितियो की उपेक्षा करके किया।

राम विवाह सम्बन्धी लोकगीतो मे ऐतिहासिक तथ्यो की अवहेलना का क्रम यही समाप्त नही होता। अयोध्या मे 'नहछू' का यह कृत्य सम्पन्न करने के बाद महाराज दशरथ जनकपुर को बारात ले जाने की तैयारी करते हैं। हाथी, घोडे सजाये जाते हैं, दूल्हा राम के घोडे की सजावट विशेष प्रकार से की जाती है। बारात के प्रस्थान के समय माता कौशल्या राम की आरती उतारती हैं, आनदातिरेक से उनके नेत्रो से आँसू की बूँदे ढुलकने लगती हैं—

कोरे कलस पर दियना बरत है कोरी परैया साठी धान रे।
वैसे रामजी के माथ झलक्कै बाँधे मौर औ पाग रे॥
हाथी साजिन घोडा साजिन साजिन सकलो बरात रे।
राम के घोडवा सुघर के साजिन मोतियन रची है लगाम रे॥
साजि बरात चले राजा दसरथ चदन बिरौवा तर ठाढ़ रे।
निसरि न आवो रानी कौसिल्या राम के आरती उतारि रे।
धीरे धीरे मैया आरती उतारैं दूनो नयन ढुरै आँसु रे॥

चारो पुत्रो सहित बारात लेकर महाराज दशरथ यथासमय जनकपुर पहुँचते हैं। इसके बाद धनुप यज्ञ की तैयारी होती है। राम विश्वामित्र के आदेश से धनुप तोडते हैं, तब विवाह सम्पन्न होता है।

इस प्रकार रामविवाह का सम्पूर्ण घटनाक्रम वैसा ही है जैसा समाज मे प्रत्येक परिवार मे पुत्र-विवाह के समय आज तक होता चला आ रहा है।

धनि तोरे भागि नउनिया चरन छुवौ राम क हे।
भरि मुख करत किलोल सिया श्री राम क हे॥
रामजी तोहे दसरथ सुत लछिमन आन क हे।
नउआ कहै नउनिया यहि विधि तोरा गे।
रामजी क हैत बियाह चढ़न लेब घोड़ा गे॥
कल जोरि कहै नओनिया किरपा हमरा दीय हे।
कौसिल्या उर हार नाथ मोहि दीय हे॥
हार त अवधपुर पुतम कतय पाबियँ हे।
तुलसी कहै मुख फेरियो चलब त देब हे॥

—मैथिली लोकगीत : पृ० ४४८।

लोकमानस ने उक्त 'नहछू' प्रसग के अतिरिक्त राम के चरित मे इतिहास, पुराण या नागर काव्य मे स्वीकृत क्रम की अवहेलना अन्य अनेक स्थलो पर भी की है। रामचरित विषयक लोकगीत मे निरूपित निम्नाकित तथ्यो से स्थिति और स्पष्ट हो जायगी—

(१) प्रसग सीता वनवास का है। वाल्मीकि आश्रम मे पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वे नाई के हाथ अयोध्या को तीन रोचन भेजवाती हैं—पहला महाराज दसरथ, दूसरा महारानी कौशिल्या और तीसरा लक्ष्मण के लिए। इसके साथ ही वे उसे यह भी ताकीद कर देती हैं कि राम के कान मे इसकी भनक तक न पडे—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कौसिला माई हो।
तिसर रोचन लछिमन देवरा, पपियवा न जानै अधरमी न जानै हो ॥

कौन नहीं जानता कि दशरथ की मृत्यु रामवनगमन के समय ही—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार, सीतापरित्याग वाली घटना से बहुत पहले हो चुकी थी, किन्तु लोककवि न शाही मुर्वरिख होता है न इतिहास का प्रोफेसर। उसके सामने तो माता, पिता, सास, ससुर से सम्पन्न एक भरे-पूरे परिवार का चित्र है—एक दशरथ मर गये तो क्या हुआ? ग्राम वधुओ के दशरथ लाखो की सख्या मे जीवित हैं, लोककवि की सीता उन्ही के पास रोचन भेजकर वधू का कर्त्तव्य पालन करते हुए कृतार्थ होती है क्योकि पौत्रजन्म का सम्वाद पाकर जितने प्रसन्न सास-ससुर होंगे, उतना और कोई नही। पुत्रवती वधू के लिए अपने सास-ससुर की प्रसन्नता सर्वाधिक मूल्यवान है। लोककवि पति के द्वारा अवहेलिता सीता को इस सौभाग्य से वचित रखना सहन नही कर सकता।

(२) राम के उत्तरकालीन चरित से ही सम्बद्ध एक दूसरे गीत मे राम की परधाम यात्रा के पूर्व सीता ने महाराज दशरथ से पति के दुर्व्यवहार की शिकायत की। ससुर ने सभा मे बैठे हुए राम से इसका कारण पुछवाया, राम को बात लग गई। यह सामान्य घटना ही उनके लोकातरण का कारण बनी—

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के गुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हनोरौं ॥
जब हम परली राम घर राजा दशरथ घर।
जरि बरि भइउँ है कोइलिया त जरि के भसम भइउँ ॥
सभवा बैठे है रामचन्द्र पुछाइन राजा दसरथ।
पुता कवन मिलल दुख दिहेउ सखिन सग रोवै ॥

हँसि के धनुष उठाइन बिहँसि के पैठिन ।
सीता अव सुख सोवऊ महलिया गुपुत होइ जावै ॥[1]

सास-ससुर से भरे-पूरे संयुक्त परिवार मे पति के अत्याचारों से त्राण ससुर ही दिला सकता है। लोकगीत की सीता ने पारिवारिक मर्यादा की रक्षा के लिए दिवंगत दशरथ को पुनरुज्जीवित कर लिया। कवि, चाहे वह शिष्ट भाषा का हो या भदेस भाषा का, स्वयंभू होता है। वह इतिहास का निर्माता होता है, अनुगामी नही—लोकगीतो के ये दृष्टान्त इसके प्रमाण हैं।

इन तथ्यो के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी द्वारा वर्णित 'नहछू' विवाह के अवसर का है और यह संस्कार अयोध्या मे निष्पादित हुआ।

आक्षेप और समाधान :

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'नहछू' की एक और ऐतिहासिक भूल बताई है और वह है कौशिल्या की 'जेठि' अथवा महाराज दशरथ की ज्येष्ठा भ्रातृवधू का उल्लेख—

कौसिल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो ॥[2]

आपत्ति का कारण है रामकथा के किसी स्रोत में दशरथ के बडे भाई के उल्लेख का अभाव। फिर जेठानी के अस्तित्व का आधार ही क्या ?

कहना न होगा कि इस प्रसग में कवि के अभिप्रेत अर्थ के ग्रहण में आलोचक की असफलता का कारण परम्परागत लोकरीतिओ की अनभिज्ञता है। 'जेठि' या 'जेठानी' गाँवो मे आज भी केवल सगे ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री नही कही जाती बल्कि पूरे कुल या गोत्र मे, दूर के नाते से भी, जो जेठे भाई लगते हैं उनकी स्त्री की सज्ञा जेठानी होती है। मुडन विवाहादि मागलिक अवसरो पर उन्हे यथोचित प्रतिष्ठा दी जाती है और उनके द्वारा लोकाचार सम्पन्न कराये जाते है—यहाँ तक कि लडके के विवाह मे यदि अपने वश मे उसका कोई जेठा भाई नही होता तो चुनरी छोडने के लिए 'भसुर' का कार्य आयु मे बडे फुफेरे और ममेरे भाई करते हैं। इस अर्थ मे रघुवशियो मे दशरथ से आयु मे बडे भाइयो की स्त्रियाँ कौशल्या की जेठानी थी। उन्हीं के आदेश से ये चौक पर पुत्र का

---

१. ग्राम साहित्य, पृ० २०५।
२. रामलला नहछू, ६।

नहछू कराने के लिए बैठी थीं। रामचरित मानस मे केकई-कोप के प्रसग की निम्नांकित पंक्ति मे प्रयुक्त 'जठेरी' शब्द से यह स्पष्ट विदित होता है कि केकई को समझाने के लिए एकत्रित स्त्रियों मे उनकी जेठानियाँ भी थी—

बिप्रवधू, कुलमान्य जठेरी। जे प्रियपरम केकई केरी॥

इसी प्रकार डा० गुप्त ने 'नहछू' मे दो स्थलो पर जो प्रबन्ध दोष दिखाये हैं, वे भी वस्तुतः प्रबन्ध दोष न होकर लोकाचार के सूक्ष्म तत्वो का आशय हृदयगम करने मे विद्वान् समीक्षक की अक्षमताजन्य मिथ्या प्रतीति मात्र हैं।

यह प्रसग नाइनि की 'नहछू' के अवसर पर उपस्थिति से सम्बन्धित है। डा० गुप्त का कहना है कि जब नहछू के आरम्भ मे ही नाइनि मौजूद बताई गई है और उसे गारी गाते दिखाया है[1] तो थोडी ही देर के बाद उसके बुलाये जाने का उल्लेख करने का क्या औचित्य है? गुप्तजी की धारणा है कि उक्त प्रसग से यह पता चलता है कि कवि को यह स्मरण ही नही रह गया कि वह पीछे राज-प्रासाद में नाइन की उपस्थिति दिखा चुका है, इसलिए उसने लोकाचार सम्पन्न करने के लिए आवश्यकतानुसार नाइन के पुनः बुलाने की बात लिख दी।

किन्तु पूरे प्रसग को दृष्टि मे रखकर प्रवृत्त पक्तियो की समीक्षा करने पर कवि द्वारा निर्धारित घटना क्रम की योजना सर्वथा निर्दोष ठहराती है। इसमे उस स्थिति का चित्रण है जब 'नहछू' मे सम्मिलित होने के लिए अन्य नेगहारिनों के साथ नाइनि घर से आई है और आनन्द विभोर होकर अन्य मागलिक गीतो के साथ रानियो को गाली गाती हैं। इसके बाद नेहछू कराने के लिए कौशिल्या राम को गोदी मे लेकर बैठाती हैं। तब अपनी विशिष्ट भूमिका के लिए उसकी बुलाहट होती है क्योंकि उस उत्सव का प्रधान कृत्य, नाखून काटना, उसी के हाथो सम्पन्न होना है। प्रश्न यह उठता है कि अभी थोडी ही देर पहले जो गा बजा रही थी वह क्षण भर मे ही कहाँ लुप्त हो गई? जिससे उसकी खोज करानी पडी। निम्नांकित पक्तियाँ इसका रहस्य खोल देती हैं—

नाइनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोन तौ बिहँसति आई हो॥
कनक चुनिन सो लसति नहरनी लिहे कर हो।
आनन्द हिय न समाइ देखि रामहि वर हो॥

---

१. नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

—रामलला नहछू, ८।

कानन कनक तरीवन बेसरि सोहइ हो।
गजमुकता कर हार कठ मनि मोहइ हो॥
कर ककन कटि किंकिनि नूपुर बाजइ हो।
रानि कै दीन्हीं सारी अधिक विराजई हो॥[1]

बात यह थी कि नाइनि आरम्भ मे घर से अपनी स्थिति के अनुकूल अत्यन्त सामान्य आभूषण एव कपडे पहन कर आई थी किन्तु सामन्तीय परपरा के अनुसार युवराज राम के नहछू सस्कार के उपलक्ष्य मे उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिरावन के रूप मे दिये गये थे जिन्हे धारण करके ही उसे नहछू कराना था। अतः भीड-भाड से हटकर वह कपडे बदलने महल के किसी एकान्त कक्ष मे चली गई। इसमे स्वभावतः कुछ देरी लगी होगी—विशेष रूप से गहनों के पहनने मे। तब तक कौशिल्या जी पुत्र को गोद मे लेकर चौक पर आ बैठी—इसलिए उसे शीघ्र बुलाने के लिए लोग व्यग्र हो गये। हुआ सब कुछ स्वाभाविक रूप से ही, केवल समझने मे फेर था। बुलाने के पीछे दूसरा सशक्त तर्क यह है कि ऐसे विशिष्ट अवसरो पर नेगहारो, नेगहारिनो की विशेष रूप से मनुहार की जाती है। वे उस समय साधारण प्रजागण नही होते, विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। बुलाये जाने पर वे नेग के लिए नखरे भी करते हैं, मनचाही चीजें माँगते हैं। उन्हे बार-बार मनाना और बुलाना पडता है।

एक ऐसी ही 'प्रबन्ध त्रुटि' 'नहछू' के गारी प्रसंग मे बताई गई है। सम्बद्ध पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

काहे राम जिउ सावर लछिमन गोर हो।
कीधौं रानि कौसिलहि परिगा भोर हो॥
राम अहैं दसरथ के लछिमन आन क हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्री रघुनाथ क हो॥

डा० गुप्त का कहना है कि उपर्युक्त छद की प्रथम दो पक्तियो मे प्राप्त परिहास तर्कशृखला सगत है किन्तु अतिम दो पक्तियो मे अभिव्यक्त परिहास अतर्विरोध के कारण भ्रान्तिपूर्ण हैं। पहले यह कहकर कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए भी राम और लक्ष्मण मे वर्णभेद का कारण कौशल्या का अपने पति दशरथ के भ्रम मे पर पुरुष से गर्भधारण करना है अर्थात् राम औरस पुत्र हैं, फिर तत्काल ही यह घोषित करना कि वस्तुत राम ही दशरथ की औरस सन्तान है

१. रामलला नहछू १०, ११।
२. वही, १२।

और लक्ष्मण अनौरस, रचयिता की अव्यवस्थित मानसिक स्थिति का परिचायक है। मेरी सम्मति मे यह गलतफहमी भी लोकगीतो की प्रवृत्ति की जानकारी न होने मे ही हुई है। सदर्भित चार पक्तियो की निम्नाकित व्याख्या मे रचयिता का मन्तव्य स्पष्ट हो जायगा—

नहछू के अवसर पर एकत्र स्त्रियाँ, जिनमे नाइनि, बारिनि, आदि नेगहारिनें भी हैं, गाली गा रही हैं। इन गालियो की मुख्य लक्ष्य हैं महारानी कौशल्या, क्योकि वे ही गोद मे पुत्र को बैठाकर नेहछू करा रही हैं। लगे हाथो वे सुमित्रा और कैकेयी की भी खबर ले लेती हैं। एक स्त्री शका करती है कि एक ही पिता की सतान कही जाने पर भी क्यो राम साँवले हैं और लक्ष्मण गोरे। सम्भवत· इसका कारण कौशल्या का किसी साँवले रग के पर पुरुष से जार सम्बन्ध है। अन्यथा गोरे दसरथ और गोरी कौशल्या का पुत्र भी गोरा ही होना चाहिए था। इस प्रकार कौशल्या को परिहास का लक्ष्य बनाने के बाद स्त्री वर्ग सुमित्रा और कैकेई की ओर झुकता है, उनमे से एक बढाती है, नही, बात ऐसी नही है, वस्तुत राम ही दशरथ के औरस पुत्र हैं लक्ष्मण जारज हैं—इस प्रकार सुमित्रा की भी पूजा हो गई। बच रहीं कैकेई, वृद्ध पति की नवयुवती पत्नी होने से उनके प्रति किया गया इस प्रकार का परिहास, परिहास न रहकर वाग्दविकता का भ्रम उत्पन्न कर देता, दूसरे कैकेयी का स्वभाव भी उग्र था। इन कारणा से स्त्रियो ने भरत को भी राम की ही भाँति दशरथ का औरस पुत्र कहा, इनके साथ शत्रुघ्न का नाम इसलिए जोड दिया गया कि सुमित्रा को प्रथम पुत्र की जन्मदात्री के रूप मे पहले ही कलक का सेहरा पहनाया जा चुका था—उनके दूसरे लडके के भी सदिग्ध पितृत्व का उल्लेख परिहास को अवाछनीय सीमा तक पहुँचा देता, इसलिए राम का भाई कहकर उनकी औरसता प्रमाणित कर दी गई।

इस सदर्भ मे एक बात ध्यान देने की यह है कि अवध प्रदेश मे ही नही मिथिला मडल मे भी नहछू के जो गीत गाये जाते हैं, उनमे 'रामलला नहछू' की यह गारी इन्ही शब्दो म आज भी विद्यमान है। अन्तर केवल इतना है कि महाराज जनक के महल में और मिथिला की स्त्रियो के द्वारा गाई जाने से उसमे परपुरुष का आशय स्पष्ट करते हुए कौशल्या को उनके समधी जनक से लगाकर गाली दी गई है—

राम जी तो हैं दसरथ सुत लछुमन आन क हो।
रानी कौसिला गेल भोर जनक जी के आँगन हो॥[1]

---

१ मैथिली लोक गीत · पृ० ४४८।

अमर्यादित शृंगार चित्रण :

'रामलला नहछू' की सर्वाधिक छीछालेदर उसके शृगारी चित्रणो को लेकर की गई है। उन्हें ठेठ अथवा उत्तान शृगार की सज्ञा देकर तुलसी की भद्दी एव अश्लील रुचि का द्योतक बताया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त की धारणा है कि महाराज दशरथ का अहिरिन के 'उनरत जोवन'[1] पर लट्टू होना, विशालाक्षी नाउनि का नाखून रँगते समय कटाक्षो से राम को देखना,[2] छबीली तमोलिन और पतली कमरवाली रमीली बारिनि का मनोहर चेष्टाओ से लोगो को आकृष्ट करना,[3] पैर धोते हुए राम का कटाक्षो मे नाइनि को देखना,[4] आदि कामोत्तेजक कार्यव्यापारो के वर्णन म दशरथ तथा उनके पार्श्ववर्ती अन्य रसिको के ब्याज से कवि स्वयं 'कल्पित आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है।' इस विचार सरणि के समर्थक कुछ अन्य विद्वानो ने चार कदम आगे बढकर 'नहछू' को 'काम की हीन ग्रन्थि से शोभाकुल तुलसी का चचल काव्य' और 'कामशास्त्र'[6] तक कह डाला है।

इस आक्षेप के औचित्य पर विचार करते हुए दो बातो पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) क्या शृगार चित्रण की दृष्टि से 'नहछू' मे अकित दशरथ और राम के चारित्रिक आदर्श मे तुलसी की अन्य कृतियो की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अतर पाया जाता है ?

---

१. अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो ॥—रामलला नहछू, ५।

२. अति बडभाग नउनियाँ छुए नख हाथ सो हो।
नैनन्ह करति गुमान तो श्री रघुनाथ सो हो।
उपर्युक्त छंद की प्रथम पक्ति मे 'छुए' पाठ न होकर 'छुहे' होना चाहिए जिसका अर्थ होगा 'रगा', नहछू के अवसर पर नाखून काटने के बाद नाउनि (या नाई) उन्हें लाल रग से रँगता है।

३ कटि के छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्र बदनि मृगलोचनि सब सुख खानिहि हो ॥—वही, ८।

४. अतिसय पुहुपक माल राम उर सोहइ हो।
तिरछी चितवनि आनन्द मुनि मुख जोहइ हो ॥—वही, १४।

५. तुलसीदास, पृ० २३२।

६ परिशोध, अक ॥, जनवरी १९७०, पृ० २७-३३।

(२) क्या 'नहछू' का शृगार चित्रण लोकगीत परम्परा मे नहछू या विवाह गीतो की अपेक्षा अधिक शृगारी है ?

जहाँ तक प्रथम का सम्बन्ध है 'नहछू' के दशरथ और राम वही हैं, जो रामचरित मानस तथा गीतावली के। 'मानस' के दशरथ परिणितवय की पत्नी कैकेयी के प्रेमपाश मे बुरी तरह आबद्ध हैं। सपत्नी डाह से दग्ध होती हुई कुपिता कैकेई को मनाने के लिए उन्होने जिस शब्दावली मे उसे सम्बोधित किया है वह उनकी घोर रसिकता की व्यजक है—

> वार वार कह राउ, सुमुखि, सुलोचनि, पिकवयनि ॥
> कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥[1]
> × × ×
> जानसि मोर सुभाव बरोरू। मन तव आनन चद चकोरू ॥[2]

सुन्दर जाँघों की ओर सकेत दशरथ की कामुकता का सबसे बडा प्रमाण है। यह आसक्ति उन्हे अविवेक की सीमा तक पहुँचा देती है—

> अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा[3]
> कहु केहि रकहि करउ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकारहुँ देसू ॥

वाल्मीकि रामायण मे तो प्रकट रूप मे उन्हीं के आत्मज राम ने उन्ह कैकयी के प्रेमपाश मे बद्ध कामी घोषित किया है।[4]

इसी प्रकार राम का शील-सकोच और मर्यादाबद्ध आचार-व्यवहार 'नहछू' के रगीन वातावरण मे भी सात्विक आभा से परिपूर्ण है। समागत स्त्रियो द्वारा गाई जाने वाली गाली का स्वय को लक्ष्य होते अनुभव कर व माँ की ओर देखकर सकुचित हो जाते हैं कि माँ के सामने मुझे ये ऐसी गदी गालियाँ बक रही हैं और वे न जाने क्यो इससे क्रुद्ध होने के बजाय प्रसन्न हो रही हैं।

---

१ रामचरित मानस, अयो० २५।
२. वही, अयो० २५-४।
३. वही, अयो० २५-१,२।
४. अनाथश्च हि वृद्धश्च मयाचैव विनाकृत ।
किं करिष्यति कामात्मा कैकेय्या वशमागत ॥
इद व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम्।
काम एवार्थ धर्माभ्यां गरीयानिति मे मति ॥
—वा० रा०, अयो० ५३/८,६।

गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ॥
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥'[1]
× × ×
दूलह कै महतारि देखि मन हरपइ हो ।[2]

इतना ही नही आराध्य के परात्पर ब्रह्मत्व मे अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा मे जैसी दृढ आस्था रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहछू मे उससे तिलभर भी कम नही दिखाई देती—

जो पगु नाउनि धोवई राम धोवावइ हो ।
सो पग धूरि सिद्ध मुनि दरस न पावईं हो ॥[3]

इसके पश्चात् हम लोकगीतो मे अभिव्यक्त शृंगार भावना मे नहछू के शृंगारी वर्णनो की तुलना करके यह देखेंगे कि इस दिशा में अपने उत्स से 'नहछू' कहाँ तक प्रभावित है।

'नहछू' के अनुष्ठान स्थल एव अवसर की मीमांसा करते हुए हम यह पहले दिखा चुके हैं कि किस प्रकार उसकी गारी सम्बन्धी पंक्तियाँ अक्षरशः लोकगीतो मे मिल जाती हैं। तुलसी ने इन गीतो से तो प्रेरणा ली ही उससे कही अधिक प्रेरणा उन्होने ऐसे अवसरो पर सामाजिक जीवन मे सर्वत्र दिखाई देने वाली हास-परिहास सम्बन्धी छूट से प्राप्त की। लड़के के विवाह के अवसर पर रसिकता मन्नामक बन जाती है, मर्यादा की लगाम ढीली हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वर्ग तो उठाता ही है, वानप्रस्थ और सन्यास की अर्हता के दावेदार दादा, बाबा भी मधुर सम्बन्ध के रिश्तेदारो, नेगहारिनो तथा कन्यापक्ष के लोगो से हँसी-मसखरी का भरपूर आनन्द लेते हैं। इस ऋतु का सर्वस्वीकृत न्याय होता है 'यहि पाखे पतिव्रत ताखे धरो' और 'फागुन भरि बाबा देवर लागैं' जैसी लोक प्रचलित उक्तियाँ ही ऐसे अवसरो पर लोकप्रवृत्ति की सचालिका होती हैं। नहछू मे महाराज दशरथ की अतिरसिकता के पीछे उनकी स्वभावगत शृंगारिकता के अतिरिक्त वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा से सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इस पृष्ठभूमि मे नहछू के शृंगारी वर्णनो की समीक्षा करने पर सब कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उसमे

---

१. रामलला नहछू, १८ ।
२. वही, १६ ।
३. वही, १४ ।

मर्यादा विरोध दिखाई पडेगा न निर्बन्ध अनग लीला।

इसी प्रकार 'नहछू' मे शैलीगत शैथिल्य के जो उदाहरण डा० मातप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतो की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना से अभिज्ञ भावक को मचर लगेंगे। 'जाइ हो' का 'जाइय हो' 'समात हो' का 'समातइ हो' वन जाना लोकगीतो की लयव्यवस्था के सर्वथा मेल मे है। लोकगीत पद्धति की रचना मे भरती के शब्दो का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नही कहा जा सकता। शब्दो के विकृत रूप देने के लिए प्रतिलिपिकार का प्रमाद ही उत्तरदायी प्रतीत होता है। वैसे जब तक पाठालोचन के सिद्धान्तो के अनुसार इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक सपादन नही हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपो पर आलोचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १६६५ वाला 'नहछू' का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सपादित 'रामलला नहछू' तथा उसके अन्य प्रकाशित सस्करणो की अपेक्षा लोकगीत शैली से अधिक प्रभावित है, उसमे नहछू सम्बन्धी प्रचलित लोकगीतो की बहुत सी पक्तियाँ शब्दश: उद्धृत मिलती हैं। उनमे भी विकृत तथा भरती के शब्दो की कमी नही है।[1]

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहछू राम क हो'

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अतिछवि छाजिय'

जैसी परस्पर विरोधी उक्तियाँ भी उसमे है। यहाँ एक बार यह बताकर कि आज जनकपुर मे राम विवाह है (तो नहछू भी वही होना चाहिए) फिर दूसरी ही साँस में यह भी कहना कि अयोध्या को सजाने और ज्योतिर्मय करने की व्यवस्था अत्यन्त आकर्षक है (नहछू के मांगलिक उत्सव के उपलक्ष्य मे) पाठक को भ्रात कर देता है। 'आज' शब्द के कारण वह यह निश्चय नही कर पाता कि नहछू वस्तुत अयोध्या मे हो रहा है या जनकपुर मे।

इससे स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता के जीवन काल की है, प्रामाणिक नही मानी जा सकती।

साराश यह कि 'रामलला नहछू' का स्वारस्य आत्मसात् करने के लिए

---

१. कौसिला के भरिहैं कहार तौ प्रभु को नेहवाएव हे।
× × ×
राम बियाहि कर आएब देवुं मए घोर हे।
—उद्धृत, तुलसीदास पृ० २०५।

उसके विषय तथा शैली तत्त्व का आलोचन लोकसाहित्य के प्रतिमानो को दृष्टि मे रखकर होना चाहिए, नागर साहित्य के शास्त्रीय सिद्धान्तो के प्रकाश मे नही। अन्यथा तुलसी की काव्य प्रतिभा, प्रवृत्ति, समाज-दर्शन एव उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारित्रिक आदशो के सम्बन्ध मे इसी प्रकार के अनर्गल आरोपो का क्रम चलता रहेगा।

मानवता और रामचरित-मानस

रामचरित भारतीय सस्कृति का सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है। साहित्यकारो ने समय-समय पर युगमानस को ऊर्जस्वित करने के लिए अपनी व्यक्तिगत साधना और अनुभूति के अनुसार उसे नये साँचे मे ढाल कर रूपायित किया है, लोकगायको ने अपनी अमृतवाणी से माटी की गध से वासित कर उसे लोकानुरजन तथा जनशिक्षा का माध्यम बनाया है। तुलसी की लोकव्यापी दृष्टि ने रामकथा की इन सारी परम्पराओ को समेटते हुए आध्यात्मिकता का पुट देकर राम को आदर्श मानव के रूप मे प्रतिष्ठित किया। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवनगाथा होते हुए भी उसने धर्म ग्रन्थ की महत्ता प्राप्त कर ली। विश्वसाहित्य मे अन्य किसी काव्यग्रन्थ को यह गौरव प्राप्त हुआ हो, यह देखने मे नही आता। तुलसी ने उसके पठन, श्रवण और रसास्वादन को आत्मशोधन एव भवसतरण का सर्वसुगम साधन कहकर प्रकारान्तर से निगमागम एव पुराणो की भाँति ही उसकी पावनता प्रतिपादित की है और लोकमानस ने उनके इन वचनो को ब्रह्मवाक्य के रूप मे ग्रहण किया है—

"चली सुभग कविता सरिता सो। रामप्रेम जस जल भरिता सो ॥[1]
रामचरित मानस यह नामा। सुनत श्रवण पाइअ विश्रामा ॥"
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई ॥[2]
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥[3]
सादर मज्जन पान किये ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते ॥[4]
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करही। ते गोपद इव भवनिधि तरही ॥[5]

---

१. राम० बाल, ३८।११।
२. वही, ३४।७, ८।
३. वही, ४२।३,४।
४. वही, ४२।६।
५. वही, १२८।६।

पूर्ववर्ती रामकथाश्रित प्रबन्धो मे कही ऐतिहासिक, कही दार्शनिक, कही सास्कृतिक ओर कही साहित्यिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी थी। तुलसी ने एकाग्रता से बचकर रामचरित मे मानव-जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओ का आत्यतिक समाधान प्रस्तुत करने वाले सूत्रो को उजागर किया। पूर्ण सुख शाति एव समृद्धि सम्पन्न समाज का निर्माण अधूरे, विरूप तथा अभावग्रस्त मानव द्वारा सभव नही, इसलिए उन्होंने पथभ्रात मानवता के समक्ष पूर्ण मानव के आदर्श राम का चरित रखा। ऐसे महापुरुष की जीवन झांकी प्रस्तुत की, जिसने दशरथपुत्र के रूप मे अवतरित होकर अपने कर्मकौशल से लोकमानस मे परात्पर ब्रह्म की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, जिसने राजपद के वैभव-विलास से असपृक्त रह कर दानवता से पराभूत और सभ्यता के प्रकाश से वचित मानवता के उत्थान के लिए दर-दर की खाक छानी थी। विश्व मानव के प्रति इस अगाध करुणा एव मैत्री भावना के कारण देशकाल की बदलती परिस्थितियो मे समय-समय पर मानवता के जो भी उत्कृष्टतम प्रतिमान निर्धारित होगे 'मानस' के राम उससे सदा ही कुछ ऊपर और कुछ आगे दिखाई देंगे।

प्रेरणा एवं आधार ·

रामचरित को आदर्श के रूप मे अपनाने की प्रेरणा तुलसी को समकालीन समाज के विभिन्न वर्गों एव स्तरो के गहरे अध्ययन तथा निजी अनुभव से प्राप्त हुई थी। उनकी बाल्यावस्था घोर दरिद्रता मे कटी थी[1], वैराग्य धारण करने के बाद उन्होंने तीर्थाटन करते हुए सारे देश का भ्रमण कर जनजीवन का बहुत ही निकट से निरीक्षण किया था[2], सत्सग के क्रम मे उन्हे विभिन्न धार्मिक सप्रदायो के अनुयायियो के आचार-विचार के पर्यवेक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, जीवन के अतिम वर्षों मे जब वे 'तुलसी' के ऊपर उठ कर 'गोसाईं' हुए तो बडे-बडे राजे-महाराजे उनका चरण वदन कर कृतार्थ होने थे, इस माध्यम से सामतीय वर्ग से भी उनका परिचय हुआ। इस प्रकार समकालीन समाज के विविध वर्गों और प्रवृत्तियो के व्यक्तियो के जीवन तथा विचार पद्धति का आन्तरिक परिचय प्राप्त कर लेने पर उन्होंने अनुभव किया कि समाज का पूरा शरीर घातक सडन

---

१. द्वारे ते ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चानक को।
—कविता, ७।७३।

२. विनय० २६६।२।

का शिकार हो रहा है। धार्मिक भावना के व्यापक ह्रास से उसके मूलाधार जप, योग तथा वैराग्य तिरोहित हो गये हैं, स्वाध्याय की परम्परा समाप्त हो चुकी है, आये दिन नये-नये पन्थो और सम्प्रदायो की स्थापना हो रही है, यज्ञदानादि कर्मों का अनुष्ठान अर्थाभाव के कारण बन्द हो रहा है, पाखडी लोग धार्मिक आचार-विचार के नाश के कारण बन रहे हैं, वर्णाश्रम धर्म लडखडा रहा है और लोकमर्यादा के मस्तूल ढह रहे हैं, सारा धार्मिक समाज दुर्वासनाओ का शिकार हो रहा है, राजवर्ग बडा ही छली है, वह प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर उसे निगल जाने पर उतारू है, नित्य नये करो से जनता की रीढ टूट गई है, आर्थिक शोषण से निर्धनता बढ रही है, निरतर पडने वाले दुर्भिक्षो से मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे म पड गया है, सभी वर्णों के लोगो मे चरित्रहीनता फैल गई है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचार के पतन से चारो ओर अव्यवस्था का ताडव आरम्भ हो गया है[1], समाज मे विषमता इतनी बढ गई है कि एक ओर वैभव नालियो मे वह रहा है, तो दूसरी ओर लोग दाने-दाने को तरस रहे है। मर्यादा तथा निष्ठा के अभाव म जनजीवन विच्छिन्न हो गया है। मानवी-मूल्यो को समाप्त करने वाली सम-सामयिक परिस्थिति का तुलसी ने बडा ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। विनाशकारी युग प्रभाव को उन्होंने 'कलि' के नाम से अभिहित किया है और इसका मूल कारण आसुरी वृत्तियो का उत्तरोत्तर विकास बताया है।

इस दयनीय स्थिति से समाज का उद्धार करने के लिए उन्होने शतियों के विधर्मी शासन के परिणामस्वरूप जन-मानस मे प्रतिष्ठित हीनभावना, भय, रूढिप्रियता, अविश्वास, सदेह आदि को दूर करना आवश्यक समझा। इसके बिना आतकित एव दलित जनता मे अत्याचार, अधर्म और अनैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली शक्तियो से लोहा लेने की शक्ति का सचार करना असम्भव था। कहने की आवश्यकता नही कि इस उद्देश्य की सिद्धि मात्र तत्त्वज्ञान के उपदेशो और कीर्तन भजन के आयोजनो से नही हो सकती थी। वेदोपनिषद्, स्मृतियाँ और पुराण तव भी पढे-गुने जाते थे, निर्गुणिया सन्तो और सूफी फकीरो के असख्य अनुयायी उस युग म भी धर्मग्रथो के स्वाध्याय और साधना मे कालयापन करते थे। राम और कृष्ण-भक्ति के केन्द्रो मे आराध्य युगल की लीला के गान और प्रदर्शन की परम्परा भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही थी। विभिन्न दार्शनिक मतवादो के अनुयायी सन्यासी तथा गृहस्थ तत्त्वनिरूपण, शास्त्रार्थ आदि से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित रखने मे यथाशक्ति अशदान करते थे—फिर भी अधकार बढता जा रहा था। विनय-पत्रिका मे एक स्थान पर इसका सकेत मिलता है—

१. मानस बाल०, १।१८३, १८४।१,२,३ ।

वाक्य ज्ञान अत्यत निपुन भव पार न पावत कोई ।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ।।[1]

ऊँचे सिद्धान्त और विचार-व्यवहारभूमि मे उतर कर ही लोक कल्याण के साधन बनते हैं। जन-मानस का विश्लेषण करने पर उन्हें लगा कि इसका कारण नैतिकता के मूर्त आदर्श का अभाव है—सामान्य लोग अमूर्त सिद्धात और विचारों से, चाहे वे कितने भी उत्कृष्ट और उपादेय क्यों न हों, प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते। सूरदास की इन पक्तियो मे समकालीन लोकमानस की किंकर्त्तव्यविमूढ़ावस्था की छाया देखी जा सकती है—

"अविगत गति कछु कहत न आवै ।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालंब मन चकृत धावै ।
सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै ।।"

युगीन वातावरण का सम्यक् आकलन करने के बाद तुलसी ने अपने गभीर शास्त्रज्ञान के द्वारा यह अनुभव किया कि भारत के सास्कृतिक इतिहास मे कुछ इसी प्रकार का गतिरोध हजारो वर्ष पूर्व गाथाकाल मे उपस्थित हुआ था, जब रावण के अत्याचारो से समस्त चराचर जगत नारकीय यातना भोग रहा था, पृथ्वी माता उस समय गोरूप मे जगन्नियन्ता के समक्ष उपस्थित हो त्राण की भिक्षा माँगने के लिए विवश हुई थी और परात्पर ब्रह्म ने करुणार्द्र हो धर्म सस्थापना के लिए मानवावतार धारणा का वचन देकर उसे आश्वस्त किया था। त्रेता का रामावतार इसी का परिणाम था। लोक-मर्यादा के सस्थापक राम का जीवनादर्श अपनाने से ही विधर्मी शासन द्वारा निर्मित आसुरी वातावरण पर विजय प्राप्त की जा सकती है और परतन्त्रता की बेडियो मे जकडी भारत भूमि का उद्धार किया जा सकती है, यह उनका स्पष्ट मत था—

मडलीक मनि रावन राखेसि कोउ न सुतत्र ।
भुजबल जगत बस्य करि, राज करै निज मत्र ।।

× × ×

जेहि विधि होइ धर्म निरमूला । सोइ सब करै धर्म प्रतिकूला ।।[2]

× × ×

यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा ।
कामादिहर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ।।[3]

---

१. विनय १२३ ।
२. मानस बाल० १८२।५ ।
३. मानस कि० ३० क ।

भव भेषज रघुनाथ जस सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्हकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ।।[1]

× × ×

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन और अधार ।।

ऐसी अनेक उक्तियों द्वारा तुलसी ने सारी सामाजिक विसंगतियां और उनके प्रेरक मानसिक विकारों को दूर करने में रामकथा के अद्भुत प्रभाव का उल्लेख किया है। इससे हताश लोगों में यह विश्वास जगा कि दुःशासन एवं दुर्व्यवस्था चाहे वह कितनी ही मूलबद्ध और शक्तिशाली क्यों न हो अन्ततः समाप्त होकर ही रहेगी। इस भावना से प्रजा में संघर्ष करने की ऊर्जा एवं अत्याचारी शासक को दण्डनीय घोषित करने का साहस उत्पन्न हुआ—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।[2]

रामचरित-मानस ने सर्वमानवीय मुक्ति के लिए अन्तःशक्ति उद्‌बुद्ध कर दानवी वृत्तियों पर विजय पाने का पथ प्रशस्त कर दिया।

विराट् लक्ष्य .

शब्दशक्ति से मानवता को प्रभावित कर अधःपतित समाज को ऊपर उठाने का ऐसा महान् लक्ष्य उसी सर्वात्मदर्शी कृतिकार का हो सकता है जिसका सारा पीड़ित मानवता की हृत्तन्त्री से संपृक्त हो चुका हो, जिसका 'स्व' विराट् 'अहं' में और 'विराट् अहं' जिसके 'स्व' में विलीन हो गया हो। उसी का 'स्वान्तः-सुखाय', 'सर्वान्तः सुखाय' बनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। यह 'अन्तः सुख' 'निज सुख शान्ति' अथवा 'परम विश्राम' ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है, यही आत्मोलब्धि है। तुलसी ने इसका आस्वादन किया था—

जाकी कृपा लवलेस ते मति मंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ।।[3]

अवतार निष्ठा में मानवतावादी दृष्टि

अवतारवाद मानवतावाद का ही नामान्तर है, यह अवतार धारण करने के प्रयोजन की मीमांसा से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ तक कि मानवेतर योनियों—

१. मानस लंका १२१ ख।
२. मानस० अयोध्या०, ७०।६।
३ मानस० उत्तर, १३०।३।

मत्स्य, कच्छप, वाराह मे भी विष्णु के अवतार आततायियो का सहार करके मानवधर्म की सस्थापना के लिए ही हुए थे।

(क) मानवावतार—मानवता को गौरव दान

मानव विश्वकर्ता की उत्कृष्टतम सृष्टि है। कर्मसपादन की क्षमता से मडित होने के कारण मनुष्य देह ही भव-सतरण का एकमात्र साधन माना गया है। धर्मसाधना से इसे स्वर्गापवर्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर यह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। मानव शरीर की प्राप्ति बडे भाग्य से होती है। तुलसी ने इसे देवदुर्लभ माना है कारण कि भगवत्कृपा का प्रकाश मानव पर होता है, देवता इससे वचित रहते हैं। इसीलिए परात्पर ब्रह्म के दोनो पूर्णावतार—राम और कृष्ण, मानवावतार ही है। अन्य अवतारो से इनके उत्कर्ष का कारण अपेक्षाकृत अद्भुत तत्व का गोपन एव सहजता का प्रकाश है। लोकशिक्षा परमात्मा के मर्त्यावतार का मुख्य लक्ष्य होता है। उसकी सिद्धि लोकवत् व्यवहार से ही सभव है। राम की अवतार-लीला के वर्णन मे तुलसी ने यथासभव अलौकिकता के प्राकट्य को बचाया है। यदि उसका प्रकाशन भी हुआ है तो व्यक्ति-विशेष के लिए और स्थानविशेष मे—सबके समक्ष और सबके लिए नही। और यह भी इसलिए कि कही पाठक इसे वीरपूजा के रूप मे वर्णित प्राकृत मानव की कहानी न समझ बैठें। यही कारण है जिससे आराध्य के नितान्त नर-सुलभ व्यवहारो, उद्वेगो एव आचरणा का विवरण प्रस्तुत करते हुए वे निरतर उनके परात्पर ब्रह्मत्व का स्मरण दिलाते रहते हैं।

(ख) रामचरितमानस के मानव-सुलभ सवेग

रामचरितमानस मे अप्राकृत ब्रह्म की प्राकृत लीला का वृत्त प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थारम्भ मे जिस लोकानुग्रह अथवा करुणा को निर्गुणब्रह्म के सगुण रूप धारण करने का मुख्य प्रेरक भाव बताया गया है, रामकथा मे उसकी आद्योपान्त व्याप्ति दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त अधैर्य, प्रलाप, विरहाकुलता, कठोरता, पक्षपात, ममता आदि मनोभावो का भी उनके जीवन मे विशिष्ट अवसरो पर उद्रेक दिखाई देता है। कही-कही तो वे इतने सहज ढग से अभिव्यक्त हुए हैं कि अवतार-लीला से उनका सम्बन्ध प्रतीत ही नही होता। श्रद्धालु पाठको तक को उन्हे परात्पर ब्रह्म की नरलीला स्वीकार करने मे कठिनाई का अनुभव होता है। जनसामान्य उसके पारमार्थिक रूप को भूल कर मात्र लौकिक चरित मानने लगे तो आश्चर्य ही क्या है? तुलसी ने इस भ्रान्ति की संभावना अनुमान

कर मानस-प्रेमियो को सगुणलीला को रहस्यमयता से सावधान रहने की चेतावनी देते हुए लिखा था—

निरगुन रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ॥[1]

करुणा

राम की शरणागत वत्सलता और पतितपावनी प्रकृति के व्यंजक जो वृत्तात रामचरित मानस मे सकलित हैं, प्रसग की समीक्षा करने पर उन सबके मूल मे करुणाभाव की ही प्रधानता दिखाई देती है—गौतम के शाप से उनकी शिलाभूता पत्नी अहिल्या का उद्धार, बालि के भय से वन-बीहडो मे लुक-छिपकर जिंदगी काटने वाले सुग्रीव की रक्षा तथा किष्किधा का राज्यदान, दडक वनवासी मुनियो को सर्वप्रकारेण सरक्षण प्रदान करने का आश्वासन, नरभक्षी राक्षसो द्वारा मारे गये ऋषियो के अस्थिसमूह को देखकर पृथ्वी को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा, शरणागत विभीषण को लका-राज्य का दान आदि प्रसगो मे उस करुणा अथवा जीवदया भाव की अपूर्व छटा दिखाई देती है जिससे रहित मनुष्य को पशु कहने से पशुता भी अपमानित होती है। राम की इस करुणा सवलित उदारता की पराकाष्ठा दिखाई देती है राम-रावण युद्ध मे उस अवसर पर जब वे राक्षसो को वैरभाव से स्मरण करने वाले अपने भक्त बताकर रणक्षेत्र मे प्राण त्यागने पर उन्हें मुनिदुर्लभ परमपद प्रदान करते है।

कृतज्ञता

गृद्धराज जटायु ने रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता की रक्षा मे प्राण-अर्पित किये थे—राम ने उनका अन्तिम सस्कार अपने हाथो किया, पिता दशरथ से भी उनके प्रति अधिक ममता दिखाई और अत मे सदेह मुक्ति दी। इसी प्रकार हनुमान द्वारा किये गये अनन्त उपकारो का बोझ आजीवन ढोने मे वे गर्व का अनुभव करते रहे।

(१) सीताहरण के पश्चात् वियोगी राम की लौकिक विरहीनायको की भाँति विह्वलता एव कामासक्ति का वर्णन।

(२) लक्ष्मण-शक्ति प्रसग मे मर्यादा तथा औचित्य की सीमा पार करने वाला प्रलाप।

---

१ मानस० उत्तर०, ७३।

(३) सीता की अग्निपरीक्षा के समय राम का दुर्वाद कथन।

(४) अखिल ब्रह्माड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और वैकुठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन।

मानस के अध्येताओ, कथावाचको और सहृदय गायकों ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसगो की विविध प्रकार से व्याख्या कर अवतार-चरित की अलौकिक महत्ता अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया है। मेरे विचार मे इनकी यथार्थता को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आँच नही आती। लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नही। ये तथाकथित कमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओ से मडित करती हैं, उन्हे दिव्य साकेत से उतार कर विधि प्रपच की रगस्थली, गुणावगुण समन्वित, जड चेतना से सकुचित उस धरती पर ला खडा करती है, जिसका भार उतारने के लिए ही ब्रह्म राम ने अव्यक्त से व्यक्त, असीम से ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था। तुलसी इसका मर्म जानते थे। वे इस खतरे से भी अवगत थे कि अवतार-लीला को तर्क की कसौटी पर कसने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेंगे। इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दो मे निषेध किया था—

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं करम मन बानी॥[1]

रामायण को 'मानस' का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि भवानी॥[2]

ऐसी बात नही कि वे अवतार चरित की असगतियो से अपरिचित थे। एकाध स्थलो पर उन्होंने स्वय आराध्य के कृत्यो की आलोचना की है—

जेहि अघ बधेउ व्याध इव बाली। सोइ सुकठ पुनि कीन्ह कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी॥[3]

मरणासन्न बालि के द्वारा भी इन्होंने राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व और समदर्शिता को चुनौती दिलाई है—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारन कवन नाथ मोहि मारा।
धर्म हेतु अवतरउ गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं॥[4]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व के सम-

---

१. मानस, लंका० ७३।१।
२. मानस, बाल० १२०।३।
३. मानस बाल० २८।६।
४. मानस कि० ८।६।

र्थक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीला को साधारण लोगों के चरित की ही भाँति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नहीं कि वे रामचरित की उपर्युक्त न्यूनताओं की यथार्थता मे विश्वास करते हैं बल्कि यह दिखाने के लिए कि शेष के फण पर स्थित धरती पर आकर यहाँ की मर्यादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गोपन कर अपूर्ण मानव सा ही व्यवहार करता है। इसीसे उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्ध होती है।

लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मुलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन[1] के मूल आधार हैं—राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रों के चरित मे आद्योपात व्याप्त सयम, स्नेहशीलता, निश्छलता, सत्यनिष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा के नायक होने से राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्ति के रूप मे अक्षय आत्म-विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलबन, सगठनशक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि तत्वों से समन्वित उनका अखड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप मे बडों के प्रति श्रद्धा, समादर, आज्ञाकारिता और सेवापूर्ण व्यवहार तथा छोटों पर स्नेह-कृपा एव क्षमाशीलता की अजस्र वर्षा, मित्र के रूप में सौहार्द्र का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप मे प्रजावर्ग की सुख-सुविधा का निरतर ध्यान, समत्व पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का समुचित सत्कार, ऊँच नीच का भाव त्याग कर वन्य जातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियों मे शीलपूर्ण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्क से कोल-किरातादि जनजातियों का हृदय-परिवर्तन, मानव समाज से ही नहीं पशुपक्षियों तथा जड प्रकृति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का त्याग कर स्वेच्छया दुख एव विपत्तिसकुल जीवन का वरण, असत तथा अन्याय की शक्तियों से आजीवन सघर्ष करते हुए अन्ततः केवल धर्मनिष्ठता तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियों पर विजय

---

१ पुण्यं पापहरं सदाशिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैः दह्यन्ति नो मानवाः ॥
—रामचरितमानस, उत्तर० १३६. २।

प्राप्ति—आदि कार्यव्यापारो मे उनकी लोकवादी साधना साकार हो उठी है।

पुराणो के विष्णु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए मानवावतार ग्रहण कर मानवता को गौरव दिया था। मानस के राम ने अपनी लोकलीला मे मानवीय गुणो के अद्भुत प्रकाश से भगवत्ता की प्रतिष्ठा बढ़ाई। उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व, परात्परब्रह्मत्व, का पर्याय बन गया। पहले भगवत्ता मानवता मे परिणत मात्र हुई थी। तुलसी के राम मे वह पूर्णतया लीन हो गई।

रामभक्ति—मानवता की अन्तिम शरणागति

रामकथा के व्यापक प्रचार द्वारा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि और उसका लोकमगल मे विनियोग ही रामचरित मानस का मुख्य आग्रह है। तुलसी का यह दृढ विश्वास था कि इसके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन से लोगों के हृदय मे रामचरणो म प्रगाढ आसक्ति उत्पन्न होगी।

जे यहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहैं रामचरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमगल भागी॥[1]

मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस धारणा की पुष्टि बडी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए वे कहते हैं।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा॥[2]
जाने बिनु न होइ परतीती। बिन परतीति होहि नहि प्रीती॥
प्रीति बिना नहि भगति दृढाई। जिमि खगपति जल के चिकनाई॥[3]

परिचय से विश्वास, विश्वास से प्रीति, प्रीति से श्रद्धा और श्रद्धा से भक्ति—लौकिक प्रेमभावना की भाँति ही आध्यात्मिक विकास की भी यही प्रकृत प्रणाली है। मानस म इन स्थितियो का चित्रण ही नहीं हुआ है, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, अगद, शबरी आदि के चरित्र म इनके विकास का भी निरूपण किया गया है। इस क्रम से प्रतिष्ठित रामभक्ति साधक का अन्तर्मल धो देती है जिससे जन्म जन्मान्तर से जमी हुई कुसस्कारो की काई छूट जाती है। तुलसी का यह दृढ मत है कि अन्य किसी भी साधना-पद्धति से इनका अत्यन्ताभाव सभव नही है—

---

१ मानस बाल० १४।१०।
२ मानस उत्तर० १२२।१।
१ मानस उत्तर० ८८।७।

राम भगति जल बिनु खगराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥

संस्कारमार्जन

गोस्वामी जी की धारणा थी कि प्रारब्ध से प्राप्त कुसंस्कारों की भाँति ही मनुष्य जीवन को यातनामय बनाने वाले मोह, लोभ, काम, क्रोधादि मनोविकारों के नाश की भी रामभक्ति ही एकमात्र ओषधि है। इसके श्रद्धापूर्वक सेवन से मानव समाज मानसिक स्वास्थ्यलाभ कर लौकिक उत्कर्ष और पारमार्थिक सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

मोह सकल व्याधिन कर मूला । तिन्हते पुनि उपजहिं बहु मूला ॥[१]
यहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥[२]
रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥[३]
जो परलोक इहा सुख चहहू । बचन हमार मानि दृढ गहहू ॥

ये पंक्तियाँ असख्य मानस रोगो से ग्रस्त मानवता के प्रति तुलसी की अपार सहानुभूति और उनके पंजे से मानव जीवन को मुक्त करने के लिए उनके करुणार्द्र हृदय की छटपटाहट व्यक्त करती हैं।

रामभक्ति के विलक्षण प्रभाव का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि एक बार हृदय में प्रतिष्ठित हो जाने पर फिर वह कभी जाती नही। उसका दिव्य प्रकाश अधकारधर्मी दुष्प्रवृत्तियो का मूलोच्छेद कर देता है—

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ॥
व्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्हके बस सब जीव दुखारी ॥
खल कामादि निकट नहिं जाही । बसत भगति जाके उर माही ॥[४]

सुगम मार्ग

इसकी सबसे एव बडी विशेषता है सुगमता सुलभता। कर्म, ज्ञानादि साधनों की भाँति न तो यह अर्थसाध्य है, न प्रयत्न साध्य। इसकी प्राप्ति की एकमात्र शर्त है सरलता, निष्कपटता और सतोषवृत्तिपूर्ण जीवनचर्या—

"कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न जप तप व्रत उपवासा ॥[५]
सरल सुभावन मन कुटिलाई । जथालाभ सतोष सदाई ॥

२ मानस उत्तर० १२०।२६।
३ मानस उत्तर० १२१।१।
४ मानस उत्तर० १२१।७।
५ मानस उत्तर० ११६।६,८५।
१ मानस उत्तर० ४५।१।

मे की जाय, क्योंकि वही सबकी समझ में आ सकती थी। इस विषय मे एक अड़चन यह थी कि परपरा मे समादृत धर्मग्रन्थो की भाषा उस समय भी सस्कृत ही थी और लोकप्रसिद्ध रामकथाओ—वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण आदि का निर्माण भी सस्कृत में ही हुआ था। लोगो के हृदय में चाहे वे साक्षर हो या निरक्षर सस्कृत भाषा के प्रति विशेष समादर का भाव था, देव अथवा देवाधिदेव की कथा, स्तुति और अर्चना के लिए देववाणी की उपयोगिता स्वत सिद्ध थी। किंतु तुलसी के समकालीन समाज में उसके पठन-समझने वालो की संख्या नगण्य हो गई थी। वह सिमट कर धार्मिक कृत्यो और धर्मग्रन्थो मे जीवित रह गई थी—लोकजीवन की मुख्यधारा से उसका सम्पर्क टूट चुका था। तुलसी रामकथा को लोकशिक्षा का सशक्त माध्यम बनाना चाहते थे। इसलिए भी उसकी रचना देशभाषा मे करना अनिवार्य था। उधर सस्कृत मे अतिलोकनिष्ठा को देखते हुए उसे भी उचित सम्मान देना था। उन्होंने मानस के प्रत्येक कांड के मगलाचरण और देवस्तुतियो मे उसको स्थान देकर परपरावादी प्रवृत्तियों का सत्कार किया। प्रतीत होता है कि इसके बावजूद उनके मन में आराध्य के पावन चरित को 'निगमागम' की भाषा त्याग कर ग्राम्यभाषा मे लिखने की ग्लानि बनी रही। मेरे विचार में इसका कारण लोकभाषा में किसी प्रकार की न्यूनता अथवा अक्षमता न होकर तत्कालीन धर्माश्रयी विद्वद्वर्ग का सस्कृत के प्रति मोह और लोकभाषा के प्रति तीव्र जुगुप्सा एव विरोध की भावना थी।

"राम सुकीरति भनित भदेसू। असमजस अस मोहिं अदेसू॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥"

उन्होंने ग्राम गीतो मे प्राप्त रामचरित के सहज माधुर्य एव काव्य सौन्दर्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया था, इसलिए प्रबंध रचना के लिए लोकभाषा के सामर्थ्य पर उन्हें रचमात्र सदेह नही रह गया था।

कालान्तर में भाषा सम्बन्धी उनका यह अंतर्द्वन्द्व समाप्त हो गया। सर्वमान-वीय कल्याण-भावना की प्रेरणा से उन्होंने सस्कृत का पल्ला छोड कर लोकभाषा के ही पक्ष मे निर्णय किया—

का भाषा का सस्कृत, प्रेम चाहिए साच।
काम जो आवै कामरी, का लै करव कुमाच॥
× × ×
स्याम सुरभि पय बिसद अति। करहिं गुनद सब पान॥
गिरा ग्राम्य सिय राम जस। गावहिं सुनहिं सुजान॥

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी ने रामकथा को ग्राम्य भाषा मे वर्णित करने की प्रेरणा सीधे लोकजीवन से प्राप्त की थी—यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप निर्माण उन्होने सस्कृत के विशाल वाड्मय का सहारा लेकर किया।

सयोगवश उनके आरभिक जीवन का अधिकाश अवध प्रदेश मे बीता था। अयोध्या रामोपासना का सर्वप्रतिष्ठित केन्द्र था, उनके गुरु का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। नरहरिदास की साधना भूमि 'सूकर खेत' अयोध्या के पास पडती थी, वही बाल्यावस्था मे इन्होने गुरुमुख से रामायण की अनेक आवृत्तियाँ सुनी थी, अत मानस की रचना वही की बोली मे हुई। राम की जन्मभूमि की भाषा होने से तुलसी का उसके प्रति आकर्षण एव आदरभाव स्वाभाविक था।

काव्य मे वर्णित तथ्यो एव भावो को जनमानस मे उतारने के लिए भाषा का सरल, सुबोध, सरस एव प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है। सहज अभिव्यक्ति ही उसकी प्राणशक्ति है। अत काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ और अर्थ-अक्षर के सामर्थ्य से अवगत होते हुए भी तुलसी ने कही भी प्रतिभा प्रदर्शन का प्रयास नही किया। यह बात दूसरी है कि उनकी परा वाणी मे सारे काव्य गुण स्वतः ही सिमट आये हो। उनकी दृष्टि काव्य के आत्मपक्ष के सवारने पर थी, देहतत्व के सजाने पर नही। रामभक्ति के स्वारस्य को लोक हृदय मे यथार्थ रूप मे प्रतिष्ठित कर देने मे ही वे काव्य प्रतिभा की सार्थकता मानते थे और इसी मे कवि कर्म की इतिश्री समझते थे—

बिधु बानी सब भाँति सवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥"
"भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ॥

इसी भावना ने उन्हे प्राकृत जनो के गुणगान से विरत किया। किसी व्यक्ति की प्रशसा करने मे चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित और वैभव सपन्न क्यो न हो, सरस्वती का अपमान होता है, ऐसा उदात्त विचार सासारिक प्रलोभनो एव आकर्षणो से मुक्त मानवीय मूल्यों के पारखी का ही हो सकता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजाओं एव दरबारी काव्य की भर्त्सना करने वाले तथा सामतो और सामतीय सस्कृति के विषाक्त प्रभाव से समाज की रक्षा करने वाले इस जनवादी कवि को वादाग्रही आलोचक आज सामन्तवाद का पोषक बताने लगे हैं :

"गहि न जाइ रसना काहू की कही जाहि जो सूझै"।

इधर रामचरितमानस मे अभिव्यक्त राम के चरित की मानवीय न्यूनताओं की भाति ही तुलसी के भी मानवता विषयक दृष्टिकोण की भी तीव्र आलोचना

होने लगी है। कहीं-कहीं तो इसने उग्र स्थूल विरोध का रूप ले लिया है। उन्हें ब्राह्मणवादी, शूद्रविरोधी और नारी निंदक कह कर सामाजिक सद्भाव एवं एकता का विरोधी घोषित किया गया है। इन आक्षेपों पर संस्कारमुक्त चित्त से तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश को दृष्टिपथ में रख कर विचार करने की आवश्यकता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि तुलसी आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे, जब शताब्दियों की विधर्मी राज्य-व्यवस्था से आक्रान्त जनता अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए जूझ रही थी। वर्ण-व्यवस्था जो कभी कर्मणा थी, उस समय तक आते-आते पथरा कर जन्मना हो गई थी और उसी के लौहावरण के भीतर अपने सांस्कृतिक दाय को छिपा कर सँजोने में व्यस्त थी। बाहरी आघातों से व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनादर्शों में दरारें पड़ गई थीं और उन्हीं दरारों के कारण मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का गढ़ ढहने की स्थिति में आ गया था। तुलसी को सांस्कृतिक प्रहरी के रूप में इन सारे छिद्रों और दरारों को भरकर हताश तथा किंकर्तव्यविमूढ़ जनजीवन को नयी दिशा देनी थी। प्राचीनता को एकदम उतारने फेंकने से इसकी सिद्धि संभव नहीं थी—उन्हें जिस समाज को लेकर चलना था, जिसका परिष्कार करना था वह पुरातनताप्रिय था—क्रांतिकारी परिवर्तन के झटके में भड़क जाता। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक की ही तरह लोक सामाजिक जीवन के क्षेत्र में भी अतिवादिता का त्याग कर मध्यममार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक के रूप में ब्राह्मण, शूद्र और नारी सम्बन्धी परंपरा-प्राप्त विचारों का समर्थन किया वहीं, दूसरी ओर उन्होंने वैष्णव-भक्ति आंदोलन द्वारा प्रवर्तित सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रकाश में देशकाल की बदली हुई परिस्थिति को देखते हुए ब्राह्मणों के गिरते हुए चारित्रिक आदर्शों की खुलकर आलोचना की, शूद्रों को वशिष्ठ ऐसे युगाराध्य ब्राह्मण और भरत ऐसे लोकवंद्य क्षत्रिय से गले मिलाया, और स्त्री-पराधीनता को समाज का अभिशाप बताया—

"कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥"

उनकी यह संतुलित दृष्टि समाज के सभी वर्गों पर पड़ी। धार्मिक मत-मतान्तरों, सामाजिक जीवन के आधारभूत सम्बन्धों और वैयक्तिक जीवन के नैतिक मूल्यों में परिलक्षित मानवता के स्वस्थ विकास के अवरोधक तत्वों पर उन्होंने निर्मम प्रहार किये, विघटनकारी प्रवृत्तियों को निर्मूल करके संगठन तथा सद्भावना के विकास के लिए उन्होंने रूढ़िवादी शास्त्रचिंतकों, पंडितों और पुरोहितों के स्वार्थ एवं शोषणपरक नेतृत्व को अपदस्थ कर समाज के उद्धार का

उत्तरदायित्व सतो को सौपा। उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति और लोक का समन्वय समदर्शी सतो का निस्पृह तथा पावन व्यक्तित्व ही कर सकता है—लोकमत और वेदमत दोनो से सतमत को वरीयता देने का यही रहस्य था—

"सत हृदय सतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥"

रामचरितमानस म निरूपित उच्च मानवीय मूल्यो के द्वारा विश्वकल्याण की जो कल्पना तुलसी ने की थी कालातर मे वह साकार हुई। मध्यकालीन अधकारधर्मा सामतवाद तथा रूढिजर्जर सामाजिक मान्यताओ के महल ढह कर रहे। अग्रेजो शासन के साथ पाश्चात्य, ज्ञान-विज्ञान से आलोकित आधुनिक युग का पदार्पण हुआ। राजनीतिक चेतना के इस अभूतपूर्व जागृति काल मे भी युगावतार गाधी ने तुलसी के 'रामराज्य' को ही सर्वोदय भावापन्न आदर्श राज्य व्यवस्था स्वीकार किया। इतना ही नही उन्होंने मानस-प्रतिपादित नाम-महिमा मे दृढ़ आस्था रखते हुए 'रामनाम' को ही जीवन तथा जगत की सारी समस्याओ की महौषधि बताया और उसकी आजीवन साधना कर 'रामनाम' का स्मरण करते हुए एक सच्चे रामभक्त की भाँति अपनी ऐहिक लीला सवरण की।

यह कहा जा चुका है कि तुलसी ने आध्यात्मिक जीवन को ही सर्वोपरि माना था और राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उत्थान मे उसकी भूमिका अनिवार्य बतायी थी। भारतीय स्वतत्रता आदोलन का सूत्रपात ही धार्मिक राष्ट्रीयता के रूप मे हुआ। गाधी और विनोबा के नेतृत्व मे तो उसने पूर्णतया आध्यात्मिक रूप धारण कर लिया—तुलसी ने 'धर्मरथ प्रसग' मे वैज्ञानिक उपलब्धियो से सुसज्जित विश्वविजयी रावण पर भौतिक साधनो के अभाव मे भी बनवासी राम की विजय का कारण उनका अदम्य उत्साह ओर उच्चकोटि की नैतिकता बताया है। गाधी ने राम के इस आत्मजयी व्यक्ति तत्व से प्रेरणा प्राप्त कर अग्रेजी साम्राज्यशाही से भारतभूमि का उद्धार किया। रामचरित भारतीय स्वतत्रता सग्राम मे कितना प्रेरक रहा है, इसका पता असहयोग आदोलन के समय निर्मित साहित्य से लगता है।

आज विज्ञान की अनियत्रित प्रगति और भौतिकता के असतुलित विकास ने मानव सभ्यता को रामायण काल की ही भाँति विनाश के कगार पर ला खडा किया है। आसुरी शक्तिया का जाल जल, थल और अतरिक्ष चारो ओर फैल गया है। अपना देश राजनीतिक दृष्टि से स्वतत्र हो गया है किन्तु स्वतत्रता के फल—सुख एव शाति से सर्वथा वचित हैं। ऐसे घोर सास्कृतिक सकट के समय समाज के मानवीय तत्वो की पुनर्स्थापना के लिए रामचरितमानस को नये सिरे से पढ़ने-सुनने की नही, समझने की जरूरत है।

तुलसी की लोकाराधना

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। समकालीन जनजीवन की पीडा, प्रतारणा और हीनावस्था ही उनकी काव्यरचना का प्रेरणास्रोत था। लोकमानस से तादात्म्य स्थापित कर उन्होंने अपनी कृतियों मे उसका सच्चा प्रतिबिम्ब उपस्थित किया। उनके तीव्र सवेदनशील मानस में युग का जीता-जागता स्वरूप उतर आया। प्राकृत जन को उद्वेलित करने वाली परिस्थितियाँ उनकी निजी अनुभूति बन गई। तुलसी साहित्य मे स्थान-स्थान पर अत्याचार तथा अभाव से क्षुब्ध लोकवाणी की गूंज सुनाई पडती है। कहना न होगा कि उसके अतर्गत मुगल-कालीन जन-जीवन का जो चित्र उपलब्ध है, वेतनभोगी शाही इतिहासकारो तथा विदेशी सैलानियो के सतही विवरणो मे उसकी झलक भी नहीं दिखाई देती। दण्डनीति पर आधारित यवन शासन दुख दारिद्र्य से त्रस्त जनता का शोषण कर रहा था।[1] उसके अधीनस्थ सामत और राजकर्मचारी प्रजापीडन मे अपने मालिको को भी मात देते थे।[2] क्या किसान और क्या मजदूर सभी जीविका-विहीन होकर पेट की ज्वाला मे भस्म हो रहे थे।[3] अकाल तथा महामारी के प्रकोप से चतुर्दिक् त्राहि-त्राहि मची हुई थी।[4] हिन्दुओ के देवालय भ्रष्ट किये जा रहे थे।[5] धार्मिक जीवन मे दभ और पाखड का एकाधिकार

---

१ दोहावली, ३४६, कवितावली, ५।३२।

२. प्रभु ते प्रभु गन दुखद अति, प्रभुहि सँभारे राउ।
करतें होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ॥ दो० ५०।

३ कवितावली, ७।६७।

४ वही ७।८१, रामचरितमानस, ७।१०१।५।

५ तुलसी देवल देव को, लागे लाख करोरि।
काग अभागे हगि भर्‌यो, महिमा भई कि थोरि॥
दोहावली, ३८४।

था ।[1] तीर्थ अनाचार के केन्द्र हो गये थे ।[2] अयोध्या और काशी ऐसे नगरतीर्थों की तो बात ही क्या चित्रकूट[3] जैसे पहाडी तीर्थ भी कलि प्रभाव से अछूते नही बचे थे ।

शताब्दियो की पराधीनता से सामाजिक जीवन मे अनेक विकृतियाँ आ गई थी । हिन्दुओ मे भी कब्र-पूजा आरम्भ हो गई थी ।[4] भूतप्रेत, डाकिनी-शाकिनी मे लोगो की आस्था बढ रही थी ।[5] पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि विकराल रूप धारण कर चुकी थी । सगे सबधी खून के प्यासे दिखाई देते थे ।[6] कर्तव्य की अवहेलना और अधिकार-लिप्सा सीमा पार कर रही थी ।[7] अकर्मण्य आलोचको और प्रवचको की कमी न थी ।[8] स्वार्थ की विभीषिका से सामाजिक जीवन यातनामय हो गया था ।[9]

---

१ सुरसदननि तीरथ पुरिन, निपट कुठाट कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ।।

—वही ५५८ ।

२ मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे,
राम तेहि रुचिहि कामादि घेरे । विनय, २१०

३. चित्र कूट गए हौं कलि की कुचालि देखि,
अब अपडरनि डर्‌यो हौं । विनय, २६६ ।

४. दोहावली, ४९६ ।

५ दोहावली, ६५, ९२ ।

६. सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रवीन ।
कालक्षेप केहि मिलि करहि, तुलसी खग मृग मीन ।।

दोहा० ४०४ ।

७. सासु ससुर गुरु मातु पितु, भयो चहै सब कोइ ।
होना दूजो ओर को, सुजन सराहिय सोइ ।।

दोहावली ३९१ ।

८ ठाढ़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच ।
निदहि बलि हरिचद को, का कियो करन दधीच ।।

—वही, ३८८ ।

९ हरो चरहि, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत जन, परमारथ रघुनाथ ।।

—वही, ५२ ।

तुलसी की अतर्भेदिनी दृष्टि समाज के इस जर्जर ढाँचे पर पडी। उन्होने उसके निगूढ गह्वरो मे छिपी व्याधियो और उनके पोषक कीटाणुओ को देखा। कवितावली में विराट् पुरुष के हृदय में बढते रावण रूपी राजरोग का जो बिम्ब प्रस्तुत किया गया है, उसके मूल में वस्तुतः युगबोध ही है। लोकपीडक मुगल शासक और विश्व-परितापी रावण की रीति-नीति मे उन्हे अद्भुत साम्य दिखायी पडा। प्रकट रूप से तो उन्होंने इसका उल्लेख एकाध स्थलो पर ही किया है, किन्तु परोक्षरूप मे उनकी समस्त रचनाओ मे आसुरी प्रवृति का जैसा वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन शासक वर्ग के आचार-व्यवहार से पूरी तरह मेल खाता है। रावण ने सारे ससार की सपदा लूट कर जिस पूँजीवादी साम्राज्य की स्थापना की थी, राम ने जन-जातियो के सहयोग से उसका मूलोच्छेद करके असुरो के ही नियत्रण मे उसे एक नई व्यवस्था प्रदान की थी। तुलसी को यह गाथाकालीन सदर्भ साम्प्रतिक स्थिति मे बडा ही प्रेरक प्रतीत हुआ। साधनहीन जाति का उद्धार असुर सहारक राम का लोकानुप्रेरक चरित्र ही कर सकता है, इसमे उनकी दृढ आस्था हो गयी। अत. तद्ग्रस्त समाज के उद्बोधन के लिए उन्होने अपने पूर्ववर्ती निर्गुणमार्गी सतो की भाँति चेतावनी तथा दार्शनिक तत्व विवेचन का मार्ग न अपनाकर लोकग्राह्य कथा पद्धति से राम के लोकपावन चरित का आदर्श प्रस्तुत करके दर्शन को जीवन मे उतारने का स्तुत्य प्रयास किया। इस माध्यम से अध्यात्म तत्व की प्रतिष्ठा हो जाने पर सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं, और दु खदारिद्र्य से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। उनका दृढ विश्वास था—

जग मगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥[1]
मत्र महामनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअक भाल के॥

अत्याचारी शासन से त्रस्त जनता के लिए उनका यह उद्घोष कितना आशाप्रद और धैर्य बँधाने वाला था—

राज करत बिनु काज ही, करत कुठाट कुसाज।
तुलसी ते कुरुराज ज्यो, जैहैं बारह बाट॥[2]
राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलि काल।[3]
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल॥

इस सुदृढ आध्यात्मिक आधार के साथ ही उन्होने परपरागत सास्कृतिक

---

१. रामचरितमानस, बाल ३१।२।
२. दोहावली, ४१७।
३. रामचरितमानस, १।२७।

मूल्यों की रक्षा के लिए जनता को सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा भी प्रदान की—

सहि कुबोल साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान॥[1]

लोकोपासना का राजपथ—रामभक्ति

लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से तुलसी की यह धारणा बन गयी थी कि उसका उत्थान व्यक्तिगत नैतिकता के उत्कर्ष से ही संभव है। व्यक्ति की अधोगति के मूल में राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हो या पूर्वजन्म के संस्कार, प्रत्येक दशा में मनोभावों का परिष्कार हुए बिना भवातप से आत्यंतिक मुक्ति नहीं मिल सकती। कुंठाएँ, सन्त्रास, मानसिक द्वंद्व और दारिद्र्य सबका कारण मनुष्य की वैषयिक वृत्ति है। उसी के नियंत्रण और उदात्तीकरण से भौतिक अभावों एवं भयप्रद परिस्थितियों के बीच सतोष एवं सुख का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार की मन स्थिति अध्यात्म साधना से प्राप्त होती है। किन्तु कर्म, अर्हतायें अपेक्षित हैं, वे जनसाधारण की पहुँच से बाहर हैं। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने रामभक्ति का अत्यंत लोकग्राह्य स्वरूप प्रस्तुत किया है—

सम सतोष विचार विमल मति सत संगति ये चारि दृढ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेस करि परिहरु॥
स्रवन कथा मुखनाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसरु।
नयन निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीता बरु॥
इहै भगति वैराग्य ग्यान यह हरितोषन यह सुभ व्रत अचरु॥[2]

सभी वर्गों और स्थितियों के मनुष्य ही नहीं सारा चराचर जगत इसका अधिकारी है।[3] मनुष्य को अन सर्व बाह्य व्याधियों[4] तथा मनोगत अंधकार को दूर कर यह सहज ही उस तत्वज्ञान को प्राप्त करा देती है, जिसे योग और

---

१. दोहावली, ४६६।
२. विनय, २०५।
३. अखिल विस्व यह मोर उपाया। सब पर मोरि बराबर दाया।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहि भाए॥
४. यहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।
रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

ज्ञान मार्ग के अनेक कष्टसाध्य स्तरों को पार करने के बाद भी विरले ही साधक प्राप्त कर पाते हैं—

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझे।
तुलसीदास कह चिद्विलास, जग बूझत बूझत बूझे ।। विनयपत्रिका।

स्वरूप ज्ञान से आत्मविश्वास का उदय होता है। शक्ति केन्द्र में सम्बद्ध हो जाने से मनुष्य में साहस, निर्भयता आदि भावों का उदय होता है और वे उसके स्वभाव के स्थायी अंग बन जाते हैं फिर वह किसी भी सांसारिक शक्ति से पराभूत नहीं हो सकता और न दूषित सामाजिक वातावरण ही उसे मिटा पाता है।[1] आराध्यदेव की शक्तिशाली भुजाओं द्वारा अहर्निश सुरक्षित रहकर वह निर्भय विचरता है—

तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे।[2]
कहा भव भीर परी तेहि धौं, विचरे धरनी तिनसों तिनतोरे ।।

जन-नायक राम

राम भक्ति की ओर लोकहृदय को आकृष्ट करने के लिए तुलसी ने रामचरित के ऐसे तत्वों एव प्रसंगों को उभारा जो लोकस्तर के सर्वाधिक मेल में थे। आराध्य के परात्पर ब्रह्म युवराज और महाराज रूप का साधारणीकरण तुलसी की विशेषता है। रामचरितमानस का प्रतिपाद्य ही राम की भगवत्ता है, किन्तु उनकी अवतारलीला प्राकृत नरलीला के रूप में ही प्रस्तुत की गई। एकाध स्थलों पर जहाँ अलौकिकता का प्रदर्शन हुआ भी वह अत्यन्त गोपनीय ढंग से और ऐसे घनिष्ठ संबंधियों के समक्ष जिनके द्वारा उसके लोकप्रचार की संभावना नहीं थी, बाल्यावस्था में वे नगर के सामान्य बालकों के साथ अयोध्या की गलियों की मिट्टी और धूल में खेले थे, किशोरावस्था में पत्नी और भाइयों सहित उन्होंने सखाओं और नागरिकों के साथ सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होकर रँग-

---

१. भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम को लेत नितैहौं।
मोको न लेनों न देनो कछू कलि भूलि न रावरे ओर चितैहौं।।
जानि कै जोर करौ परिनाम तौ तू ही भितैहै पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिते न हितैहौं।।
कवितावली ७।१०२।

२. वही, ७।४६।

रेलियाँ मनाईं थीं। वनवास के समय कोल-किरातो से घुलमिल कर उनकी जीवनधारा को नया मोड दिया था। रिछ, बानर आदि अर्धसभ्य जातियो के अत्याचारी शासक को समाप्त कर सुख और शातिपूर्ण जीवनयापन मे सहायता की थी और उनका लोकमोहक सौन्दर्य तथा चेष्टाएँ नागरिको को मुग्ध करती हैं। बाल्यावस्था मे सखाओ के माथ भौंरा-चकडोरी खेलते और पतग उडाते हुए देखकर नगरवासी लोग आनन्दमग्न हो जाते हैं। जनकपुर मे नगरदर्शन के समय स्त्री-पुरुष काम-काज छोडकर उनके दर्शन के लिए टूट पडते हैं, स्त्रियाँ पुष्पो की वर्षा[1] कर उनका स्वागत करती हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं आनन्द की वर्षा होती चलती है।

वन-पथ मे जो उन्हे एक बार देख लेते हैं, आत्म-विस्मृत हो जाते हैं—स्थान-स्थान पर उनका स्वागत होता है, लोग दूर-दूर तक साथ लगे हुए चले जाते हैं और रात मे विश्राम का प्रस्ताव करके सेवा का अवसर प्राप्त करना चाहते है।

लोकजीवन को आनन्दपूर्ण बनाने और उस आनन्द में स्वय मग्न होने मे राम की गहरी अभिरुचि तुलसी द्वारा प्रस्तुत झूला तथा वसतलीला के वर्णनो से व्यक्त होती है, जिसमे ऐश्वर्य तथा मर्यादा को भूलकर वे सखाओ, बधुओ और स्त्री समाज के माथ नगर की गलियो में घूम घूमकर हाथ मे पिचकारी और कधे पर अबीर की झोली लटकाये हुए स्वांगियो तथा विदूपको के बीच हुडदग का आनन्द लेते हुये दिखाई देते हैं—

खेलत बसत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर समाज ॥[2]
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर पिचकारी हाथ ॥
उत जुवति जूथ जानकी सघ। पहिरे पट भूपन सरस रग ॥
नूपुर कटि किंकिनि अति सोहाइ। ललना गन जब जेहि धरत धाइ ॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाडा है नचाइ हा हा कराइ ॥
चढ़े खरनि विदूपक स्वाग साजि। करै कूटि निपट गइ लाज भागि ॥
नर नारी परस्पर गारी देत। सुनि हँसहिं राम भाइन समेत ॥

प्रगीत मुक्तको मे कवि की अतर्वृत्ति को खुलकर खेलने का अवसर मिलता

---

१. हिय हरषहिं बरसहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द।
जाहि जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ-तहँ परमानन्द ॥
(रामचरितमानस बाल-२२३)

२. गीतावली, उ०।२२।

है। इसी से राम को नागरिको के साथ इतना सम्पृक्त, इतना घुलामिला दिखाया जा सका। इस प्रकार की रसमयी लीलाओ से लोकजीवन को तो महत्व मिला ही, राम के लोकनायकत्व की सार्थकता भी प्रतिपादित हो गयी। सुख-दुख सभी स्थितियो में आश्रितो के साथ कधे से कधा मिलाकर रहने वाला ही उनके गले का हार हो सकता है, तुलसी इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे।

लोक संस्कृति का चित्रण

राम कथा के अन्तर्गत लोकप्रचलित सस्कारो, उत्सवो, प्रथाओ एव व्रतोत्सवों के अनगिनत प्रसग आये हैं। रामचरित मानस, रामलला नहछू, जानकी मगल, पार्वती मगल, गीतावली और कवितावली मे इसके बडे ही सश्लिष्ट एव रोचक विवरण प्रस्तुत हुए हैं। इनसे गृहस्थ जीवन की अतर्धाराओ से तुलसी का प्रगाढ़ परिचय प्रकट होता है। इस सबध में एक ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने लोकजीवन मे प्रचलित ऐसी अनेक प्रथाओ को भी प्रकृत रूप मे चित्रित कर प्रकारान्तर से उपादेय ठहराया है जिनमें लोकमानस से अपरिचित आलोचको को अश्लीलता और गँवारूपन की गध आती है।

रामलला नहछू मे अकित महाराज दशरथ की गहरी रसिकता का व्यजक एक चित्र देखिये—

अहिरिन हाथ दहेडि सगुन लेइ आवहिं हो।[1]
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावहिं हो॥

इस अवसर पर स्त्रियो द्वारा गाई गई गारी का उल्लेख ही नहीं ब्योरा भी दे दिया गया है—

काहे राम जिव सावर लछिमन गोर हो।[2]
कीधो रानि कौसिलहि परिगा भोर हो॥
राम अहहिं दसरथ के लछिमन आन क हो॥

मुडन तथा विवाह में स्त्रियाँ 'स्वाग' भर कर केलि कौतुक करती हुई 'रत-जगा' करती हैं इसका भी निर्देश है—

हिलि मिलि करहिं सवाग, सभा रस केलि हो।[3]
नाउनि मन हरषाइ, सुगधिन मेलि हो॥

---

१. रामललानहछू ५।
२. वही १२।
३. रामलला नहछू, १८।

'राम विवाह' के समय गारी का रूप और निखरता है। जनकपुर की स्त्रियाँ भात के समय महाराज दशरथ, बरातियों, उनके कुटुम्ब की स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली गाती हैं—

जेवँत देहि मधुर धुन गारी। लेइ-लेइ नाम पुरुष अरु नारी॥[1]
समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥

गारी का प्रसंग यहीं समाप्त नहीं होता। तुलसी को यह प्रथा इतनी प्रिय[2] थी कि लंकादहन के समय वे हनुमान के पाहुन रूप में उपस्थित अग्निदेव के भोजन के समय राक्षसियों द्वारा गारी से सत्कार कराना नहीं भूलते—

पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
हनुमान सनमानि के जेवाएँ चित चाय सो।[3]
तुलसी निहारि अरिनारी दै दै गारि कहैं,
बावरे सुरारि बैर कीन्ही राम राय सों॥

कन्या की विदाई का चित्र कितना हृदयद्रावक होता है। इस अवसर पर परम विरागी विदेह भी विचलित हो गये थे। पार्वती मंगल का एक बिम्ब है—

भेंटि बिदाकरि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।[4]
हुँकारि हुँकारि सुता लवाइ धेनु जनु धावहिं॥

भाँवरि के समय 'लावा' परछने की रीति कन्या के भाई द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। जनक के कोई पुत्र न था। तुलसी ने भूमि पुत्र मंगल को इस मांगलिक कार्य के लिए उपस्थित कर उक्त प्रथा की मर्यादा निभाई—

सिय भ्राता के समय भौम तब आयउ।[5]
दुरी दुरा करि नेग सुनात जनाएउ॥

इसी प्रकार 'कोहबर', 'लहकौरि', 'जुआ' आदि रस्मों का भी वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ किया किया गया है।

इन सारे चित्रणों का आधार तुलसी के सामने अपना देखा हुआ समाज और उसमें प्रचलित लोकप्रथाएँ रही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

---

१. रामचरितमानस, १।३२८–७।
२. अमिय गारि गारउ गरल गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बेर की जननि जुग, जानहिंबुध न गवार। दोहावली ३२८।
३. कवितावली लंका २४।
४. पार्वतीमंगल, १५८।
५. जानकीमंगल, १६६।

लोक धर्म

'राम' का अवतार लोकधर्म की सस्थापना के लिए हुआ था। तुलसी ने अपनी कृतियो मे रामकथा के प्रमुख पात्रो के आचार, व्यवहार तथा उक्तियो के माध्यम से लोकधर्म का नैसर्गिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। अहिंसा, करुणा, परोप-कार, वृद्धो की सेवा, मर्यादानिष्ठता, जन्म भूमि-प्रेम, दुष्टो का दमन, प्राण देकर भी अबलाओ की रक्षा, भलो के लिए नम्रता और अहिंसा, तिलाजलि देकर शक्ति की भाषा का प्रयोग आदि कार्य व्यापारो को आदर्श सामाजिक जीवन का अनिवार्य रूप मानकर उन्होंने राम की लोकलीला मे उनकी व्याप्ति दिखाई और इस प्रकार लोकधर्म पालन के प्रति जनरुचि जागृत की।

लोक प्रकृति निरीक्षण

सामाजिक जीवन मे तुलसी ने लोक स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनकी रचनाओ मे ऐसे स्थल भरे पडे हैं, जिनसे मानव प्रकृति की विलक्षणताओ की पहचान और अद्भुत क्षमता द्योतित होती है। विशिष्ट अवसरो पर प्रस्फुटित मन के सहज उद्‌गार व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव स्तर तथा विचार पद्धति के सूचक हैं। पात्रो के चरित्रचित्रण मे उनकी दृष्टि मे यह बात बराबर रही। इसी से मानव प्रकृति के चित्रण मे उन्हे इतनी सफलता प्राप्त हो सकी। रामचरित मानस मे सत-असज्जन वन्दना, नारदमोह, लक्ष्मण-परशुराम सवाद, मथरा प्रसग तथा कलिधर्म निरुपण आदि प्रसगो मे तो एतद्विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ही, दोहावली में भी लोक स्वभाव एव प्रवृत्ति-व्यजक अगणित रेखाचित्र सजाये गये हैं—

(१) क्रिया चरित्र

कत सिख देइ हमहिं कोउ भाई। गाल करब केहि कर बल पाई ॥[1]
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥[2]

(२) गूढ़ व्यंग्य (कूटि)

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीक दीन्ह विधि सुन्दरताई।
रीझिहि राजकुँवरि छवि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि विसेखी ॥[3]

---

१ रामचरितमानस, २।१४-१।
२ वही २।१६-४-७।
३ रामचरितमानस, १।१३४-३,४।

(३) क्षोभ मे अपशब्द प्रयोग

खीझति मंदोवै सविपाद देखि मेघनाद,[1]
बयो लुनियत सब याही दाढीजार को।[2]

(४) पड़ोसियों का क्रूरतापूर्ण व्यवहार

सहवासी कायो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन।
कालक्षेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन॥

(५) लोकव्याप्त स्वार्थभावना

हरीवरहिं तापहिं वरत, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीन जन, परमारथ रघुनाथ॥[3]

लोक विश्वास

लोक जीवन की सामान्य धारा अधिकांशतः परम्परागत मान्यताओ से सचालित होती है। इनका आधार जाति विशेष के सास्कृतिक विकास की विभिन्न दशाओ मे अनुभूत तथ्य होते हैं। सभ्यता का ऐतिहासिक ज्वार ऊपर से निकल जाता है, ये अन्तस्तल में चिपके पड़े रहते हैं। तुलसी ने समकालीन जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को मनोयोगपूर्वक देखा-परखा था। उनमे कुछ उन्हे लोकहित साधक लगे, कुछ हानिकारक। उन्होंने उनका विवेकपूर्वक त्याग अथवा ग्रहण करने के लिए लोगो को सावधान किया—

(१) अंधविश्वास—बहराइच मे गाजी मियाँ की दरगाह की जियारत से कुष्टनाश, पुत्र प्राप्ति, नेत्रलाभ विषयक लोकमान्यता का खडन—

लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब लाय।
कब कोढी काया लही, जग बहरायच जाय॥[4]

(२) सती प्रथा का विरोध—पति के मरने पर उसकी चिता मे स्त्रियों के

---

१ कवितावली, ५।१२।

२. 'दाढ़ीजार' स्त्रियों द्वारा पुरुषों के लिए प्रयुक्त एक गाली है, जिसका अर्थ है 'जिसकी दाढ़ी जला देने योग्य हो।' मध्यकाल में मुसलमानों के घोर अत्याचार से क्षुब्ध होकर हिन्दू स्त्रियों ने यह शब्द गढ़ा या आक्रोश व्यक्त करने के लिए, कालांतर में इसका प्रयोग अत्याचारी, अनिष्टकारक अथवा विरोधीमात्र के लिए होने लगा।

३ दोहावली, ४०४।

४. दोहावली, ४९६।

आत्मदाह की मध्यकालीन राजपूतों में प्रचलित प्रथा उन्हें अमानवीय एवं मर्यादा-हीन प्रतीत हुई। उन्होंने स्त्रियों को इससे विरत होकर कुलशील का पालन करते हुए साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने की सीख दी।

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥[1]

इसके अतिरिक्त लोकविश्वास, निष्ठा, सदाचार आदि सद्गुणों के वर्धक और लोकधर्म की रक्षा के सहायक प्रतीत हुए उनका उन्होंने समर्थन ही नहीं किया वरन् उसके पोषण निमित्त उपयुक्त अवलम्ब भी प्रदान किये—

(३) **शकुन विचार**—यात्रा, मांगलिक कार्य, इष्टानिष्ट ज्ञान आदि के लिये शकुन विचार की प्रथा अत्यंत पुरानी है। इसके लिये लोगों को ज्योतिषियों का सहारा लेना पड़ता था। तुलसी ने रामभक्तों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये 'रामाज्ञाप्रश्न' की रचना की और उसकी प्रयोग विधि का भी निर्देश कर दिया—

सुदिन सांझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन विचारब चारु मति, सादर सत्य सनेम ॥[2]

शकुन विचार का इससे अधिक सरल रूप 'रामशलाका' में प्रस्तुत किया गया, जिसका उपयोग मात्र अक्षरज्ञान रखने वाले भी कर सकते हैं।

(४) **भीतिपूजा**—गाँवों में स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर दीवारों पर देवी-देवताओं के चित्र बनाकर पूजती हैं। लोकमानस में भक्ति की प्रतिष्ठा के लिये तुलसी को यह प्रथा उपयोगी जान पड़ी। इसलिये उन्होंने इसकी हिमायत की—

अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीति ॥[3]

साहित्य साधना में लोक तत्त्व

प्रतिपाद्य विषय की भाँति ही उसकी अभिव्यंजना में भी तुलसी ने लोक-तत्त्व को महत्त्व दिया। धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्य की रचना परम्परा से संस्कृत में होती आ रही थी। किन्तु काल-प्रवाह में यह भाषा लोक सम्पर्क से दूर जा पड़ी थी। तुलसी को लोकोत्थान के लिये जन-जन तक अपना संदेश पहुँचाना था। इसलिये इसके प्रति आदरभाव रखते हुये भी उन्होंने लोकभाषा

---

१. दोहावली, २५४।
२. रामाज्ञाप्रश्न, ७।१।
३. दोहावली, ४५४।

अवधी तथा ब्रजी को अपनाया। साहित्य निर्माण मे यह उनके लोकवादी दृष्टि-कोण का परिचायक है। इसकी भी प्रेरणा उन्हे लोक-जीवन से प्राप्त हुई थी। साम्प्रतिक ग्राम्य भाषा मे उन्हें रामकथा की एक समृद्ध परम्परा का पता चला था—

स्याम सुरभि पय विसद अति, करहिं गुनद सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥[1]

उसमें निहित भावों तथा कलात्मक विशिष्टताओ को देखकर उनकी यह धारणा बन गई थी कि नरवाणी में वर्णित रामचरित देववाणी मे विरचित राम-कथा की अपेक्षा अधिक व्यापक, सोधा सर्वसुलभ, और मधुर है—

हरिहर जस सुर नर गिरहु, बरनहिं सुकवि समाज।
हाडी हाटक घटित चरु, तुलसी स्वाद सुनाज ॥[2]

उनकी कृतियो में ब्रजभाषा और अवधी दोनो का प्रयोग हुआ है। प्रतीत होता है इनमे भी अवधी उन्हें विशेष प्रिय थी—उसके परिनिष्ठित तथा ठेठ दोनो रूपो को अपनाकर उन्होंने इसका सकेत दिया है। ब्रजभाषा का केवल टकसाली रूप प्रयुक्त हुआ। अवधी के देशज शब्दो तथा मुहावरो का बाहुल्य देखते हुए यह अनुमान लगाना असगत न होगा कि बाल्यजीवन में उनका उक्त प्रदेश मे दीर्घ-कालव्यापी तथा घनिष्ठ सबध रहा होगा।

रामकथाश्रित काव्यों की परम्परा मे लोकगीतात्मक शैली के मगल काव्यो—रामलला नहछू, जानकीमगल और पार्वतीमगल—की रचना कर उन्होंने एक नई कडी जोडी। इसमे उनका मुख्य उद्देश्य 'रामचरितमानस' का अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित ग्रामीण समाज के बीच प्रचार करना था, यह कार्य सस्कार गीतो के माध्यम से ही सभव था। इसलिए लोकस्तर पर उतरकर उन्होंने उनके सस्कारों रुचियो और रीतियों के अनुकूल रामकथा के मागलिक प्रसगो को ग्राम-गीतों के साँचे मे ढाला। इनके गाने और सुनाने के सभी प्रकार के लौकिक तथा पारमार्थिक कल्याण का विश्वास दिलाकर उनके प्रति लोकाकर्षण का मार्ग प्रशस्त कर दिया—

जे यह मगल गावहिं गाइ सुनावहिं हो।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो ॥[3]

इनकी रचना भी लोक परिचित 'सोहर' तथा मगल छन्दों में हुई—

---

१. रामचरितमानस, १।१० (ख)।
२ दोहावली, १६७।
३. रामललानहछू, २०।

लोक-रीति का निर्वाह

तुलसी के हृदय में लोक-परम्पराओं के प्रति कितना सम्मान और साहित्यिक रचना मे भी उनके निर्वाह का कितना आग्रह था, इसका संकेत इससे मिल जाता है कि राम के अनन्य भक्त होते हुये भी रामचरितमानस ऐसे प्रबन्ध काव्य में ही नहीं, पार्वती-मंगल और विनयपत्रिका ऐसे प्रगीत मुक्तको मे भी गणेश वन्दना के बाद ही इष्टदेव की वन्दना की गयी है। इसका महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि उनके समसामयिक कृष्ण भक्तों यहाँ तक कि सूरदास ने भी अपनी कृतियो के मंगलाचरण में मात्र आराध्य देव की वन्दना को स्थान दिया है। तुलसी ने विनयपत्रिका में राजा रामचन्द्र के समक्ष कलि प्रभाव से पीडित मानवता की जो अर्जी पेश की है, उसमे भी तत्कालीन लोक-व्यवस्था मे प्रयुक्त दरबारी शिष्टाचार का पूरी तरह पालन किया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक जीवन मे प्रत्यक्ष परिज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उक्त-पद्धति का विनियोग आध्यात्मिक जीवन में किया गया। उनकी कृतियो मे प्राप्त 'साहेब साहिबनी', 'गरीब नेवाज', 'उमरदराज', 'दरबार' आदि शब्द समसामयिक शासनव्यवस्था से ही लिये गये हैं। विनयपत्रिका के अन्त में स्वीकृति प्राप्ति के लिये 'परी रघुनाथ सही है' का प्रयोग हुआ है। यह शब्दावली भी सरकारी ही है।

लोक सुलभ अप्रस्तुत विधान

तुलसी की भाषा मे जैसी भावगरिमा है वैसा ही उसका कलेवर भी शब्द और अर्थवैचित्र्य से मंडित है। सर्वहित कामना से लिखे गये काव्य का प्रधान गुण सुगमता होना चाहिये, इस पर उनकी दृष्टि बराबर रही। इसलिये उनकी रचनाओ मे अलंकार तथा अन्य काव्य गुणो का विधान अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। काव्य के सारे गुण उनकी वाग्धारा के सहज प्रवाह मे स्वत. सन्निविष्ट होते गये। प्रसाद उसकी मुख्य वृत्ति रही, माधुर्य उनके रसमग्न हृदय के सम्पर्श से और ओज अखंड तेजोमय नायक के प्रताप से। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' की घोषणा करने वाले तुलसी की भाषा कितनी काव्यात्मक और काव्यशास्त्र मे निर्दिष्ट विशिष्टताओं से भरी पूरी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

साधर्म्यमूलक अलंकारो के विधान मे तुलसी की विशेष अभिरुचि रही है। इनकी योजना मे परम्परा तथा प्रयोग दोनो पद्धतियो का योग रहा—पुराने उपमानो को भी स्थान दिया गया है और स्वतन्त्र रूप से नये-नये अप्रस्तुतो की

उद्भावना भी की गई। नये अप्रस्तुतों की यह विशेषता है कि वे प्रायः व्याव-हारिक जीवन क्षेत्र से चुने गये हैं इसलिये प्रगाढ अनुभव से सिक्त हैं। इससे सप्रेषणीयता एव रसोद्बोधन मे चमत्कारिक शक्ति आ गई है।

(१) रूपक

कृषक जीवन—

बरषा रितु, रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।[१]
राम नाम के बरन जुग, सावन भादों मास॥

उत्प्रेक्षा-लोकानुभव—

बिलोके दूरि ते दोउ बीर
मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।
गडत गोड मनो सकुच पक महँ, कढ़त प्रेम बल धीर।[२]
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। सुनत चढी जनु सब तन बीछी॥[३]

(२) उपमा—लोकजीवन

गाडी के स्वान की नाईं माया मोह की बडाई,[४]
छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हो।[५]
× × ×
गुरुहित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाँव पिराने।
सदा मलीन पथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥[६]

ग्राम्य जीवन से ग्रहीत ऐसे असख्य अछूते तथा गूढ़ार्थ व्यजक साम्य विधान तुलसी के गभीर अन्वेक्षण एवं विलक्षण काव्य प्रतिमा के परिचायक हैं।

लोकमत का सत्कार

राम राज्य के रूप मे जिस आदर्श समाज की कल्पना तुलसी ने की है उसमें न्याय, स्वतन्त्रता और सौहार्द की पूरी प्रतिष्ठा है। वर्णव्यवस्था के समर्थक होने से वे समानता के कायल नहीं हैं, किन्तु अपने-अपने कर्तव्यों के

---

१. रामचरितमानस, १।१६।
२. गीतावली, २।६६।
३ रामचरितमानस, २।४६-७।
४. विनयपत्रिका, २५८।
५. वही, २३५।
६. गीतावली, उ०।३६।

पालन मे सबको समान रूप से सुविधा प्रदान करना वे शासन का मुख्य धर्म मानते हैं। यह सर्वविदित है कि उनके उपास्य राम राजा थे और जिस युग मे तुलसी स्वय जी रहे थे, उसमे भी राजसत्ता का स्वरूप अधिनायकवादी ही था। किन्तु रामराज्य और मुगलशासन के आदर्शों मे आकाश-पाताल का अन्तर था। प्रथम का उद्देश्य लोकपोषण था तो द्वितीय का लोकशोषण, एक मे लोकेच्छा का समादर था, तो दूसरे मे पूर्ण अवहेलना। उस स्थिति मे उन्होने प्रजा को अपने अधिकारो के प्रति सजग करने के उद्देश्य से राम द्वारा स्थापित प्रबुद्ध सामन्तीय व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया।

अयोध्या के चक्रवर्ती साम्राज्य के सचालन मे तुलसी ने महाराज दशरथ और उनके उत्तराधिकारी राम को विशिष्ट अवसरो पर 'जनप्रतिनिधियों' और लोकवाणी को समुचित महत्त्व देते हुए दिखाया है। इसके अतिरिक्त उन्हें परपरागत रामकथा मे स्वत ऐसे अनेक प्रसग मिल गये जिनमे लोकमत को यथोचित महत्त्व दिया गया था—

(१) राज्याभिषेक का निर्णय—

राम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के पूर्व दशरथ गुरु मन्त्रियो और सुमन्त को बुलाकर परामर्श करते हैं। उनकी सम्मति प्राप्त करने के बाद ही तद्विषयक घोषणा की जाती है—

जो पाँचहि मत लागे नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका॥[1]

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहहुँ न कुछ ममता उर आनी॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

राम प्रजा के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विनिमय करते हैं और निर्भय होकर अपने विचारो की आलोचना करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। रामराज्य मे विचार स्वातन्त्र्य किस सीमा तक था, यह उसका उदाहरण है—

जौ अनीति कछु भाषहुँ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥[2]

(२) अङ्गद को युवराज बनाना—

बालि बध के अनन्तर सुग्रीव किष्किधा के राजा बनाये जाते हैं, किन्तु अगद के प्रति स्थानीय जनता की व्यापक सहानुभूति देखकर, परम्परा से हटकर राम उन्हें युवराज बनाते हैं। यह कार्य राम ने अपने परम मित्र सुग्रीव की इच्छा के

---

१. रामचरितमानस, २।५-३।
२. रामचरितमानस, ७।४३-३,४,६।

विरुद्ध किया था, इसकी पुष्टि अगद के निम्नाकित कथन से होती है—

कह अगद लोचन भरि बारी । दुहूँ भाँति भई मृत्यु हमारी ।।
पिता वधे पर मारत मोही । राखा राम निहोरन ओही ।।[1]

(३) सीता परित्याग—

सीता वनवास रामकथा की एक अत्यत हृदयद्रावक घटना है। राम ने अपनी परम प्रिया का त्याग, जिसके हरण पर 'महाविरही अतिकामी' की भाँति अर्द्ध-विक्षिप्त हो उन्होंने बनबीहड छान डाले थे और पता लगने पर समुद्र पर पुल बाँधने जैसा असम्भव कार्य सम्भव कर दिखाया था, कितना अतर्दाह सहकर किया होगा। ऐसा आत्मघाती निर्णय उन्होंने सीता के किसी अपराध या चारित्रिक दोष विषयक अपने अनुभव अथवा विश्वास के आधार पर नही किया। न इसके मूल मे अयोध्या के नागरिको या मन्त्रिपरिषद का ही किसी प्रकार का अनुरोध था। हुआ यह कि गुप्तचरो द्वारा दी गई सूचना पर, जिसका आधार एक सस्कारहीन प्रजा द्वारा अपनी स्त्री से झगडते समय कहे गये वाक्य थे। राम के समक्ष लोकमत नही प्रस्तुत हुआ। उनके कानो तक मात्र लोकध्वनि पहुँची थी :—

चरचा चरनि सो सुनि जान मनि रघुराइ,
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ ।।[2]

राजतत्र की तो बात ही क्या, विश्व की किसी जनतान्त्रिक अथवा समाजवादी शासन व्यवस्था मे भी आज तक जनरव को इतना महत्त्व नही मिल सका है।

राम के इस अप्रत्याशित व्यवहार का औचित्य विचारशील जनता के गले के नीचे नहीं उतरा। लोकमानस मे इसकी भयकर प्रतिक्रिया हुई। सीता के माध्यम से जन कवि ने अपने उद्गार प्रकट किये—पुत्र जन्म के उपलक्ष्य मे अयोध्या को रोचन भेजते हुए उन्होने नाई से सदेश कहलाया—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कौसिला माई रे।
नउआ तिसर रोचन लछिमन देवरा पपियवा न जाने
अधरमी न जाने हो ।।

लोकापवाद के भय से राम द्वारा सीता के प्रति किए गये इस व्यवहार को तुलसीदास ने भी घोर अन्याय माना है—

---

१. रामचरितमानस ४।२६-३,५ ।
२ गीतावली, ७।२७ ।

वैरि बधु निसिचर अधम, तजे न भरे कलक ।
झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी साइँ ससक ॥[1]

लोक देवता के रूप में राम की प्रतिष्ठा

स्वामी रामानन्द तथा उनकी परपरा के कतिपय रामभक्तों ने व्यष्टि साधना मे हनुमान का आश्रय लिया था और उनकी स्तुति मे पदो की रचना की थी। किन्तु दास्यनिष्ठा के आदर्श रामभक्त के रूप मे उनको जो महत्व रामचरितमानस और हनुमानबाहुक ने प्रदान किया वह अभूतपूर्व था। सकटमोचन और बदीछोर हनुमान की पूजा का व्यापक प्रचार इसी का परिणाम था।

शिव अथवा रुद्रावतार होने से उनकी मूर्तियो की स्थापना के लिए देवालय निर्माण की अनिवार्यता नही थी, न विष्णु मदिरो की भाँति उनकी पूजा पद्धति का ही झमेला था। किसी भी चौराहे पर, निर्जन या घनी बस्ती के बीच, जगल या वाटिका मे अथवा सडक के किनारे उनकी प्रस्तर मूर्ति रखकर पूजा की जा सकती थी। तुलसी ने स्वय इसी प्रकार काशी मे संकटमोचन हनुमान की स्थापना कर मार्गदर्शन किया था।

हनुमान शक्ति के देवता हैं। अतः उनके मदिरो के साथ अखाडो की भी स्थापना हुई। जातीय जीवन मे शौर्य के विकास के लिये इस प्रकार की व्यवस्था तुलसी के ही मानस की उपज हो तो कोई आश्चर्य की बात नही। संभवतः इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर समर्थ गुरु रामदास ने अध्यात्मसाधना के लिये राममदिरो और बलोपासना के निमित्त हनुमान मदिरो का महाराष्ट्र मे एक जाल सा बिछा कर जन-जागरण के सफल अभियान का सूत्रपात किया था। हनुमान तत्व में तुलसी ने शैव तथा शाक्त सिद्धातो का पर्यवसान कर उक्त साधनाओ मे आस्था रखने वाले लोगो को भी रामभक्ति की ओर आकृष्ट किया। इससे उसका देशव्यापी प्रचार हुआ।

लोकशिक्षा के सशक्त माध्यम-रामलीला का प्रवर्तन

सास्कृतिक तत्वो की गरिमा अक्षुण्ण रखने के लिये महापुरुषों की जीवनगाथा *का रूपको या जन-नाट्यो द्वारा प्रदर्शन प्राचीन काल से ही लोकशिक्षा* का एक सशक्त माध्यम रहा है। रामोपासना के क्षेत्र मे इसकी परंपरा तुलसीदास के पहले से चली आ रही थी। 'भक्तमाल' मे मानदास द्वारा विरचित एक नाटक

---

१. दोहावली, १६६।

का उल्लेख है, जो समवतः रामलीला के मचन की दृष्टि से ही लिखा गया था— सबद्ध पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

रामायन नाटक की रहस, उक्ति जुक्ति भापा धरी।
गोप्यवेलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी॥

किंतु जैसा इन पक्तियो से ही स्पष्ट है, उसका प्रतिपाद्य राम की शृंगारी लीला थी। मेरे विचार से यह रसिक रामभक्तों की परपरा में प्रचलित राम की रामलीला के प्रदर्शन के लिये लिखा गया था, जिसकी परपरा उक्त शाखा में अब तक पाई जाती है। ऐश्वर्यपरक जीवनादर्श को लेकर सपूर्ण रामकथा पर आधारित रामलीला का प्रवर्तन तुलसी ने किया, अब तक प्राप्त सूत्रों से यह धारणा निर्भ्रान्त ठहरती है। उत्तरी भारत के गाँवो, कस्बो और नगरो मे आश्विन तथा कार्तिक मास मे रामलीला की जो धूम दिखाई देती है, उसका मुख्य श्रेय तुलसी को ही है।

लोक सेवा का अन्यतम साधन—समन्वय भावना

भारत विभिन्न सस्कृतियो, धर्मों तथा संप्रदायो का देश है। उनके पारस्परिक मतभेद प्रायः स्थूलसंघर्षों के कारण रहे हैं। अत. यहाँ के सामाजिक जीवन को सुख-शांति मय बनाये रखने के लिये समय-समय पर आविर्भूत महापुरुषो का प्रयास विभिन्नता मे एकता तथा विषमता मे समता के सूत्रो का अनुसधान एव उपस्थापन रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, शकराचार्य, रामानुज और रामानन्द उसी अखड परपरा के प्रकाशस्तम हैं। तुलसी ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा तथा मैत्री भावना से उसे आगे बढ़ाया। इनकी समन्वय साधना का आधार बनी—रामभक्ति। सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में व्याप्त सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विरोधो के कारणो का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करके अपनी रचनाओ मे उनके यथोचित समाधान प्रस्तुत किये। शैवो-वैष्णवो, निर्गुणो-सगुणो, लोक-वेदवादियो, कर्म-योग-ज्ञान मार्ग के साधकों, द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतानुयायियो, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गों के पारस्परिक द्वद्वो के शमन के लिये उन्होने अधिकारी पात्रो के प्रामाणिक विचारो की योजना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने रामतत्व की व्याख्या एवं प्रस्तुति जिस विराट् फलक पर की उसके अतर्गत सारे विरोध स्वतः विलीन हो गये। विच्छिन्न लोकजीवन को जोडने की यह प्रक्रिया सभी दृष्टियो से उपकारक सिद्ध हुई। यह तुलसी की ही दीर्घदर्शिता का प्रसाद था कि उत्तरी भारत मे शिवकाँची-विष्णुकाँची का दृश्य प्रस्तुत होने की नौबत नही आई।

ज्योतिर्मय आकाश की अपेक्षा जीव सकुल धरती, दिव्य साकेत की अपेक्षा अयोध्या को अधिक महत्व देकर तुलसी ने सगुण साधना के क्षेत्र मे लोकवादी विचारधारा को नई चेतना प्रदान की। मानव को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि, मानव जीवन को देवो के लिये भी स्पृहणीय और उसका कर्म-क्षेत्र ससार तथा अपनी आविर्भाव भूमि भारत को वदनीय बताकर उन्होने लोकजीवन की महत्ता बढाई। अद्वैतवादी सन्यासियो[1] गोरखपथी योगियो तथा निर्गुणमार्गी सतो ने जागतिक जीवन की विगर्हणा कर उसके प्रति जनता मे जो विरक्ति की भावना फैलाई थी, तुलसी ने उसका जनक जैसे ब्रह्मविद्या के आचार्य द्वारा प्रतिवाद कराया और राम ऐसे नररत्न की क्रीडास्थली भवसागर का मुक्तकठ से गुणगान किया—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक विधि बड नागर ॥[2]

अनादि अनत परमात्मा की सृष्टि, ससार के सौंदर्य, माधुर्य और चिरतनता पर तुलसी स्वय भी मुग्ध थे—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे।

"इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मलायतन कलियुग को भी मूर्धन्य स्थान दिया। लोकोद्धारक राम का सस्पर्श पाकर देशकाल सभी तर गये—

कलियुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर विस्वास।
गाइ राम गुन गन विमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥

इस प्रकार लोकालय का महत्व प्रतिपादित कर उन्होने समकालीन वातावरण से विपण्ण जनता के हृदय मे लौकिक जीवन के प्रति अनुराग जगाया और स्वत्वो की रक्षा के लिये उसे प्रकारान्तर से भौतिक परिस्थितियो से सघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित किया—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

तुलसी की अपनी दृढ धारणा थी कि लोकसेवक का मुख्य कर्तव्य जनरुचि का परिष्कार और उन्नयन होना चाहिये, अधानुसरण नही। लोक के रग मे रँगजाने को वे अध:पतन की पराकाष्ठा मानते थे, कारण कि समूहानुगामी मनुष्य का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य विलीन कर पशुत्व मे परिणत हो जाता है।

---

१. झूठा है झूठा है झूठा सदा सब सत कहत जो अत लहा है।
जानकी जीवन जानि न जान्यो तो जानि कहाय के जान्यो कहा है। कवि, ७।३६

२. जानकीमंगल, ४७।

इसी से उन्होने समकालीन लोकजीवन के विविध क्षेत्रो मे व्याप्त लोकधर्म विरोधी प्रवृत्तियों, रीति-रिवाजो, आचार-विचारो तथा उनके पुरस्कर्ताओं की खोलकर आलोचना की। जैनश्रावक,[1] भगवान बुद्ध,[2] अद्वैतवादी संन्यासी, नाथ पंथी सिद्ध,[3] अलखिया संत,[4] सूफी फकीर और निर्गुणियाँ संत,[5] यवन शासक और उसके गण, राजे महाराजे, दरबारी कवि,[6] ढोंगी साधु,[7] पडे और पुरोहित,[8] परोपदेशकुशल पंडित,[9] और बात की खेती करने वाले वक्ता प्रवक्ता, [10] सब पर उनका निर्मम प्रहार हुआ। जो भ्रातृद्रोही तथा नैतिकताहीन सुग्रीव और विभीषण के पक्षधर अपने इष्टदेव की भी चुटकी लेने से नही चूका वह लोक प्रवंचको को कैसे छोड सकता था। इस स्पष्टवादिता की उन्हे भारी कीमत चुकानी पड़ी। विरोधियो ने उन्हे 'धूर्त', अवधूत, रजपूत, जोलहा, पाखडी, नीच—क्या-क्या नहीं कहा। इतने से ही सतुष्ट न होकर उन्होने तुलसी को दंड देने की योजना बनाई। वामदेव की पुरी इसी काशी मे उन्हे शारीरिक यातना दी गई। किन्तु इन सारे अपमानो का विष वे सहर्ष पीते रहे। चातक की भाँति आराध्य के सारे अत्याचार मौन भाव से सहने मे ही वे प्रेम की पुष्टि मानते थे। यह विषम स्थिति उनके अगाध लोकप्रेम की पराकाष्ठा के लिये सघटित हुई थी,

---

१. ईस सीस विलसत विमल, तुलसी तरल तरंग,
स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गंग। दोहावली ३८३ ॥

२. अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निन्दत निन्दित भयो, विदित बुद्ध अवतार ॥ दोहावली ४६४।

३. पारद प्रगट प्रवंचना, सिद्धिउ नाउं कलंक।

४. हम लखा हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखसि, रामनाम जपु नीच ॥ दोहावली १९ ॥

५. साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरुपहिं भगत कलि, निंदहिं वेद पुरान ॥

६. कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥ रामचरितमानस-१।

७. बंचक भक्त कहाइ राम के, किंकर कचन कोह काम के ॥

८. तुलसीदान जे देत हैं जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवें नहीं, दाता नरकहिं जाइ ॥ दोहावली ५३३ ॥

९. बचन वेष ते जे बने ते बिगरें परिनाम।
तुलसी निज ते जे बने बनी बनाई राम ॥ दोहावली-१५४।

[illegible]—

> [illegible], [illegible] ।
> [illegible], [illegible] ॥

[illegible], [illegible] ।

गोस्वामी तुलसीदास और हरिजन

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भारतीय लोक हृदय मे जो सम्मान है, वह कदाचित् ही किसी देश मे किसी कवि को प्राप्त हो। गत चार शताब्दियो से उत्तरी भारत की आध्यात्मिक विचारधारा के स्वरूप निर्माण में रामचरित मानस और विनय पत्रिका का विशेष हाथ रहा है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तुलसी साहित्य की अर्चना मे भाव पुष्प अर्पित कर कृतार्थ हुआ है।

इधर स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक एव आर्थिक क्रातियो ने राष्ट्रीय जीवन मे एक अजीब उथल-पुथल पैदा कर दी है। राजनीतिक क्षेत्र मे पनपे हुए कुछ विदेशी 'वादो' ने परपरागत सामाजिक मान्यताओ को ध्वस्त करने के साथ ही हमारे साहित्यिक दृष्टिकोण मे भी आमूल परिवर्तन किया है। तुलसी का प्रतिभा-दीप इस प्रबल झझावात मे भी अखड जलता रहा। बदले हुए साहित्यिक वातावरण मे भी उनकी लोकभावना तथा काव्यधारा के अतल गाभीर्य की प्रशसा हुई। राजनीति के क्षेत्र मे युगपुरुष गाधी ने उनके द्वारा चित्रित रामराज्य के आदर्श को अपनाया और जीवमात्र के शोक-सताप को दूर करने वाली अकेली महौषधि राम नाम स्वीकार किया। इस धर्मनिरपेक्ष राज्य मे रामभक्त तुलसी की उत्तरोत्तर बढती हुई लोकप्रियता कुछ सकुचित राजनीतिक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियो को खली। फलतः तुलसी और राम की जन्मभूमि होने का गौरव रखने वाले प्रदेश की विधान सभा मे रामचरित मानस के कुछ आपत्तिजनक कहे जाने वाले अशो को काट कर उक्त भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सदस्य ने सतोष की सास ली। हमारी यह धारणा है कि ऐसे कृत्यो के मूल मे राजनीतिक स्वार्थों के साथ ही कुछ भ्रातियाँ भी होती हैं जो परिस्थिति एव जीवन दर्शन की अनभिज्ञता के कारण अव्यवस्थित मस्तिष्क मे घर कर लेती हैं और अनर्थ चितन से सिंचित होती रहती है। गोस्वामी तुलसीदास पर हरिजन द्वेष का जो कलक मढा जाता है, वह ऐसी ही बुद्धि की उपज है।

हरिजनो के प्रति तुलसी के भाव क्या थे ? ऊँच-नीच की उनकी परिभाषा

क्या थी ? और इसके निर्णय का उनका मानदड क्या था ? उस महाकवि ने अपनी कृतियो मे स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं। स्वानुभूतिनिरूपक रचनाओ—विनय-पत्रिका, वैराग्य सदीपनी और दोहावली मे एतद्विषयक प्रचुर सामग्री है। रामचरित मानस मे भी ऐसे प्रसंगो की कमी नही है, जिनमे उनके उदार सामाजिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

तुलसी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनकी समस्त सामाजिक मान्यताएँ भक्ति सिद्धांत से सचालित होती हैं। उनके सारे नाते राम के संबध से निर्णीत होते हैं। देहाभिमान शून्य साधक का कोई शरीर सबधी नहीं होता। आत्मसबधी ही उसके सच्चे नातेदार हैं—

नातो सबै राम के मनियत,
सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अजन कहा आँखि जो फूटै,
बहुतक कहौं कहा लौं।
सोई है सब भाँति परमहित,
पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होइ सनेह रामपद,
एतो मतो हमारो।

उनके इष्टदेव का भी यही सिद्धांत है। नीच से नीच जाति का भक्त उनकी दृष्टि मे अभ्रान्त कुलाभिमानी अभक्त से अच्छा है। अतएव वही उनका स्वजन है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानौं एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बडाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिय जैसा॥
स्वपच सबर खस जमन जड, पावर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

गोस्वामी जी ने रामभक्तो की गौरवपूर्ण परम्परा से इस मत के समर्थन मे अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं—

कौन धौं सोमजागी अजामिल अधम,
कौन गजराज धौं बाजपेयी।

गज धौं कौन दिच्छित जाके सुमिरत,
लै सुनाम वाहन तजि धाये ॥

पंतिपावन बाजपेयियों और दीक्षितो से पशुयोनि मे उत्पन्न गज की श्रेष्ठता, प्रतिपादित करने का रहस्य तुलसी के भक्ति सिद्धान्त का मर्म समझने से ही खुलता है। गोस्वामी जी के तथाकथित 'ब्राह्मणवाद' के विरुद्ध नारा बुलन्द करने वाले चाहे तो अपना दृष्टिकोण उनकी निम्नांकित पंक्तियो के अजन से दूर कर सकते हैं—

तुलसी भगत सुपच भलो
जपै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को
जहाँ न हरि को नाम ॥
जदपि साधु सबही विधि हीना।
तदपि सम ताके न कुलीना ॥
वह दिन रैन नाम उच्चरै।
यह नित मान अगिनि में जरै ॥

इतना ही नही, नीच कहे जाने वाले वर्ग को ही तुलसी ने समाज का सद्वृत्ति सपन्न पोषक अग माना है। उनकी दृष्टि मे उच्च वर्ग अनेकविधपाक्त प्रवृत्तियो का आश्रय तथा प्रसारक होने से अपेक्षाकृत हेय है—

अति ऊँचे भूधरन पर
भुजगन को अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद
अन्न ऊख औ पान ॥

साराश यह कि वैष्णव धर्म की परपरागत मान्यता के अनुसार तुलसी मत मे जिस किसी शरीर से राममक्ति की साधना हो, वही पूज्य है। जातिभेद की भावना का इस क्षेत्र मे कोई स्थान नहीं है। सेवाभाव के लिए तो कुलाभिमान शून्य निम्न वर्ग का ही जीवन स्पृहणीय है—

जेहि सरीर रति राम सो
सोइ आदरें सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बस
बानर भे हनुमान।

गोस्वामी जी ने अपनी इस जीवनव्यापिनी अनुभूति को सिद्धात क्षेत्र तक ही सीमित नही रखा। उनके प्रसिद्ध जीवनी लेखक, शिष्य और सहचर बाबा

वेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित होता है कि उन्होंने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाईं चरित' का 'सुपच प्रसग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सक्षेप में इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी मे अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन गंगा स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते में उन्हे एक भगी मिला। वह झाऊ का झाड़ू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हें देख कर मार्ग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागतुक व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणो को पहचान नहीं सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानो मे जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पडा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपच को अपने हृदय से लगा लिया। वेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बडा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्‌गद बानी शिथिल तन
व्याकुल प्रेम अधीर।
पूछन आव न बचन तेहि
पुनि पुनि पुलक शरीर॥
पुनि पुनि पुलक सरीर
धीर निधि धीरज त्याग्यो।
उत्कठित चष नीर
नाथ पद प्रेम नुराग्यो॥
प्रेमहिं रह्यो समाइ बिसरि
जनु गो आपन पद।
सुपच हिए भरि भेटि सजल
ह्वै पुनि पुनि गद्‌गद॥
तेहि मिलि कठ लगाइ भले।
पुनि हाथ गहे सग लै जो चले॥

स्वपच से ही उन्हे ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोड़कर जीविका की खोज मे काशी आना पडा है। गोस्वामी जीने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुन अयोध्या भेज दिया। वह

प्रसन्न हो अपनी जन्मभूमि को लौट आया।

गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर वेनीमाधवदास कहते हैं—

ऐसे प्रेम की बलि जाऊं।
भये विकल विदेह सुनतहि
गाँव ही को नाऊं।
लाज धरम उपासना
नित कर्म ही दियो बाउ।
ह्वै सिथिल लोचन सजल
अति प्रेम तन पुलकाउ।
करि पुनीत असनान ठाकुर
पूजिवे को भाउ।
त्यागि सो अनुराग पूजे
सुपच ही के पाउँ॥
'दास' कल्मष ग्रसित जोई
ते क्वहूँ नहिं ठाउँ।
याते अब निज सरन दीजे
चरन सहज सुभाउ॥

रामपूजा को छोड़कर 'सुपच' के चरणों की वन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी वे ही कह सकते हैं जिनके लोकेषणाग्रस्त मानस में राम और तुलसी एक रुढ़िग्रस्त सामतवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चित्र उनकी आँखों से ओझल ही रहेगा।

रामचरित मानस मे, श्रीसंप्रदाय की वर्णाश्रम संबंधी मान्यताओं से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उसके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रबन्ध शैली भी काफी उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अन्य रामायणों, पुराणों तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् संदर्भ मे उद्धृत हैं। फिर संवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण मे विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। खेद की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव मे उस युग प्रवर्तक महापुरुष की 'महिमा मृगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही वचन-बाणों का शिकार बन रही है।

तुलसी का लोकानुभव

गोस्वामी तुलसीदास जनकवि के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। उनके 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' शताब्दियों से उत्तरी भारत के लोकजीवन के मुख्य आध्यात्मिक सबल रहे हैं। साक्षर-निरक्षर, धनी-निर्धन, नागर-गँवार आदि समाज के विभिन्न वर्गों तथा मानसिक स्तरों के लोगो द्वारा उनकी कृतियाँ वेदों की भाँति पूजी जाती रही हैं। दु ख मे उनकी पक्तियो का सहारा लेकर वे हृदय का भार हल्का करते हैं और सुख मे उन्हें दुहरा कर द्विगुणित उत्साह के साथ कर्मक्षेत्र मे उतरने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तुलसी व राम के इस अद्भुत लोकाकर्षण का रहस्य क्या है ? उसमें ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण सहृदय मात्र उनके 'मानस' में अपने मन का प्रतिबिम्ब देखते हैं और उनकी उक्तियो मे अपनी हृत्तत्री की प्रतिध्वनि सुनते हैं ? मेरी समझ में इस सारी सफलता के मूल मे गोस्वामी जी की लोकजीवन के प्रति गहरी सवेदना और उनका प्रगाढ लोकानुभव है। लोकजीवन के सूक्ष्मतम स्वरों तक बैठने और लोकप्रवृत्ति के विभिन्न रूपों के अन्वीक्षण की उनकी एकता अद्भुत है। उनके व्यक्तित्व मे ये तत्व किन मन स्थितियो तथा स्रोतो से सपादित, उनकी कृतियो में किस रूप म अभिव्यक्त और लोकभावना को किस सीमा तक परिष्कृत करने में सफल हुए हैं, यहाँ हम इसी पर विचार करेंगे।

तुलसी का आविर्भाव प्रारभिक काल हुमायूँ के समय मे हुआ। उनके जीवन का अधिकाश अकबर के शासन काल में बीता, सं० १६६२ में अकबर के दिवगत होने पर वे १८ वर्ष तक जहाँगीर की हुकूमत मे जीवित रहे। इस प्रकार मुगल सत्ता के उत्कृष्टतम काल की राज्यावस्था का उन्हे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का सुयोग मिला था। अपनी रचनाओं मे उन्होंने यत्र तत्र इसके बड़े ही मार्मिक विवरण दिये हैं।

एकतन्त्र मुगल सम्राट का शासन सैन्यबल पर आधारित था। प्रजा को अकारण दण्ड देकर आतकित रखना उनकी नीति का मुख्य अग था। उसने अपनी सत्ता को दृढ करने के लिए परम्परागत राज्यवशो को पदच्युत करके उनके

स्थान पर संस्कार तथा व्यक्तित्वहीन राजे नियुक्त कर रखे थे—

गोंड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल ॥
साम न दाम न भेद कछु, केवल दंड कराल ॥[1]

अधीनस्थ अमीर-उमरा तथा राजकर्मचारी उसकी इस नीति को बड़ी कठोरता से कार्यान्वित करते थे—

प्रभु ते प्रभु जन दुखद लखि, प्रजहि सभारै राउ।
करते होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥[2]

रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए उनके मानस नेत्रों के सामने समकालीन मुगल शासन बरबस आ जाता था—

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापहिं कौन मिति ॥[3]

शासन तन्त्र के कर्णधारों के आचरण का वर्णन करते हुए यह भाव अधिक स्पष्ट हो गया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥
बाढे बहु खल चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिनके अस आचरन भवानी। ते निसिचर जानेहु सब अपनी ॥

भारतीय सैन्य नीति के बारूद के अथक प्रयोक्ता अन्यायी मुगलतन्त्र ने तत्कालीन जनजीवन में कितनी विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी थी इसका आभास तुलसी की निम्नांकित पंक्तियों से मिल सकता है—

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ॥

हिंसा के साथ छल और प्रवचना का आश्रय लेकर मुगल शासन कभी हिन्दू राजाओं को आपस में ही लड़ाकर और कभी कपटपूर्ण मेल व्यवहार करके उन्हें आत्मसात् कर लेता था—

---

१. दोहावली, छंद ५५६।
२. वही, छंद ५०१।
३. रामचरितमानस, १।१८३।
४. वही, १।१८३, १८४।१,२,३।
५. दोहावली ५१५।

राजसमाज साज कोटि यदु
कलमित कलुष कुचाल नई है।
साति सत्य सुभ रीति गई घटि
बढी कुरीति कपट कलई है ॥१

शासको का आन्तरिक जीवन वैभव-विलासपूर्ण था। सुरा सुन्दरी के अक में खर्राटे भरते हुए इन्हे प्रजाहित की चिन्ता नही थी, इससे आये दिन दुर्जन पुरस्कृत और सज्जन दडित होते रहते थे—

बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही, सतत सुरानीक प्रिय जेही ॥२

× × ×

कलि कुचालि सुभगति हरनि, सरलै दडै भक्र।
तुलसी यह निहभय भई, बाढी लेत न बक्र ॥३

इस प्रकार हिन्दुओ को सभी सभव उपायो से प्रताडित करके ये उन्हे दास के रूप मे रखना चाहते थे। इस स्वप्न को सार्थक बनाने मे ही उनकी सारी शक्ति लगी रहती थी। रावण की निम्नाकित उक्ति में तत्कालीन शासको की ही मनोभावना व्यक्त होती प्रतीत होती है—

छुधा धाम वामहीन रिपु, सहजहिं मिलिहहिं आइ।
तव मारिहो कि राखिहौं, भली भाति अपनाइ ॥४

निरकुश राजतन्त्र अपनी ऐहिक वासनाओ की पूर्ति तथा हिंसात्मक नीति को कार्यान्वित करने के लिए अनेक अवाछनीय उपायो से धन एकत्र करता था—

मारग मारि महीसुर, मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो ।५

इस भौतिक आपत्ति के साथ ही दैवी प्रकोप से पडने वाले अकालो ने जनता की रीढ ही तोड दी—

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिन अन्न दुखी सब लोग मरै।

चतुर्दिक् बढती हुई बेकारी और बेरोजगारी से बिलखती हुई जनता महात्रास की चपेट में आकर जीवन की आशा ही खो बैठी थी—

---

१. विनयपत्रिका, छद १३६।
२. रामचरितमानस, १।३।१०।
३. दोहावली, छंद ५३७।
४. रामचरितमानस, १।१८१।
५. कवितावली, ७।१७६।

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी ।।
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबधु,
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी ।।[1]

नीचे दारिद्र्य, ऊपर दशानन का क्रूर शासन, यही चक्की के दो पाट थे, जिनके भीतर पडे हुए असख्य मानव ककाल नृशसतापूर्वक पिसे जा रहे थे। उनका आर्त क्रन्दन लोककवि तुलसी की वाणी मे कैसे मुखरित न होता ?

आप बीती

समकालीन लोकजीवन तथा लोक स्वभाव के अध्ययन में तुलसी की जीवन-यात्रा की प्रारम्भिक परिस्थितियाँ बहुत सहायक हुईं। बाल्यावस्था से ही आश्रयहीन हो जाने के कारण दर-दर की ठोकर खाते हुए उन्हे समाज को अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। अनाथ बालको के प्रति बाल-बच्चे वाले जनसामान्य के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के वे शिकार हुए थे। इसकी गूँज उनकी कृतियो में स्थान-स्थान पर सुनाई पडती है—

—घर घर मांगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय[2]
—बारे ते ललात बिललात द्वारे-द्वारे दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ।[3]
द्वार-द्वार दीनता कही पाहि पाहि बार बार, परी न छार मुँह बायो ।[4]
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलन आगे को पेट खलायो ।।
—जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो ।[5]
—चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ ने पेट भर्यो ।[6]
फिर्यो ललात बिनु नाम उदरलगि, दुखहु दुखित मोहि हेरे ।[7]

---

१. कवितावली, ७।९७ ।
२. दोहावली, १०९ ।
३. कवितावली, ७।७३ ।
४. विनयपत्रिका, २७५।१ ।
५. कवितावली, ७।७२ ।
६. विनयपत्रिका, छंद २२६।२ ।
७. वही, २२७।३ ।

इस सर्वग्रासी विपन्नता से तुलसी का उद्धार गुरुदेव के श्रीकरों द्वारा हुआ। उन्होंने ही इस अनाथ बालक को शिष्य रूप में स्वीकार कर अपने साथ सूकर खेत में ले जाकर सर्वप्रथम रामकथा सुनाई। सत्संग में इन्हें साधुसमाज की रीति नीति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का सुयोग प्रदान किया—

"पर्यो लोक रीति में पुनीत प्रीति रामराय

मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।[1]

यौवनावस्था में ही गृहस्थाश्रम त्याग कर इन्हें पुनः वैराग्य धारण करना पड़ा और फिर आजीवन यही वृत्ति रही। इन दोनों स्थितियों में जीवनयापन करते हुए इन्हें तत्कालीन लोकजीवन के विविध पक्षों के सूक्ष्मान्वेषण का अवसर प्राप्त हुआ। साधुवेश में इन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशों का पर्यटन किया—

'अगणित गिरि कानन फिर्यो बिन आगि जर्यो हौं।

पर्यटन में विधर्मियों द्वारा भ्रष्ट किये जाते हुए हिन्दू तीर्थों और मन्दिरों की दयनीय स्थिति को देखकर इन्हें अपार कष्ट हुआ—

"तुलसी देवल देव के, लागे लाख करोरि।

काग विचारे हगि भरे, महिमा भई कि थोरि।[3]

यह तो हुई विधर्मियों की बात, स्वधर्मियों का आचरण और भी लज्जाजनक था। काशी में रहते हुए इनकी बढ़ती ख्याति एवं पंडितों के विरोध का कारण बन गई, वे द्वेषाग्नि से जलने लगे। इन लोगों ने मौखिक विरोध करने तक ही सीमित न रहकर इन्हें शारीरिक यातना देने तक की धृष्टता की और इनके संबंध में नाना प्रकार के प्रवाद फैलाये—

गाँव बसत वामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
आधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठसाखि सिहोरे।।[4]
साधु जाने महासाधु खल जाने महाखल
बानी झूठ साँची कोटि उठत हबूब है।[5]

---

१ हनुमान बाहुक-४०।
२ विनयपत्रिका २६६।२।
३. दोहावली, ३८४।
४. विनयपत्रिका ८।३-४।
५ कवितावली, ७।१०८।

इन झंझावातो का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए इनकी साहित्य साधना का दीपक अमद प्रकाश बिखेरता रहा—इस विश्वास से कि अन्धकार का अन्ततः नाश होगा और विरोधियो को अपनी करनी का फल मिलेगा—

"कासो के कटक जेते भये, ते सबै फल पाइहैं आपनो कीयो।
आजु की कालिह् परौं कि नरौं, सब जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो।"[1]

इस प्रकार भूमिष्ठ होने के क्षण से लेकर अन्तिम काल तक विपरीत परिस्थितियो तथा समाजविरोधी तत्त्वो से संघर्ष करते हुए उन्होंने लोकजीवन का यथार्थ रूप देखा था। सजातीय और विजातीय, स्वजन और परजन—गँवार और नागर सबके स्वार्थपूर्ण आचरण से ऊबकर एक स्थान पर वे कहते हैं—

ग्रहवाली काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रवीन।
काल क्षेप केहि विधि करहिं, तुलसी खग मृग मीन॥[2]

गोस्वामी जी वीतराग महापुरुष थे। वे सासारिक मायाजाल से दूर रहकर उदासीन भाव से कालयापन करते थे। उनका स्वय कथन है—

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम राम को लेत निते हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितैहौं॥[3]

इतने पर भी समाजकल्याण के नामधारी ठेकेदार उन्हें तग करते थे, उन पर तरह-तरह की फब्तियाँ कसते थे, जिससे कभी-कभी वे तिलमिला उठते थे। आलोचको की अभ्यर्थना मे ये शब्द उनके मुँह से इन्ही परिस्थितियो मे निकले होंगे—

"धूत कहै अवधूत कहै रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगारि न सोऊ॥"[4]

अपनी तरह उन्होंने अन्य अनेक सुकृतियो की महिमामृगी खलो के वाक्य-बाणो से विद्ध होती हुई देखी थी, अतः उनके द्वारा निरूपित लोकजीवन मे लोकस्वभाव की यह विशेषता छूटने नही पाई।

तात्विक दृष्टि से गोस्वामीजी 'सीयराम मय सब जग जानी' के समर्थक थे, समस्त चराचर जगत् को रामलीला मे अन्तर्हित तथा समस्त जागतिक प्रपचो मे रामलीला का ही दर्शन करते थे किन्तु लोकव्यवहार मे उसके सत् तथा असत् दो पक्षो का अस्तित्व स्वीकार करते हुए 'राम' और 'रावण' को उनका प्रतीक

---

१. कवितावली, ७।१७६।
२. दोहावली, ४०४।
३-४ कवितावली, ७।१०२, ७।१०६।

मानते रहे। सृष्टिरचना मे इनका अनिवार्य एव युगवत् अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक सच्चे लोकसग्रही महापुरुष की भाँति वे लोकमर्यादा की रक्षा मे सतत सावधान दिखाई देते हैं। उनका मत है—

जड चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥[1]
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जननि एक जग जलधि अगाधू ॥[2]

'जडचेतन' का ज्ञान तुलसी ने भले ही शास्त्राध्ययन से प्राप्त किया हो किन्तु 'साधु-असाधु' का परिचय उन्हें व्यापक लोक-पर्यवेक्षण से मिला था। शास्त्रो मे उनकी स्वभावगत विशिष्टताओ का जो विवरण पाया जाता है उसकी पुष्टि उन्होने व्यक्त ससार को खुली आँखो से देखकर और उसके शीत उष्ण झकोरो का प्रत्यक्ष अनुभव करके की थी। उनकी कृतियो मे समकालीन जनजीवन के जो सटीक तथा सजीव चित्र मिलते हैं, वे इसी के परिणाम हैं। इन्होंने कहीं-कही प्राचीन कवियो तथा शास्त्राचार्यों की उक्तियाँ सामान्य हेर-फेर के साथ रख दी हैं। ऐसे स्थलो को देखकर यह आशका नहीं होनी चाहिए कि वे अनुभव तो पूर्व पुरुषो के हैं तुलसी के अपने नही। हमारी धारणा है कि ऐसे प्रसगो मे तुलसी के अनुभव पूर्ववर्ती महापुरुषो के अनुभवो से अभिन्न हैं।

इसके विपरीत इनकी रचनाओ मे ऐसे भी प्रसग आये हैं जहाँ इनके अपने अनुभव परम्परागत आदर्श से विलक्षण हैं। गोस्वामी जी के ऐसे कुछ अनुभव समसामयिक समाज में व्याप्त विषमता, अभाव, पीडा तथा प्रतारणा से सम्बद्ध हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक तथा आदर्शवादी भक्त होते हुए भी वे जीवन के कठोर यथार्थ की ओर हमारा ध्यान बराबर आकर्षित करते रहते हैं—

सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल ॥[3]

आज की तरह उनके समय मे भी जनजीवन का मानसरोवर लोलुप तथा शकालु कौओ, अन्धकारधर्मा तथा कपटाचारी बगुलो का अड्डा बन गया था। जो एकाध हँस बच रहे थे वे लुक-छिपकर एकान्त साधे हुए जीवनयापन कर रहे थे। सारा वातावरण विषाक्त हो गया था। ऐसे युग मे सज्जनो का तिरस्कार और दुष्टो का अभिनन्दन होना स्वाभाविक था—

---

१. रामचरितमानस, १।६।
२. वही, १।५-६।
३. दोहावली, ३४७।

सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है ।[1]

जिस स्थिति में सामारिक झमेला से दूर रहने वाले तुलसी ऐसे वीतराग सन्त के हृदय के ये उद्योग प्रकट हुए थे उस समय जनसामान्य की क्या दशा रही होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रगाढ अनुभवपूर्ण उक्तियाँ उनकी कृतियों मे भरी पडी हैं, कही रामकथा और रामभक्ति निरूपण के प्रसग मे और कही स्वतन्त्र रूप मे इनका प्रकाशन हुआ है। इनकी विवेचना तत्कालीन वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के परिवेश मे की जायेगी।

वैयक्तिक जीवन

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तीन तत्वो—शरीर, मन अथवा बुद्धि तथा आत्मा की सहति से होता है। आदर्श जीवन मे इनका आनुपातिक विकास आवश्यक है। व्यक्ति समाज का मूलाधार है। उसके विकास पर ही समाज का उत्थान निर्भर होता है। गोस्वामी जी इसकी महत्ता से अवगत थे। इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से मनुष्य जीवन को क्षणभगुर तथा मनुष्य के कार्यक्षेत्र ससार को मिथ्या बताया है—

तुलसिदास सब विधि प्रपच जग जदपि झूठ श्रुति गावै।[2]

झूठो है झूठो है झूठो सत कहत जे अत लहा है।[3]

किन्तु व्याबहारिक रूप मे उन्होंने उसकी उपादेयता एव चिरन्तनता स्वीकार की है—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार बिटप नमामहे।[4]

आराध्य की लीलाभूमि भारत मे जन्म लेने का उन्हे गर्व था—सत्कुल और स्वस्थ शरीर बडे भाग्य से मिलता है, यह उनकी धारणा थी—

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म समाज सरीर भलो लहि कै।[5]

मनुष्य कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरक में जाता है—साधन द्वारा मोक्ष की

---

१. विनयपत्रिका, १३६।५।
२. विनयपत्रिका, छद १२१।५,
३. कवितावली ७।३९।
४. रामचरित मानस ७।५
५ कवितावली, ७।३३।

भी प्राप्ति इसी शरीर से होती है। जो इसे प्राप्त कर परलोक नहीं सुधारता वह अभागा है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी॥
साधनधाम मोक्ष के द्वारा। जो न पाइ परलोक सँवारा॥
सो परंत दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ॥[1]

विषयासक्ति मनुष्य के आत्मोत्थान मे सर्वाधिक बाधक है। माया की शक्तिशाली सेना से पराजित जीव पराधीन होकर अपना स्वरूप भूल जाता है और नाना संसृति क्लेश सहता है—

ब्यापि रहेउ संसार महुँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखण्ड॥[2]

इनमे काम और क्षुधा सबसे प्रबल है। ये मनुष्य को अंधा कर देते हैं—

तुलसी यहि जग आइके, कौन भयो समरत्थ।
कंचन और मन पर कौन पसार्‌यो हत्थ॥[3]

पेट की माया अपरम्पार है। इसे ही भरने के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उद्यम और निकृष्ट कर्म मे प्रवृत्त होता है—

किसबी किसान कुल, बनिक भिखारी भाँट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेट की।
पेट को पढत, गुन गढ़त चढ़त गिरि
अटत गहन बन अहन अखेट की।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेट की।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही ते,
आगि बड़वागि ते बडी है आगि पेट की।[4]

इनका अत्यन्ताभाव असम्भव है, अतः परमार्थ साधक को उदासीकरण द्वारा विषयोन्मुखी इन्द्रियों को आराध्य की अर्चना मे संलग्न करना चाहिए—

---

१. रामचरितमानस ७।१२०-१०।
२. वही, ७।७१-क।
३. कवितावली, ७।६६।
४. वही, ७।९६।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥[1]
श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसरु ।
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग रूप भूप सीता बरु ॥[2]

इस दृष्टि से त्रिकाड साधन मे उपासना अथवा भक्ति का अवलम्बन ही सुलभ तथा श्रेयस्कर है । रामनाम का आश्रय लेकर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वह परमात्मा सगुण अथवा निर्गुण—किसी भी रूप की आराधना मे प्रवृत्त हो सकता है—

कलि नाम काम तरु राम को ॥
दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घनधाम को ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता बाम को ॥[3]
"अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥[4]

भक्ति की प्राप्ति के लिए दो तत्त्व अनिवार्य हैं—श्रद्धा और विश्वास, उच्च शिक्षा, ज्ञान, अथवा बौद्धिक विकास नहीं । लोकजीवन मे इसका प्रत्यक्ष रूप स्त्रियो द्वारा प्रतोत्सवो पर की गई भीति पूजा मे देखा जा सकता है—

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति ।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥[5]

साधना के क्षेत्र मे भी अधिकारी साधको का यह अनुभव है कि इन दोनो तत्त्वो के अभाव में सिद्ध महापुरुष भी अन्तस्थ ईश्वर का दर्शन नहीं कर पाते ।

भवानीशकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥[6]

सफल वैयक्तिक जीवन के सयम और सरलता, कष्ट सहिष्णुता, परोपकार, परदुःखकातरता, आदि वृत्तियो से प्रेरित कर्मों का महत्त्व निर्विवाद है । इससे आत्मिक शक्ति का विकास होता है । इनमे सुसज्जित सदाचारी एव आस्तिक

---

१. रामचरितमानस, ७।१३० ।
२. विनयपत्रिका, छंद २०५ ।
३. वही, छ० १५६ ।
४. रामचरितमानस १।२१।८ ।
५. दोहावली, छं० ४५४ ।
६. रामचरितमानस, मंगलाचरण (बाल काण्ड) श्लोक २ ।

व्यक्ति के द्वारा ही पाशविक वृत्तियो का नियत्रण सभव है। ऐसा एक व्यक्ति अपने आत्मबल से वडी से बडी भौतिक शक्ति को पराजित कर सकता है।

महा अजय ससार-रिपु जीति सकइ सोइ बीर।
जाके असरथ होइ दृढ सुनहु सखा मति धीर ॥[1]

इस प्रकार उत्कर्ष लाभ कर लेने पर भी सभावित व्यक्ति को स्वार्थी सिद्धान्तहीन लोगो द्वारा की गई प्रशसा तथा दिये गये सम्मान से सदैव दूर रहना चाहिए, अन्यथा ये उसके द्वारा अर्जित साधन-सपत्ति को क्षण भर मे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगे—

तुलसी भेडी की धँसनि, जड जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ अपान ॥[2]

पारिवारिक जीवन

अशस्वरूप जीव का तत्त्वदृष्टि से एकमात्र सम्बन्धी अशी अथवा ब्रह्म है। परन्तु शरीर धारण करने के पश्चात् लोकजीवन मे उसके अनेक सम्बन्धी हो जाते हैं। ससार मात्र मे उसे इनके प्रति अपने कर्तव्य निभाने पडते हैं। तुलसी ने लोकजीवन की सफलता के लिए इन कर्तव्यो का पालन आवश्यक बताया है किन्तु यह कर्तव्यभावना जब आसक्ति अथवा मोह का रूप धारण कर लेती है तब कौटुम्बिक सम्बन्ध आत्मविकास मे बाधक ही नही हो जाते—रागद्वेषमय बन कर नारकीय दृश्य उपस्थित करते हैं और यमपुर का द्वार खोल देते हैं—

—सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह इनहीं ते।[3]
—सुत वित दार भवन ममता निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी।
—जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
....
—अजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौ ॥[4]

परिवार मे सम्बन्ध के आधार पर कोई छोटा होता है कोई बडा। सबके

---

१. रामचरितमानस, ६।८०-क।
२. दोहावली, ४९५।
३. विनयपत्रिका १९८।
४. वही, पं० १४०।
५. वही, पं० १७४।

एक दूसरे से पृथक् सम्बन्धजनित कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं। तुलसी ने समाज मे लोगो को उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्ति मे सजग और कर्त्तव्य पालन में उसी अनुपात से शिथिल होते हुए देखा था—

सास ससुर गुरु मातु प्रभु, भयो चहैं सब कोय।
होना दूजी ओर को सुजन सराहिय सोय॥[1]

उनके समकालीन पारिवारिक जीवन में कितनी विश्रृंखलता उत्पन्न हो गई थी इसका निदर्शन रामचरितमानस के उत्तर काण्ड के कलियुग वर्णन प्रसग मे किया गया है। इससे कौटुम्बिक सम्बन्धो के पारस्परिक व्यवहार-विषयक उनके सूक्ष्म निरीक्षण का पता चलता है—

पिता-पुत्र : सुत मानहिं मातु पिता तबलौं।
अबलानन दीख नही जब लौ।
ससुरारि पियारि लगी जबते।
रिपु रूप कुटुम्ब भये तबते॥

पुरुष : कुलवति निकारहिं नारि सती।
घर आनहिं चेरि निबेरि गती।[2]

स्त्री : गुन मदिर सुन्दर पति त्यागी।
भजहिं नारि परपुरुष अभागी।[3]

इस विश्रृंखलता का मुख्य कारण था पारिवारिक जीवन के मूलाधार—सहानुभूति, प्रेम, त्याग आदि वृत्तियो का क्रमशः ह्रास और विधर्मी सस्कृति के प्रभाव से विलासिता एव तज्जन्य चरित्रहीनता का विकास।

सामाजिक जीवन

तुलसी ने समसामयिक समाज की पतनोन्मुखी स्थिति का हृदयद्रावक दृश्य अनुभव नेत्रो से ही नही स्थूल चक्षुओ से भी देखा था। हिन्दू जीवन के मेरुदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था का ह्रास हो चला था। लोक-वेद-मर्यादा को तिलाजलि देकर लोग स्वेच्छाचारी हो रहे थे—

"आश्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने-अपने रग रई है॥[4]

---

१. दोहावली, छं० ३६१।
२. रामचरितमानस, ७।१०१-४,५,३।
३. वही, ७।९९ क, ४।
४. विनयपत्रिका, छं०

समाज के पथप्रदर्शक ब्राह्मण-क्षत्रिय, सभी, अपने उच्च आदर्श से गिर चुके थे—

"विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ वृषली स्वामी॥[1]
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

तथाकथित निम्न वर्ण की जागृति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

"बादहिं सूद द्विजन सन, हम तुमसे कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि॥[2]

१६वी शती के भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप निर्गुण सम्प्रदाय मे परिगणित तथा पिछड़ी जातियो के सन्तो का प्राधान्य हो चला था। ये गुरु रूप मे ब्राह्मणो द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
ते बिप्रन सन पाँव पुजावहिं, उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥[4]

इस गिरे हुए समाज मे आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल फराल किये मनुजा।
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥[5]
\+ \+ \+
मारग सोइ जा कहँ जो भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
सोइ सयान जो परधन हारी।
करइ पखंड सो बड आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥[6]

जीवन की सामान्य पगडंडियों पर चलने वाले लोगो की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिको तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया मे रम गई थी—

---

१. रामचरितमानस ७।१०० क-८।
२. रामचरितमानस ७।९८ क-२।
३. वही, ७।९९ ख।
४. वही, ७।१०० क ५-७।
५. वही, ७।१०२-३।
६. वही, ७।९८-३,५,६।

"परतिय लंपट कपट सयाने ।
मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदवादी ज्ञानी बर ।
देखा मैं चरित्र कलियुग कर ।।'[1]

जहाँ पढ़े लिखे लोगो की यह दशा थी वहाँ अनपढ रूढिग्रस्त जनता भेड़िया-घसान मे कैसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर खेत मे बसते हुए उन्होंने इस विवेकहीनता का नग्न दृश्य अपनी आँखो देखा था। बहराइच के सैय्यद सालार की दरगाह की जियारत करने वाली अन्धविश्वासी जनता के आचरण मे—

"लही आँखि कब आधरे, बाँझ पूत कब पाय ।
कब कोढी काया लही जग बहराइच जाय ।।[2]

इस काल की शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर अर्थोपार्जन अथवा उदर-पोषण मात्र रह गया था—

मातु पिता बालकन्ह बोलावहि
उदर भरइ सोइ जतन सिखावहिं ।।[3]

पेट ही को पढत गुन गढत चढत गिरि
अटत गहन बन अहन अखेट की ।[4]

अतः शिक्षको की दृष्टि शिष्य की गाठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी, ग्रन्थिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

"हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।
सो गुरु घोर नरक मँह परई ।।'[5]

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी। उनमे वैराग्य वृत्ति का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था। एक घर छोडकर अनेक घर बसाने के फेर में पडकर वे विषयसेवन मे मग्न हो रहे थे—

"बहु दाम सवारहिं धाम जती ।
विपया हरि लीन नही विरती ।।

---

१. रामचरितमानस, ७।१०० क-८ १,२ ।
२. दोहावली, ४९६ ।
३. रामचरितमानस, ७।९९,८ ।
४. कवितावली, ७।९६ ।
५. रामचरितमानस ७।९९-७ ।

तपसी धनवंत दरिद्र गृही ।
कलि कौतुक तात न जात कही ॥[1]

निर्गुण धारा के सत प्राचीन आध्यात्मिक मार्गों को छोडकर नये-नये पंथो के प्रवर्तन मे लीन थे—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रन्थ ।
दम्भिन्ह निजमत कल्पकरि प्रकट किये बहुपथ ॥[2]

आचारहीन योगी तथा अघोरपथियो की सिद्ध रूप मे पूजा की जाती थी—

असुभ वेष भूषन धरे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाँहि ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माँहि ॥[3]

रामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रो में व्याप्त दुर्व्यवस्था को देखकर तुलसी ऐसा साहसी तत्वज्ञानी भी किंकर्तव्यविमूढ हो गया था—

कासो कीजे रोप दोप दीजे काहि ? पाहि राम
कियो कलिकाल सब खलल मलक ही ।[4]

धार्मिक जीवन

दिल्ली सल्तनत के स्थापन काल से ही यवन शासन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य इस्लामी सस्कृति तथा धर्म का प्रचार था । तीन सौ वर्षों के इस विधर्मी शासन के अत्याचारो मे पिसते हुए हिन्दुओ के धार्मिक आचार-विचार लुप्त हो गये थे । जब वेद-पुराण का कथन-श्रवण ही दडनीय अपराध हो—ऐसे युग में धार्मिकता का तिरोहित हो जाना स्वाभाविक था । रावण द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य व्यवस्था के वर्णन मे प्रकारान्तर से तुलसी ने इस ओर सकेत किया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिय नहिं माना ।
तेहि बहुविधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥[5]

इस काल मे व्यक्तिगत रूप से इतना चारित्रिक पतन हो गया था कि ब्रह्मज्ञान बघारने वाले ढोगी कौडी के लिए गुरु तथा ब्राह्मणो की हत्या करने मे नहीं हिचकते थे—

---

१. रामचरितमानस, ७।१००-१ ।
२. वही, ७।९७ क ।
३. वही, ७।९८ क ।
४. कवितावली, ७।९८ ।
५. रामचरितमानस, १।१८३ ।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसर बात ।
कौडी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात ॥[1]

हिन्दू धर्म के भीतर प्रचलित विविध मतमतान्तर पारस्परिक विद्वेष तथा स्वार्थ साधन मे ही व्यस्त थे । चारो ओर पाखण्ड और उच्छृखलता का ही साम्राज्य था—

दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार ।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥[2]

लोकाचार

इसी प्रकार लोकरीति तथा लोकाचार के वर्णन मे गोस्वामी जी का दृष्टिकोण पूर्णतया यथार्थवादी रहा है । ऐसे स्थलो पर उन्होंने आदर्श तथा मर्यादावाद के नियम ढाल कर लोकमानस का बडा ही आकर्षक स्वरूप चित्रित किया है । प्रकृत्या वीतराग होते हुए भी सामाजिक जीवन के रागरंजित कोनो तक उनकी अतर्भेदिनी दृष्टि पहुँची थी । गारी को नई रोशनी के लोग अशिष्टता का प्रतीक मानते हैं किन्तु बाबा जी ने मागलिक अवसरों पर उसका आयोजन एव प्रयोग लोकजीवन के लिए आनन्द विधायक तथा श्रेयस्कर बताया है । उनके मत मे क्रोध तथा द्वेष की प्रेरणा से प्रयुक्त गालियाँ ही हानिकर हैं । हृदय से निकली हुई गालियाँ सजीवनी सुरा हैं, जिनका श्रवणपुटो से पान करके मुरझाये हृदय खिल उठते हैं, पोपले और झुर्रियो से भरे गालो पर सेब की लाली दौड जाती है । इनका रसास्वादन अत्यन्त उच्च चारित्रिक धरातल के सुसस्कृत लोग ही कर सकते हैं, तथाकथित सभ्य लोग नही—यह उनका स्पष्ट अभिमत है—

"अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार ।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार ॥[3]

ये अमृत रससिक्त गालियाँ मुण्डन, विवाह आदि के अवसर पर गाई जाती हैं । रामलला नहछू मे इसका वे एक नमूना दे गये हैं :—

"गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ।
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥[4]

---

१. रामचरितमानस ७।९९ क ।
२. दोहावली, ५४८ ।
३. दोहावली, ३२८ ।
४. रामलला नहछू, १८ ।

काहे राम जिव सांवर लछिमन गोर हो ।
कीधो रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥[1]

राम विवाह के अवसर पर बारातियो समेत महाराज दशरथ जनकपुर में भोजन के समय गाई जाने वाली गालियो का रसास्वादन करते हैं—

"जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी ।
ले ले नाम पुरुष अरु नारी ॥
समय सुहावन गारि विराजा ।
हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥[2]

कवितावली मे विनोदवश उन्होने लकादहन के अवसर पर राक्षसियो द्वारा हनुमान को दी गई गालियो को लोकजीवन मे सम्बन्धियो के सम्मान में आयोजित होने वाली भोजन के समय की गाली का ही रूप दिया है—

तुलसी निहारि अरि नारी दै दै गारी कहैं,
बावरे सुरारि बैर कीन्हो रामराय सो ।[3]

इसी प्रकार लोकरीति विषयक उनके अनुभव एव आस्था का भी एक नमूना देना असगत न होगा । प्रसग जानकी मगल का है । विवाह के समय दूल्हा का भाई 'लावा परछता' है, सीता के कोई भाई नही था, इस लोकरीति को पूरा कौन करे । गोस्वामीजी ने परम्परागत मर्यादा की रक्षा के लिए सीता के भाई भूमि-पुत्र मगल का उक्त अवसर पर अवतरण कराया—

प्रिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ ।[4]
दुरी दुरा करि नेम सु नात जनायउ ॥

ग्राम गीतो मे आवश्यकतानुसार इस प्रकार पात्रो के सन्निवेश की परम्परा बहुत है । विवाह में दूल्हा की बहन को गाली गाई जाती है । सालियो और सरहजों का निशाना वही बनती है । प्रचलित रामकथा मे राम के बहन नही थी, इस रिक्तता की पूर्ति प्रशान्त स्वभाव के भाई राम की बहन 'शान्ता'[5] की सृष्टि

---

१. रामललानहछू, २१ ।

२ रामचरितमानस, १।३२९-६,७ ।

३. परवर्ती रामायणो मे लक्ष्मीनिधि सीता के भाई कहे गये हैं । ये महाराज जनक (सीरध्वज) के भाई कुशध्वज के पुत्र थे ।

४. जानकीमंगल, १६६ ।

५. वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में शांता दशरथ की पुत्री कही गयी

करके की गई। राम कलेवा के प्रसगो मे इसका उल्लेख मिलता है—

"बहिन तुम्हारि कहिए साता, सो मुनि सग सिधारी, हमारे राम लला।
तुम्हें गारी मैं केहि विधि देउँ, रसिया राम लला॥[1]

लोक-स्वभाव

लोक स्वभाव से उनका कितना गहरा परिचय था, उसकी प्रकट और अप्रकट छवियो का कितनी पैनी दृष्टि से उन्होंने निरीक्षण किया था, इसका अनुमान उनकी कृतियो मे प्राप्त निम्नांकित उदाहरणो से लगाया जा सकता है—

(१) प्रेम और बैर दोनो मनुष्यो को अन्धा बना देते हैं। इनका प्रकर्ष उनकी बाहरी ही नही आन्तरिक आँखो की भी ज्योति समाप्त कर देता है—

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि बारि॥[2]

(२) मात्र आकर्षक वेष, लोहक व्यक्तित्व और मधुर वाणी से लोगो को प्रभावित करके जो लोग समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं अथवा धाक जमा लेते हैं, कालान्तर मे अन्तःपरिष्कार के अभाव से उनका पतन अवश्य होता है—

बचन बेष ते जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
तुलसी निज ते जो बनै, बनी बनाई राम॥[3]

(३) ससार मे हीनवृत्ति वाले निठल्ले आलोचकों की कमी नही है, एक उक्ति है—

ठाढो द्वार न दे सकैं, तुलसी जे जन नीच।
निदहिं निमि हरिचद को का कियो करन दधीच॥[4]

(४) लोग मानसिक अथवा शारीरिक व्याधियो से ग्रस्त होने पर आरम्भ मे उपचार के लिए सामान्य कष्ट नही सहते, उचित आलोचना पर ध्यान नही देते, समय रहते सुधारना पसद नहीं करते, वही रोग शनैः शनैः

है। किन्तु वायु, हरिवश, तथा मत्स्य आदि पुराणों मे इन्हें लोमपाद की कन्या माना गया है।

१. लोकगीत

२. दोहावली, ४१२।

३. वही, १५४।

४. वही, ३८२

बढकर असाध्य हो जाता है और तब मरीज को अपने साथ ले डूबता है—

लोकरीति फूटी सहै, आजी सहै न कोय ।
जो तुलसी आजी सहै तौ फूटा नहि होय ॥[1]

प्रकृति किसी को क्षमा नही करती ।

व्यावहारिक दृष्टिकोण

व्यक्तिगत रूप से तुलसी सन्त स्वाभावानुकूल शान्ति नीति के अनुयायी थे. लडाई-झगडे मे पडना उन्हे पसन्द न था—

सुमति विचारहिं परिहरहिं, दल सुमनहु सग्राम ।
सकुल गए तनु बिनु भये, साखी जादौ काम ॥[2]

किन्तु अत्याचार की सीमा पार करते देखकर लोकमगल के लिए वे यदा-कदा क्रोध का प्रदर्शन और आवश्यकता पडने पर शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानते थे—

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपण सन सुदर नीती ॥
ममता रस सन ज्ञान कहानी । अरु लोभिहिं सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बए फल जथा ॥[3]

उन्होने मर्यादा पुरुषोत्तम के स्वभाव मे क्रोध के इस लोकोपकारी स्वरूप का बडा ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

लछिमन बान सरासर आनू । सोखौं वारिधि विसिख कृसानू ॥

× × ×

विनय न मानत जलधि जड, गये तीन दिन बीति ।
मूढ जीव माने नही, बिनु भय होय न प्रीति ॥

साहित्यिक आदर्श

तुलसी की साहित्यिक मान्यताएँ उनके विस्तृत लोकानुभव से पूर्णतया प्रमा-

---

१. दोहावली, ४२३ ।
२. दोहावली, ५१६ ।
३. रामचरितमानस ५।५८-२, ३, ४ ।
४. वही, ५।५८-१ ।
५. वही, ५।५७ ।

वित हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य रचना का मूल उद्देश्य ही लोकहित साधन है—

"कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई॥[1]

इसीलिए उन्होंने परम्परा से अध्यात्मविद्या तथा तत्वज्ञान निरूपण में प्रतिष्ठित माध्यम संस्कृत भाषा को छोड़ कर लोकभाषा ब्रजी तथा अवधी में काव्य रचना की।

संस्कृतज्ञ होते हुए भी दुर्लभ 'कुमांच' का त्याग कर सर्वसुलभ 'कामरी' को अपनाने वाला कवि हृदय ही लोकमानस को प्रभावित कर सकता है—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कुमाच॥[2]

लोकरुचि की विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने पूर्व तथा समकालीन साहित्य क्षेत्र में प्रचलित सभी प्रमुख शैलियों में आराध्य का गुणगान किया। इसके साथ ही प्राचीन परिपाटी के लोगों के परितोष के लिए रामचरित मानस के काण्डों के प्रारम्भ में संस्कृत के श्लोकों की भी योजना की।

वेद-शास्त्र की निन्दा करने वाले निर्गुण पंथी सन्तों तथा प्रेमाख्यानकार सूफी कवियों का रवैया उन्हें देश के परम्परागत सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिकूल दिखाई पड़ा। इसीलिए उन्होंने उसका डटकर प्रत्याख्यान किया—

साखी सबदी दोहरा, कहि, किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं वेद पुरान॥[3]

एक स्थान पर तो वे इसी वर्ग के एक 'अलख' जगाने वाले साधु को फटकारते और रामनाम जपने का उपदेश देते हुए देखे जाते हैं—

"हम लखि लखहि हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै, रामनाम जपु नीच॥

इन सामान्य विरोधों के बावजूद उत्तरी भारत में राम-कथा उस समय भी व्यापक रूप से कही और सुनी जाती थी। संस्कृत और परिनिष्ठित ब्रज तथा अवधी में ही नहीं ठेठ लोकभाषा में भी स्त्री-पुरुष रामचरित गाकर परिस्थितियों से जूझने के लिए नई शक्ति और नई प्रेरणा प्राप्त करते थे—

---

१. रामचरितमानस, १।१४ क-९।
२. दोहावली, १९।
३. रामचरितमानस १।१० ख।
४. दोहावली १९।

"स्याम सुरभि पय विसद अति, करहिं गुनद सब पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥[1]

किन्तु इससे लोकहृदय मे उस एकान्तनिष्ठा की स्थापना नही हो पाती थी जो उन्हे राम मे अनुरक्त कर उनकी प्रवृत्ति को एक नया मोड दे सके । तुलसी को यह देख कर दु ख होता था कि लोग 'रामायण' पढते तो थे, किन्तु आचरण मे महाभारत से ही प्रेरणा प्राप्त करते थे । उनकी कथनी और करनी मे महान् अन्तर था—

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति ।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ॥[2]

लोग परात्पर ब्रह्म के अवतार रावणातक राम मे श्रद्धा रखते हुए भी आसुरी प्रवृत्ति और आसुरी शासन से आक्रान्त हो रहे थे । स्वय तुलसी ऐसा स्थितप्रज्ञ एव अडिग विश्वासी भी परिस्थिति की इस करालता को देखकर निराश हो चला था—

राम सुजस कर चहुँ दिसि होत प्रचार ।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार ॥[3]

लोकनायक तुलसी का सन्देश

अपने समकालीन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन मे व्याप्त इस अन्धकार से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन तुलसी की दृष्टि मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की सर्वतोभावेन शरणागति थी । उन्ही का लोकपावन चरित मानव-जीवन के इन सभी पक्षो का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर निराश, हीनभावग्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ जनमानस मे आशा तथा उत्साह का सचार कर सकता था और इस प्रकार आत्मिक विकास के साथ ही सामाजिक उत्थान, तथा राजनीतिक परिवर्तन सघटित करने म वह प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकता था । अपनी कृतियो मे उन्होंने बार-बार रामचरित के इस लोकोद्धारक स्वरूप की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है—

मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।[4]

---

१. रामचरितमानस, १।१०ख ।
२. दोहावली, ५४५ ।
३. बरवै रामायण, ५।३६ ।
४. रामचरितमानस १।१० ।

रघुबसभूषनचरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावही ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावही ॥[1]
ऐसेऊ कराल कलिकाल मे कृपाल तेरे
नाम के प्रभाव न त्रिताप तन दाहिए ।[2]
कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखण्ड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचड ॥[3]

[1]कहने को जहाँगीर किन्तु वास्तव मे नूरजहाँ के शासन मे अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने वाले इस महाप्राण सन्त ने उसी निष्ठा के आधार पर मुगल-साम्राज्ञी की उपेक्षा कर एकमात्र सीता को ही "साहिबिनी" माना—

'मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसत ।
देवि ! क्यो न दास को देखाइयत पायजू ॥[4]

और बडे ही दृढ स्वर मे आततायी मुगलतन्त्र के विनाश की भविष्यवाणी की—

'राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज ।
तुलसी ते दसकध ज्यो, जैहैं सहित समाज ॥

इस प्रकार सर्वग्रासी शासन तन्त्र स आक्रान्त लोकजीवन का अन्तरग परिचय प्राप्त करने के बाद ही वे ऐसे रामरसायन के निर्माण मे समर्थ हुए जिसके सेवन से राजरोगग्रस्त राष्ट्र स्वस्थ हो विधर्मी शासन और सस्कृति से आत्मरक्षा करने मे सफलता प्राप्त कर सका ।

उन्होने राममक्ति के ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की जिसमे लोकमानस को अन्धविश्वास, हीनभाव तथा रूढिवाद से मुक्त करने का सामर्थ्य था—

कृपिन देइ पाइअ परो, बिन साधन सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजै सुभ सोइ ॥
नखत मुहूरत जोग बल, तुलसी गनिय न काहि ।
राम भये जब दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥[5]

और जिसमे कलियुग का सतयुग में बदलने की क्षमता थी—

---

१. रामचरितमानस, ७।१३०-२
२. कवितावली, ७।७९ ।
३. दोहावली, ५६५ ।
४. वही, ७।१३६ ।
५. दोहावली, ४१६ ।
६. रामाज्ञा प्रश्न ४।३ ।

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विस्वास ।
गाइ राम गुन गन विमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥[1]

जनसामान्य में राममक्ति का प्रचार करने के लिए उन्होंने रामलीला की लोकरंजन पद्धति का आश्रय लिया और स्थान-स्थान पर हनुमान मन्दिरों की स्थापना की। रामोपासना में हनुमान तत्व को प्रमुखता देकर उन्होंने अध्यात्म साधना के साथ बलोपासना का मार्ग प्रशस्त किया और जनमानस में यह भावना कूट कूटकर भर दी कि सभी प्रकार की आपत्तियों से त्राण संकट-मोचन केसरी नन्दन ही दिला सकते हैं—

दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को,
सुमिरत हरनहार तुलसी की पीर को।
सीयसुखदायक, दुलारो रघुनायक को
सेवक सहायक है सुवन समीर को ॥[2]

तुलसी की अगाध निष्ठा और साधना का बल पाकर महावीर हनुमान लोक-देवता बन गये और दशरथसुत राम लोकब्रह्म। उनके इष्टदेव, जनमत की तो बात ही क्या, जनरव तक का आदर करने वाले थे। उन्होंने मात्र लोकध्वनि के आधार पर अपनी अग्नि-परीक्षित साध्वी स्त्री सीता को भी वनवास दे दिया था—

चरचा चरनि सों सुनि जानमनि रघुराइ।
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ।[3]
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी स्वामि ससक।[4]

लोकवन्द्य महापुरुष राम की भक्तिवीथी को तुलसी ने राजमार्ग के रूप में परिणत कर दिया। *यह ऐसा प्रशस्त तथा निरापद पथ बन गया* जिस पर धनी-निर्धन, गृहस्थ-विरक्त, निर्गुण-सगुणोपासक, पढ़े-अनपढ़, छोटे-बड़े समाज के सभी वर्गों तथा स्थितियों के लोग सब समय बेखटके चल सकते थे। उनके गुरुदेव ने इस मार्ग की महत्ता की ओर इंगित मात्र किया था—

गुरु कह्यो राम भजन नीको
मोहिं लग्यो राज डगरो सो।

---

१. रामचरित मानस, ७।१०३ क।
२. कवितावली (हनुमान बाहुक) छं० १०।
३. गीतावली, ७।२७।
४. दोहावली, छं० १६६।
५. विनयपत्रिका, १७३।५।

काल प्रवाह मे तुलसी की यह मान्यता उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित होती गई और आराध्य के प्रति उनके अन्तस्तल से निकले अर्चना के स्वर लोकहृदय के हार बन गये।

लोकमानस की सूक्ष्मतम प्रवृत्तियो के गहन अध्ययन और लोकजीवन की अन्तर्धाराओ के प्रगाढ़ परिचय के आधार पर ही भगवान बुद्ध की भाँति उन्होंने जन-सामान्य को लौकिकता तथा आध्यात्मिकता के अतिरेक से बचा कर मध्यममार्गी आचार-पद्धति अपनाने का उपदेश दिया और राम के चरित मे उस आदर्श की पराकाष्ठा दिखा कर उनकी भक्ति मे ही मानव जीवन की सार्थकता प्रतिपादित की। दिव्यसाकेत के स्थान पर 'रामपुर' की प्रतिष्ठा कर उन्होंने एक प्रकार से आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्व दिया था—

घर कीन्है घर जात है, घर छाँडे घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच रहु, रामप्रेमपुर छाइ॥

गोस्वामी जी की यह यथार्थवादी दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी लक्षित होती है। समाज मे प्रतिष्ठाप्राप्त उच्च वर्ग के धनीमानी व्यक्तियो को शोषक और विषाक्त प्रवृत्तियो के प्रसारक तथा अभावग्रस्त और परिश्रमशील किसानों-मजदूरो को लोकपोषक एव लोकहित साधक बताकर उन्होंने जिस अपार सवेदनशील हृदय और अन्तर्भेदिनी दृष्टि का परिचय दिया है, वह आज की समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार कहा जा सकता है। तुलसी का अपना अनुभव इन पक्तियो मे कितनी स्पष्टता से व्यक्त हुआ है।—

अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊख औ पान॥

मानवता के लिए इस क्रान्तदर्शी महाकवि का यही सन्देश था और इसी मे उसके लोकानुभव की सार्थकता थी। ●

मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

वैष्णव भक्ति आन्दोलन की यह एक उल्लेखनीय विशेषता थी कि उसने समस्त पूर्ववर्ती साधना पद्धतियों को आत्मसात् कर श्रद्धा-विश्वास पुरस्सर उपासना का नवीन राजपथ निर्मित किया, जिसमे शास्त्र अथवा परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा अनुभव अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया गया था। यही कारण था जिससे विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायो, जातियो, भाषाओ और आचार-विचार वाले इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उसके सिद्धान्तों का समादर हुआ और कालान्तर मे वैष्णवमत लोक-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो सका। अद्वैतियो का ब्रह्मवाद, कौलो तथा सहजयानी सिद्धों की गुह्य साधना, नाथ पंथियो का कायायोग तथा सूफियो की विरहासक्ति सबको न्यूनाधिक मात्रा मे भागवत धर्म के इस कालजयी प्रवाह मे यथोचित समादर एवं प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इसका मुख्य श्रेय स्वामी रामानन्द के उदार दृष्टिकोण, समन्वयवादी विचारधारा तथा युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व को है। मध्यकालीन निर्गुण तथा सगुण भक्तिधारा उसी विराट् स्रोत से प्रवाहित हुई। नीच-ऊँच की भावना का त्याग[1] साधना मे स्त्री-पुरुषो के समानाधिकार की घोषणा,[2] अन्य देवोपासको के प्रति द्वेष भावना का त्याग,[3] अहिंसा व्रत का पालन[4] जैसे लोकोपयोगी सिद्धान्तो के प्रचार से उन्होंने सामाजिक जीवन में सौहार्द्र तथा सदाचार क प्रसार का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए यह निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कदम था। इसी का परिणाम था कि उनके द्वारा प्रवर्तित तथा शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा संवर्द्धित रामभक्ति और रामनाम मध्यकाल की निर्गुण तथा सगुण दोनों शाखाओं के अन्तर्गत विकसित विविध सम्प्रदायो मे व्यापक रूप से न्यूनाधिक मात्रा मे ग्राह्य हुआ।

हिन्दी में वैष्णव भक्ति का प्राथमिक उद्रेक नामदेव की रचनाओ में मिलता

---

१. वैष्णव मताब्जभास्कर—सं० भगवद्आचार्य, छं० १५०।
२. वही, " छं० १५०।
३. वही, " छं० १८३।
४. वही, " छं० ११३, ११४, ११५, १८२।

है। रामनाम जप का माहात्म्य,[1] राम की भक्तवत्सलता,[2] दशरथपुत्र राजा रामचन्द्र का शरण्य रूप मे वरण,[3] राम के प्रति कान्तासक्ति,[4] रामभक्तों के माला-तिलक तथा मुद्रा युक्त वेष में निष्ठा,[5] श्रीरंग और श्रीराम मे अभेद भाव की स्थापना विषयक पद उन्हें आलवारों और श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यो द्वारा प्रवर्तित रामभक्ति की प्रकृत धारा का साधक सिद्ध करते हैं। एक स्थान पर वे बैरागी[6] को सम्बोधित करते हुए रामनाम गान का संकल्प व्यक्त करते हैं। कहना न होगा कि यों तो वीतराग या वैरागी साधकों की चर्चा रामानन्द के पूर्व लिखी गयी कृतियों में भी मिलती है किन्तु रामोपासक वैरागियों का एक सम्प्रदाय रूप में संगठन सर्वप्रथम रामानन्द ने ही किया था जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 'वैरागी' शब्द मात्र रामभक्त विरक्त संत का बोधक माना जाने लगा। मौलाना रशीदुद्दीन ने 'तजकिरतुलफुकरा' मे इसकी चर्चा की है।[7] 'दबिस्तानुल तवारीख' नामक मध्यकाल के एक अन्य ऐतिहासिक वृत्त मे रामानन्द द्वारा स्थापित वैरागी सम्प्रदाय के नामकरण-कारण, पूजापद्धति, तीर्थाटन तथा वेष के अंतर्गत तुलसीमाला और तिलक का वर्णन करते हुए कबीरदास को उनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध बताया गया है।[8] नामदेव पर स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तों का इतना गहरा प्रभाव उनमें किसी स्तर पर निकट सम्पर्क का व्यंजक है। डा० मोहनसिंह ने उनके बीच गुरु शिष्य सम्बन्ध की चर्चा की है और अपनी इस उपपत्ति के

---

१. नामदेव के हिन्दी पद, पृ० ७९, ११९, १२०
२. वही, पृ० ११८, ११६
३. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ० २५३,
४. वही, पृ० २५५
५. वही, पृ० २५२, २५४
६. बैरागी रामहिं गाऊँगो-वही, पृ० ११४
७. भागवत सम्प्रदाय, पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० २५५
८. 'वैराग शुगत में तलब के मानी होते हैं। यह तारिक दुनिया होते हैं। इनकी इबादत में वह अशआर होते हैं जो विशुन की तारीफ में कहे जाते हैं। विशुन के मजाहिर राम और किशन और उन्हीं को तरह और दूसरे हैं। इनके अशआर को विशुनपद कहा जाता है और विशुन के जो मुकद्दस मुकामात इनसे मनसूब हैं, वहाँ जाते हैं। तुलसी की तसबीह गरदन में लटकाते हैं और उसको माला-तुलसी कहते हैं...हिन्दू मुसलमान जो भी चाहे इस सुलूक को अख्तियार कर सकता है...इन वैरागियों में सबसे ज्यादा शुहरत कबीरदास को हासिल हुई।
क—दबिस्तानुल-तवारीख पृ० १५७-१५८
(मुसलमान हुक्मरानों की मजहबी रवादारी—सय्यद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान, पृ० १५७-१५८ पर उद्धृत)

समर्थन मे स्वामीजी के शिष्य अनन्तानन्द के अन्तेवासी गणेशानन्द द्वारा १५५२ ई० में मथुरा में लिखी गयी एक पुस्तक का उल्लेख किया है।[1] अपेक्षित प्रमाणो के अभाव मे रामानन्द को नामदेव का गुरु स्वीकार करने मे आपत्ति हो सकती है किन्तु दोनो के प्राय: समकालीन होने से रामानन्द ऐसे लोकसग्रही तथा विचरणशील महापुरुष से नामदेव का सम्पर्क लाभ असगत नही कहा जा सकता।

परम्परागत वैष्णवभक्ति साहित्य में बद्धमूल रामोपासना के तत्त्व परवर्ती निर्गुणमार्गी तथा कृष्णोपासक भक्तों को रिक्थ मे प्राप्त हुए। सतो की निर्गुण रामभक्ति के स्वरूप का विवेचन शोध तथा आलोचनात्मक ग्रन्थो मे विस्तारपूर्वक हो चुका है। यहाँ 'गिरिधर गोपाल' की अनन्योपासिका मीराबाई की राम निष्ठा पर उनके कुछ नवप्राप्त पदो के प्रकाश मे विचार किया जायगा। इसके पूर्व कि उक्त पदो के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण किया जाय, उनके निर्माण मे प्रेरक परिस्थितियो का आकलन कर लेना समीचीन होगा।

मीरा के आविर्भावकाल तक राजस्थान मे नाथपन्थ का एकाधिकार समाप्त हो चला था। स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य श्रीकृष्णदास पयहारी ने अपनी अलौकिक सिद्धियो और योगबल से तारानाथ योगी को पराजित कर उसकी रही सही प्रतिष्ठा समाप्त कर दी। आमेर के राजा पृथ्वीसिंह ने पयहारीजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पयहारीजी की उपस्थिति से गलता गद्दी मुख्य आचार्यपीठ बन गया। उनके २४ शिष्यो ने उत्तरी भारत में घूम-घूम कर रामभक्ति के प्रचार-केन्द्र स्थापित किये किन्तु इनका मुख्य कार्य क्षेत्र राजस्थान ही रहा। रामभक्ति मे रसिक शाखा के प्रवर्तक अग्रदास और उनके प्रसिद्ध शिष्य भक्तमालकार नाभादास का साधनास्थल जयपुर के निकट रैवासा नामक आचार्यपीठ था। अग्रदास पयहारीजी के शिष्य थे। इनके ज्येष्ठ गुरुभ्राता कील्हदास पयहारीजी के बाद गलता गद्दी के अधिकारी हुए। उत्तरी भारत के रामभक्तो की अधिकांश परम्पराएं इन्ही दोनो गद्दियो से सम्बद्ध हैं।

मीराबाई और रामानन्द सम्प्रदाय

सोलहवीं शती मे राजस्थान की इस सर्वाधिक सशक्त तथा व्यापक रामभक्ति धारा से मीरा के प्रगाढ परिचय के अनेक प्रमाण मिलते हैं। एक स्थान पर वे गुरु रामानन्द का श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कहती है[2]—

---

१. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन—डा० विनय मोहन शर्मा पृ० १०५।
२. मीरा बृहद् पद सग्रह—स० पद्मावती शबनम, पृ० २२२।

रामजी पधारे धनि आज की घरी।
आज की घरी थो माव री मरी ॥
गुरु रामानन्द अरु माधवाचारज[1] नीमानन्द[2] विसनहरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी पकडि पीवो प्याला प्रेम हरी ॥

उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार मीरा के आविर्भाव के बहुत पहले ये तीनों महापुरुष दिवगत हो चुके थे। अतः इससे यह निष्कर्ष निकालना कि मीरा ने इस पद में उनके अपने घर पधारने का वर्णन किया है, युक्ति संगत न होगा। मीरा ने अपनी कृतियों में कई स्थलो पर श्रद्धेय पुरुषों, सतगुरु तथा इष्टदेव के स्वप्न दर्शन का वर्णन किया है। उपर्युक्त पद उसी भावना से प्रेरित प्रतीत होता है।

मीरा द्वारा स्वामी रामानन्द की गुरु रूप में चर्चा का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र इधर प्रकाश में आया है,[3] जिसका आधार डा० प्रभात की आमेर के 'जगत शिरोमणि मंदिर' के पुजारी प० गिरिधारी लाल द्वारा दी गयी सूचना है। उसके अनुसार उसमे स्थापित 'गिरिधर' की मूर्ति वही है जो मीरा को पयहारी श्रीकृष्णदास के शिष्य देवाजी से प्राप्त हुई थी और उसे देवाजी को स्वय स्वामी रामानन्द ने दी थी। देवानन्द और स्वामी रामानन्द के बीच तीन पीढियो का अन्तर है—रामानन्द, अनन्तानन्द, श्रीकृष्णदास पयहारी, देवानन्द। इस दीर्घकालिक व्यवधान को देखते हुए रामानन्द का देवाजी को स्वय मूर्ति प्रदान करना सामान्यतया समव नहीं जान पडता। मेरी धारणा है कि उक्त सूचना केवल इस रूप मे विश्वसनीय मानी जा सकती है कि देवाजी को रामानन्द द्वारा समादृत 'गिरिधर' की मूर्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। रामानन्द सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा कितनी थी, इसका अनुमान श्री वैष्णव-मताब्ज भास्कर मे कृष्ण जन्माष्टमी व्रत के विधि विधान की व्याख्या तथा उनके प्रशिष्य और

---

१. ये वेद भाष्यकार सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता थे—मीराबाई–डा० प्रभात, पृ० १६६।

२. ये स्वामी रामानन्द के समकालीन सन्त थे।

३. वही, पृ० १६५-११६।

४. मीराबाई (डा० प्रभात), पृ० १६०।
एक बार देवाजी गाड़ी मे बैठाकर उस मूर्ति को ले जा रहे थे। रास्ते में चित्तौड़ में ठहरे। वहाँ मूर्ति स्थापित की। मीरा वहाँ थीं। उन्होंने दासी को भेजा। मीरा उस मूर्ति को महलों में ले गयीं।
वही पृ० १६०।

५. वैष्णव मताब्ज भास्कर (स० भगवदाचार्य) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-व्रत प्रकरण-पृ० १२८-३०।

देवाजी के गुरु के श्रीकृष्णदास नाम से ही लगाया जा सकता है।

देवाजी चित्तौडगढ़ के पुरोहित थे। मीरा से उनकी भेंट चित्तौड मे ही हुई थी। वे अपने समय के प्रसिद्ध सत थे। नाभादास ने 'देवाहित सित केस प्रतिज्ञा राखी जन की'[1] लिखकर उनके भगवत्कृपापात्र होने का सकेत दिया है। प्रियादास ने इस सूत्र को पल्लवित कर चित्तौडगढ चतुर्भुजा जी द्वारा अपने केशों को श्वेत करने और राणा को दर्शन न करने की आज्ञा दण्डस्वरूप देने की घटना का उल्लेख किया है। चित्तौड पर विजय के बाद महाराज मानसिंह गिरिधर की यह मूर्ति आमेर ले आये और महल मे भीतर मदिर बनवा कर उसे स्थापित कर दिया। मानसिंह अग्रदास के शिष्य थे अत. गुरु परम्परा मे समादृत श्री विग्रह की सेवा-पूजा के लिये उन्होने अग्रदास जी के गुरुभाई और उस मूर्ति के पुराने पुजारी देवाजी को चित्तौड मे आमेर से बुला लिया।

रामानन्द सम्प्रदाय से मीराबाई के सम्बद्ध होने का एक अन्य स्रोत उनके द्वारा सत रैदास का अनेक स्थलो पर गुरु रूप मे उल्लेख भी है—

मीरा ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिल्या रैदास।
म्हारो गुरु रैदास है, सजनी म्हारो है।[2]
गुरु मिल्या रैदास जी दीनी ग्यान की गुटकी।[3]
मीरा सरणे राम के म्हाने गुरु मिलिया रैदास।[4]

कुछ समालोचक काल के आधार पर मीरा का रैदास से दीक्षा लेना सभव नही मानते और जिन पदो मे ऐसी पक्तियाँ है उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करते हैं। मीरा की सगुण तथा रैदास की निर्गुण साधना पद्धति मे सैद्धान्तिक विरोध बता कर वे अपने मत का समर्थन करते हैं। किंतु थोड़ा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मीरा तथा रैदास की रचनाओं मे परम्परागत सत मत की हठयोग, भाव-भक्ति, अनुभव-पथ, सगुण-निराकार तथा विष्णु के विभिन्न अवतारो के नाम आदि के प्रति समान रूप से जो आस्था व्यक्त की गयी है और सगुण साकाराश्रित भक्ति के प्रतिपादक होते हुए भी सगुण-निर्गुण से परे प्रियतम की जिस अलौकिक छवि का वर्णन उनकी रचनाओ मे मिलता है, वह साम्प्रदायिक कृष्णोपासको की अपेक्षा निर्गुणिया सतो तथा सूफी फकीरो की प्रेमपद्धति के

---

१. श्री भक्तमाल—रूपकला पृ० ४३० ।
२. मीराबाई—डा० प्रभात पृ०।९५ ।
३. मीरा बृहद् पद सग्रह—पद्मावती शबनम पृ० ८।
४ मीराबाई की शब्दावली और जीवन, बेलवेडियर प्रेस पृ० २०।
५. मीरा बृहद् पदावली, पद्मावती शबनम पृ० ६ ।

अधिक निकट है। ऐसी स्थिति में परम्परया प्रतिष्ठित रैदास और मीरा के गुरु-शिष्य सम्बन्ध को सहसा अमान्य नहीं ठहराया जा सकता।

मीरा का नव प्राप्त निम्नांकित पद इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है—

आजि म्हारे पांवणीया वैरागी जी। जनम सुधारण सतगुरु आया जी॥
आजि सखि म्हारे सुपनो री आयो। संत बधाई कोई ल्याया जी॥
ऊँची चढि हू जोवण लागी। म्हारा सतगुर नजर पराया जी॥
प्रेम के धारे उतरत देख्या। आण पिया राजन आया जी॥
भगवाँसा कपड़ा कर मे डोरी॥ दरसण की बलिहारी जी॥
भाव भगति सूँ करूँ रसोई। प्रीति की झारी भर ल्याऊँजी॥
आज सखी हूँ तो हरख फिरूँ छूँ। सतगुर कांई म्हाने बगसै जी॥
सील संतोष क्रिपा करि दीन्हा। मो उर आनन्द कीन्हा जी॥
पण परसाधी म्हाने सतगुरजी दीन्ही। मो उपरि किरपा कीन्ही जी॥
प्रीति करे म राम पद रज लेस्यूं। म्हारो सीस चरणा सर देस्यूं जी॥
चरण धोइ चरणामृत लेस्यूं। म्हारा पाप बिले होइ जासीजी॥
कर जोड्या रामजी अरज करूँ छूँ। म्हारो जनम सुधारो सतगुर स्वामीजी।
मीरां कहै प्रभुहरि अविनासी। जनम-जनम की मैं दासीजी।[1]

इससे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं—

१. मीरा ने स्वप्न में वैरागी वेष में सतगुर का दर्शन किया।

२. उनका अवतरण प्रेम धारा के माध्यम से हुआ।

३. मीरा ने भाव-भक्ति रूपी भोजन तथा प्रीतिजल से उनका स्वागत सत्कार किया।

४. सद्गुरु ने प्रसन्न हो उन्हें शील संतोष का वरदान और टेक निभाने का आशीर्वाद प्रसाद रूप में दिया।

५. मीरा ने चरणोदक लिया जिससे सारे पाप नष्ट हो गये।

६. प्रस्थान करते समय गुरु रूप में पधारे हुए रामजी से मीरा ने जीवन सुधारने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की और उनके साथ अपने जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध का स्मरण दिलाया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मीरा ने स्वप्न में जिस सतगुरु का दर्शन किया वह वैरागी वेष में था। उसका स्वागत सत्कार भी उन्होंने रामभक्तों की

---

१. भारतीय विद्या मंदिर (बीकानेर) के हस्तलेख संग्रह से संकलित।

परम्परानुमोदित पद्धति से किया।[1] यह सद्गुरु 'रामजी' रहे हों, 'रामानन्द' या रैदास, कोई फर्क नहीं पडता। इसमें देशकाल का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।[2] अन्यत्र 'व्रजनाथ' के साथ मीरा ने अपने 'स्वप्न-परिणय' का उल्लेख भी किया है—

माई म्हातो सुपना माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पन कोट्या जन पधार्‌याँ दूल्हो सिरी व्रजनाथ॥
सुपना माँ म्हातो परण गया पायाँ अचल सुहाग।
मीरा रो गिरधर मिल्या दु ख जनम जनम रो भाग।[3]

रामभक्ति के प्रवर्तक आलवारो तथा आचार्यों द्वारा सेवित श्रीरगनाथ ऐक्ष्वाकुओं के इष्टदेव थे। साम्प्रदायिक साहित्य मे इनका मुक्तकण्ठ मे गुणगान हुआ है। श्रीरगनाथ लक्ष्मीनारायण के प्रतिरूप हैं।[4] मीरा का एक पद इनकी प्रशस्ति मे मिलता है—

श्रीरगजी की नार देखो थाने साँवरो सेठ बुलावै॥
आज की रन वसाँगाँ समदन हृरदे ग्यान विसैखो।
कोकिल भास भरे लखमी जी मधुर बैन गवरी को॥
मीरा कहै मिथुलायन बोसर धन्य भाग केवरी को॥[5]

श्री रगनाथ को, साम्प्रदायिक सगुण रामभक्ति परम्परा के बाहर भी, अपार प्रतिष्ठा थी। यह मीरा के उपर्युक्त पद के अतिरिक्त नामदेव के निम्नाकित पद से भी विदित होता है—

---

१ वैष्णव मताब्ज भास्कर—श्लोक १५२।

२ वैष्णव भक्तों में 'स्वप्नगुरु' की परम्परा प्रचलित होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त महात्मा बनादास को अयोध्या में साधन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वप्न में दर्शन देकर रामकाव्य रचना की प्रेरणा दी थी। इस घटना का विवरण देते हुए वे लिखते हैं—
मिले हैं स्वप्न माँहि कृपा करि दीने वर बढ्यो अनुराग सुने शुभ बानी है।
बनादास गुर भाव माने है गोसाईं जिये ताने मति मेरी बिनुदाम ही बिकानी है।
—उभय प्रबोधक रामायण, गुरुखण्ड पृ० २१

३ मीरा पदावली—(डाकोर प्रति) पद ३६।

४ तुलसीदास ने भी भगवान श्रीरग का आदरपूर्वक स्मरण किया है और उन्हें राम का प्रतिरूप माना है—
बार बार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरग।
पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसग।
—रामचरितमानस, उत्तर० १४ (ख)

५ रा० शो० स० चौपासनी जोधपुर, हस्तलेख सख्या—१०५७।

मैं बऊँरी मेरा राम भतार । रचि रचि ताकऊँ करऊँ सिंगार ॥
भले निंदऊ भले बदऊ लोगु । तनु मनु राम पियारे जोगु ॥
बाद विवाद काहू सिउ न कीजै । रसना राम रसायन पीजै ॥
असतुति निंदा करै बरु कोई । नामे श्रीरग भेटल सोई ॥[1]

श्रीरग अथवा राम क प्रति नामदेव की यह आसक्ति मीरा और कबीर के तद्विषयक उद्गारों के सर्वथा मेल मे हैं ।

मीरा के रामभक्ति सम्बन्धी पद प्रतिपाद्य-विषय के विचार से निम्नांकित शीर्षकों मे रखे जा सकते हैं—

१. रामचरित २ राम की भक्तवत्सलता ३ आत्म प्रबोधन ४. रामशरणागति ५. कैंकर्य निष्ठा ६ रामभजन ७ रूपासक्ति ८ माधुर्य भाव ९. विरह निवेदन ।

आलोच्य पदो का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि मीरा के अत-र्जगत मे राम के प्रति गूढ आसक्ति थी जो समय-समय पर विभिन्न प्रसगों और विविध रूपो मे व्यक्त होती रही । वैष्णवभक्ति के जो सस्कार उन्हें पितृगृह मेडता में चतुर्भुज विष्णु क अनन्योपासक अपने बाबा दूदाजी से प्राप्त हुए थे । उनकी प्रेरणा से वैधव्य और राणा द्वारा दी गयी घोर यत्रणाओं को झेलते हुए वे सत्सग, पूजा और कीर्तन मे लीन रहीं । भाव समाधि मे परम तत्त्व से एका-त्मता स्थापित कर लेने पर श्रीरग, राम, और गिरिधर गोपाल का बाह्य स्वरूपगत भेद जाता रहा । उनके पदों में राम, रघुबर और रघुनाथ के साथ गिरधरनागर, गोविन्द, श्याम और हरि के अभेद भाव से उल्लेख का यही रहस्य है ।

मीरा के कृष्णभक्ति काव्य मे, आराध्य को छोडकर, कृष्णकथा के अन्य किसी का पात्र नाम नही आया है, यहाँ तक कि राधा का भी नहीं। किन्तु राम-भक्ति विषयक उनकी रचनाओ में राम, सीता, और लक्ष्मण के साथ रावण तथा मदोदरी की भी चर्चा है। यह इस बात का प्रमाण है कि कृष्णोपासना मे एकांतिक भाव को महत्त्व देते हुए भी रामभक्ति के क्षेत्र में वे उसकी परम्परानुमोदित दार्शनिक मान्यताओ तथा लोकसग्रही प्रवृत्ति की रक्षा में सजग रही हैं । तत्व-त्रय—ब्रह्म, जीव तथा जगत् के प्रतीक राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति एवं विश्व परितापी रावण की कदर्थना इसी का द्योतक है ।[2]

---

१. नामदेव के हिन्दी पद—स० ४१ ।
२. द्रष्टव्य—मीराबाई के रामभक्तिपरक पद (परिशिष्ट) ।

रामभक्ति साधना में योग-तत्त्व

योग अध्यात्म-साधना का एक अनिवार्य तत्त्व है। ज्ञाता तथा ज्ञेय अथवा साधक एवं साध्य का तादात्म्य उसके अभाव में हो ही नहीं सकता। यही कारण है जिससे विश्व की सभी धर्म-साधनाओं तथा आस्तिक दर्शनों मे उसका महत्त्व स्वीकार किया गया है और उनकी अध्यात्म-चर्चा में किसी-न-किसी रूप मे उसकी व्याप्ति पायी जाती है। भारत की वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार की विचार-धाराओं से प्रभावित शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि मतों ने योग-साधना के विभिन्न तत्त्वों को विविध रूप में अपनाया है। तात्पर्य यह कि भारतीय अध्यात्म-चेतना अनादि काल से योग के प्रकाश-स्तम्भ से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पथ-निर्देश प्राप्त करती रही और अपने दीर्घकालीन इतिहास के किसी भी युग में उसकी उपेक्षा न कर सकी। यह उसके सर्वातिशायी प्रभाव का ही परिणाम था कि त्रिकाण्ड साधना के सभी अंगों ने उसे अपना कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई और कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग के प्रवाह से सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति आप्लावित हो गयी।

मध्यकालीन वैष्णवमत में भक्ति को सर्वोपरि मानकर कर्म तथा ज्ञान को उसका साधन स्वीकार किया गया था। ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख उपादान होने से योग भी एक परिसीमित साधन के रूप में उसमें स्थान पा सका। परिसीमित इसलिये कि योग को स्वतन्त्र अथवा साध्य मानकर चलने वाले योगिनी-कौल-मतानुयायी तथा सहजयानी एवं वज्रयानी बौद्ध सिद्धों द्वारा धर्म के क्षेत्र में फैलाये गये अनाचार और पाखण्ड से समाज में तिरोहित होती हुई धर्म-भावना का ये वैष्णव भक्त प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ-पंथ ने आरम्भ में अपने उच्च यौगिक आदर्शों से इस पतनोन्मुख स्थिति को बहुत कुछ सँभाला था। गोरखनाथ के योग मे हठयोग और राजयोग दोनों सम्मिलित थे। किंतु परवर्ती नाथ सम्प्रदाय में हठयोग का एकाधिकार-सा हो गया। वह ध्यान, धारणा तथा समाधि के अत्यन्त उपादेय तत्त्वों से विरहित हो गया, जो भाव-साधना के लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत करते थे। चमत्कार-प्रदर्शन में फँस-

कर वे योग-शक्ति का प्रयोग लोक-सम्मोहन के लिये करने लगे। इससे समाज में योग के प्रति व्याप्त श्रद्धा का स्थान भय और आतक ने ले लिया। इस प्रकार मध्यकाल के आरम्भ में योग-मूलक सारे पूर्ववर्ती सम्प्रदाय अपने आदर्शों से गिर-कर निर्जीव-से हो गये थे। उनमे उस चेतना तथा स्फूर्ति प्रदायिनी शक्ति का स्पन्दन समाप्त हो चला था, जो इस्लामी शासन तथा सस्कृति के प्रबल आक्रमण का प्रतिरोध करता और पतनोन्मुख समाज का उपयुक्त मार्ग-दर्शन कर नवीन आशाकाक्षाओ का सचार करता।

वैष्णवभक्ति आन्दोलन के प्रथम उन्मेष के समय तक प्रतीत होता है कि इन दुर्बलताओ के बावजूद समाज मे योग-साधना को पर्याप्त समादर प्राप्त था। सभव है, इसका कारण उस काल तक पर्याप्त सख्या मे उच्चकोटि के योगियो की उपस्थिति रही हो, जिनके विचारो तथा आचार-व्यवहार से समाज का वृहदश आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करता रहा हो।

उत्तरी भारत मे वैष्णव भक्ति आन्दोलन के पुरस्कर्ता स्वामी राघवानन्द और उनके लोक-विश्रुत शिष्य स्वामी रामानन्द की उपलब्ध रचनाओ से यह पता चलता है कि उन्होंने अपने युग में लोक-धर्म के रूप में प्रचलित नाथ सम्प्रदाय की योग-प्रवृत्ति का सत्कार कर रामभक्ति साधना मे उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

आरम्भिक रामभक्ति काव्यों मे योग

राममक्ति साधना मे योग तत्त्व का समावेश सस्कृत मे रचित आरम्भिक रामभक्ति काव्यो मे ही हो गया था। इसका विस्तृत साक्ष्य भुशुण्डि रामायण में उपलब्ध है। आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विक-सित भक्ति-परक रामकथा काव्यों म भुशुण्डि रामायण प्राचीनतम है। इसके पूर्व खण्ड में 'सीता' को योगिनी परमाकला कहा गया है,[1] लक्ष्मण को योगी के रूप में प्रस्तुत किया गया है,[2] ज्ञानयोग की महिमा प्रतिपादित है,[3] योगियों की वैराग्यवृत्ति का राम के चरित्र मे उत्कर्ष दिखाकर राम के वैराग्य गुण का वर्णन किया गया है,[4] योग और तन्त्रों में मान्य 'सहजा शक्ति' के ध्यान का

---

१. भुशुण्डि रामायण, पूर्व खण्ड ४७।४६।
२. वही, ५४।१८।
३ वही, ४१३।५७।
४. वही, ४१६।

उल्लेख है।[1] उसके पश्चिम खण्ड में योग, कर्म और ज्ञान साधनाओं में योग साधना की श्रेष्ठता प्रतिपादित है।[2] उत्तर खण्ड में बाह्य कर्मों के द्वारा शरीर को साधने और उसके बाद मानसी भक्ति या मानसी सेवा का विधान है।[3] इतना ही नहीं कुण्डलिनी-जागरण-विधि और सहस्रार-भेदन का भी उल्लेख किया गया है। भक्तिमूलक ग्रन्थ होने के कारण इसके रचयिता ने योग के मूल आधार को ग्रहण कर उसकी स्वमत अनुकूल व्याख्या की है। उसने योग के दो भेद किये हैं—स्वाश्रय और पराश्रय। स्वाश्रय योग ज्ञान है और पराश्रय योग भक्ति। इनसे परे समत्व की साधना का संकेत है। यह समत्वयोग ही महायोग है।[4] भुशुण्डि रामायण पर शाक्त तन्त्रों तथा महायान बौद्ध धर्म की परवर्ती शाखाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सीता को तारा देवी से अभिन्न माना गया है।[5] यह ग्रन्थ परवर्ती राम भक्ति काव्यों का मुख्य उपजीव्य है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तन्त्र और योग साधनाओं का समावेश रामभक्ति धारा में बहुत पहले ही हो चुका था।[6]

अध्यात्म रामायण मुख्यतः वेदान्त का प्रतिपादन करता है किन्तु इसमें भी *योग साधना के तत्त्व पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं।* मुनि अगस्त्य ने राम को साधु पुरुषों के जो लक्षण बताये हैं, वे सबके सब योगियों के हैं। इन लक्षणों में 'यमादि' गुणों का भी उल्लेख है। यहाँ निर्विवाद रूप से योग के आठ अंगों की ओर संकेत किया गया है। अगस्त्य मुनि कहते हैं—"संसार में जो लोग सम्पद्-विपद् में समान चित्त, स्पृहा रहित, पुत्रवित्तादि की इच्छाओं से रहित, इन्द्रियों का दमन करने वाले, शान्तचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओं से शून्य, इष्ट तथा अनिष्ट की प्राप्ति में समान रहने वाले, सङ्गहीन, समस्त कर्मों का त्याग करने वाले, सर्वदा ब्रह्म परायण रहने वाले, यम आदि गुणों से सम्पन्न तथा जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहनेवाले होते हैं, वे ही साधु हैं।"[7] बालकाण्ड

१. वही, ६१४।
२. वही, पश्चिम खण्ड, पृष्ठ ६८।
३. वही, उत्तर खण्ड, पृ० १६।
४. वही, पृ० २१।
५. भुशुण्डि रामायण, उत्तर खण्ड, पृ० २१।
६. वही, (सीता सहस्रनाम) पृ० ४६।२६।
७. अध्यात्म रामायण, अरण्य काण्ड, श्लोक ३६-३६, पृ० ११०।

के आरम्भ में अपने अवतार की घोषणा करते हुए भगवान् स्वयं सीता को 'योगमाया' कहकर सम्बोधित करते हैं।[1] अरण्य काण्ड में भगवान् राम, लक्ष्मण को मोक्ष के साधन का उपदेश देते हुए कहते हैं—बाह्य और आन्तरिक शुद्धि रखना, सत्कर्मों में तत्पर रहना, मन वाणी और शरीरिक संयम करना, विषयों मे प्रवृत्ति न होना"...ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं। ये विशेषताएँ योग-साधना के अन्तर्गत आती हैं।[2] इसी क्रम में आगे चलकर उन्होंने स्पष्ट कहा है—जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त-चित्त, निर्मल हृदय, शान्तात्मा, विमल ज्ञान सम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिजनों का संग अनन्य बुद्धि से सर्वदा उनकी सेवा में तत्पर रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है।[3] उत्तरकाण्ड में लक्ष्मण को ज्ञान का उपदेश देते हुए भगवान् राम ने ध्यान और समाधि योग की उत्कृष्ट स्थितियों का उल्लेख किया है। उन्होंने लक्ष्मण को समझाया है कि आत्म-चिन्तन करनेवाले पुरुष को चाहिये कि एकान्त देश में इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर और अन्तःकरण को अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मा में स्थित होकर और किसी साधन का आश्रय न लेकर शुद्ध चित्त हुआ केवल ज्ञान दृष्टि द्वारा एक आत्मा को ही भावना करे। × × × समाधि प्राप्त होने के पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ओंकार मात्र है। इसी काण्ड में माता कौशल्या को उपदेश देते हुए भगवान राम ने मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप 'कर्मयोग', 'ज्ञानयोग' और 'भक्तियोग' का उल्लेख किया है। भक्तियोग के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार गंगाजी का जल समुद्र मे लीन हो जाता है उसी प्रकार जब मनोवृत्ति मेरे गुणों के आश्रय से मुझ अनन्त गुणधाम में निरन्तर लगी रहे, तो वही मेरे निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है। इस प्रकार अध्यात्म रामायण से योग साधना के तत्वों को महत्व देने के अनेक प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं। यह अवश्य है कि अध्यात्म में 'योग' के सात्विक रूप—चित्त को शुद्ध, विकार रहित, द्वन्द्वातीत और समत्वबोधयुक्त करनेवाले स्वरूप—को ही महत्व दिया गया है।

---

१. अ० रा० बालकाण्ड, सर्ग २, श्लोक २८, पृ० २७।
२. अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ४, श्लोक ३३।
३. अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग, ४ श्लोक ५५।
४. वही उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६-४८।
५. अध्यात्म रामायण उत्तर, काण्ड सर्ग ७, श्लोक ६४, ६५।

अध्यात्म रामायण के बाद रामभक्ति परम्परा मे साधना-तत्व एव पूजा विधि की दृष्टि से 'अगस्त्य सहिता' एक महत्वपूर्ण ग्रथ है। इसमे परात्पर तत्व का ज्योति रूप में ध्यान करने का उल्लेख है।[1] सदाशिव सहिता में कर्णिका युक्त सहस्रार नामक महापद्म के मध्य सीता सहित (शक्ति रूप सीता) राम के रत्न सिंहासन पर स्थित होने की बात कही गयी है और यह भी बताया गया है कि राम के इसी रूप का ध्यान रामभक्तो के लिये विहित है।[2] 'सदाशिव सहिता' उपलब्ध नहीं है, किंतु इसका कुछ अश रामचरणदास जी ने 'रामनवरत्नसार सग्रह' मे उद्धृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जितना अश रामभक्तो के लिये अत्यत महत्वपूर्ण था वह स्मृति परम्परा में जीवित रह गया। इन साक्ष्यो से यह प्रमाणित होता है कि रामभक्ति साधना एव तत्सम्बन्धी साहित्य मे तत्र एव योग साधना के तत्वो का समावेश हिन्दी रामभक्ति की परम्परा के आरभ होने स पहले ही हो चुका था और रामभक्तो के सामने उसके उपजीव्य ग्रथ पहले से विद्यमान थे।

साम्प्रदायिक रामभक्ति काव्य मे योग

भक्ति-साधना का उन्मेष दक्षिण के तमिल प्रदेश के आलवार भक्तो से स्वीकार किया गया है। इन भक्तो मे शठकोप आलवार को रामभक्त अपना प्रथम आचार्य मानते हैं। इनसे पूर्व चार आलवार विष्णु के उपासक थे। 'शठकोप' का तमिल नाम 'नम्म आलवार' है। नम्म आलवार ने 'आत्मा' की उपलब्धि के लिये 'योगसाधना' का महत्व स्वीकार किया है। उनका कहना है कि आत्मा अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसे योग द्वारा ही पहचाना जा सकता है। नम्म आलवार ने ही 'सहस्रगीति' की रचना करके सबसे पहले रामभक्ति को साम्प्रदायिक आधार प्रदान किया था। नम्म आलवार को मधुर भक्ति का प्रवर्तक माना जाता है। इससे प्रकट है कि मधुर भाव की भक्ति के साथ ही योग को उसम समाविष्ट किया गया था। इसी परपरा म आगे चलकर राघवानन्द हुए। इन्होने उत्तर भारत मे आकर रामभक्ति का प्रचार किया। राघवानन्द की विचार-धारा पर नाथयोग का प्रभाव स्पष्ट है। इधर स्वामी राघवानन्द रचित सिद्धान्त पच-

---

१. अगस्त्य सहिता पत्र ८६।

२ सदाशिव सहिता (रामनवरत्नसार सग्रह मे उद्धृत)।

३. A History of Indian Philosophy Vol III S N. Das Gupta Page 80.

माला' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका दान घाटी, गोवर्द्धन के हनुमान मंदिर के महंत एवं रामानुज सम्प्रदाय के साधु श्री रामशरणदास जी से प्राप्त हुई है। पुस्तिका नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका में लिखा है—"इति श्री राघवानन्द स्वामी की सिद्धांत पंचमात्रा संपूरण" यह पुस्तिका राघवानन्द के समय की नहीं है। इसमें कबीर का उल्लेख है। किंतु यह निश्चय ही उन्हीं की साम्प्रदायिक परम्परा के किसी साधु की रचना है। इसके अनुसार स्वामी राघवानन्द का साधना मार्ग योग और प्रेम का समन्वित रूप है जो सनत्कुमार आदि ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों द्वारा चलाया गया था।

सनक सनन्दन सनत्कुमार। जोग चलायो अपरमपार।।
प्रेम मुन सनकादिक चार गुरु भाई। डंड कमण्डल जोग चलाई।।

पीता म राखे जोगेगुर मतवाला। उपजे ज्ञान ध्यान प्रेम रस प्याला।[1]

इस पुस्तिका से सिद्ध होता है कि राघवानन्द की योग-साधना में पूर्ण गति थी। इसमें 'सुन्न' 'गगन' 'झुनकार' (अनाहत नाद) आदि योग सम्बन्धी पारिभाषिक पदों का भी प्रयोग हुआ है। इसका रचयिता हठयोग की प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों से पूर्ण परिचित है। वह कहता है—

चंद्र सुरज जमी असमान तारा मंडल भये प्रकास।
अधुन जोगी यह झनकार।।
सुन्न गगन म ध्वजा फराई, पुछो सबद भयो प्रकासा।
सुन लो सीधो सबद का बासा।[2]

नाभादास की परपरा मे वैष्णवदास के शिष्य मिहीलाल (अनुमानत. १७वीं शती में विद्यमान) ने अपने 'गुरु प्रकारी' नामक ग्रंथ मे राघवानन्द को 'अवधूत वेषधारी' बताया है—

धनि-धनि सो मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं।
श्री अवधूत वेष को धारे राघवानद सोई।
तिनके रामानद जग जाने कलि कल्यान भई।।

इससे भी राघवानन्द पर योगमत के गहरे प्रभाव की सूचना मिलती है।

राघवानन्द के शिष्य और उत्तरी भारत मे रामभक्ति के उन्नायक स्वामी रामानन्द की जो हिन्दी रचनाएं प्राप्त हुई हैं, उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि वे योगविद्या में पारंगत थे। 'रामरक्षा' नामक अपनी छोटी-सी रचना में

---

१. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, परिशिष्ट, पृ० ४२।
२ वही पृ० ४४।

उन्होंने चराचर में व्याप्त श्रीनाथ निरंजन देव को नमस्कार किया है। उनकी रचनाओं से कुछ ऐसे पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं जो योग मत के गहन ज्ञान के साक्षी हैं—

रामरक्षा

समदिष्टि सम घर आणी प्राण आन्न।
उदान व्यान मिलि अनहद शब्द की घर पाई॥
झिल-मिला ज्योति रुणकार झलकता रहै,
नाद बिंद मिल भया रँगरेला।
× × ×
निरति सो निरति मिलि निरति लागी रहै,
सुरति सूं सुरति मिलि सुरति आवै।
× × ×
चित्त सो चित्त मिलि चित्त चेतन भया,
उनमुनी दिष्टि सो भाव देखै।
× × ×
कुण कुणी रुणरुणी झुमा झुरमी नाद,
सुषमन' काछके साज साजा।
चाचरी भूचरी षेचरी अगोचरी उन्मुनी,
पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।

रामानन्द की यह योग-साधना उनकी भक्ति साधना का अंग मात्र थी। अपने 'भगति जोग ग्रंथ' में वे कहते हैं कि भक्ति योग के लिये सबसे पहले सब कुछ त्याग कर दृढ वैराग्य धारण करना चाहिये और इष्टदेव के प्रति पूर्ण विश्वास जाग्रत करना चाहिये। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिये फिर चाहे घर में रहे चाहे बनवास करे।[1] माया-मोह, आशा-तृष्णा कनक-कामिनी को त्याग कर समचित्त होकर अनन्य भाव से निरंजन देव की मानसी पूजा करनी चाहिये। इस मानसी-पूजा-विधि की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—

ग्यान दीप ले आरती उतारै। घट अनहद सबद उचारै॥
तन मन सकल अरपन करही। दीन होइ फुनि पायन परही॥

---

१ तुलसीदास ने भी प्रकारांतर से इसकी पुष्टि की है—
घर कीन्हें घर जात हैं, घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच रह, रामप्रेमपुर छाय॥ —दोहावली ३३९

ज्यूँ पतिब्रता रहै पीव पासा। यूँ साहिब्र के ढिग रहै दासा॥
कोउ देस मूलि मति जावो। पतिवरताऊ पति लै निरबावौ॥

स्पष्ट है कि श्री रामानन्द ने योग को वैराग्य वृत्ति एव समचित्तता प्राप्ति के लिये आवश्यक माना था और आराध्य के प्रति दृढ एव अनन्य प्रेम की साधना के लिये इसे साधन रूप में स्वीकार करके योग और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया था।

हिन्दी निर्गुण रामभक्तिधारा मे योग

रामानन्द के बाद हिन्दी साहित्य मे निर्गुण और सगुण भक्तिधाराओ का विकास हुआ। रामानन्द दोनो के प्रेरणा-स्रोत कहे जा सकते हैं। निर्गुण धारा के प्रख्यात सत कबीर मे भक्ति के साथ योग का पूर्ण समन्वय है। उन्हो ने भी 'राम' को अपना आराध्य माना है। परमात्मा के अनेक नामों की चर्चा करते हुए वे अन्तत: 'राम' को ही महत्व देते हैं। वे बार बार राम-रस पीने और राम से मिलकर 'एकमेव' होने की बात कहते हैं। उन्होने योगियो के बाह्याडम्बर का विरोध भले किया हो, किंतु योग के तात्विक रूप को पूर्णत: स्वीकार किया। मन के उन्मन होने, जप के अजपा मे समाने, सुरति के विरति मे लीन होने, सहज समाधि लगाने, और शिव-शक्ति के मिलने की बात कहकर योग को पूर्णत समर्थन दिया है। कबीर के पूर्ववर्ती सतो मे नामदेव का महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर ने उनका श्रद्धापूर्वक नामदेव का स्मरण किया है। नामदेव, रामानन्द के समकालीन माने जा सकते हैं। नामदेव यो तो विट्ठल भगवान् के उपासक थे, किंतु उनके कई पदो मे 'राम' के प्रति श्रद्धा निवेदन का भाव स्पष्ट लक्षित होता है। अपने एक पद में वे कहते हैं कि रे मन! राम के सम्मुख नाच और योग एव वैराग्यवृत्ति धारण करके ज्ञान-चिन्तन कर। राम के सम्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, शकर, काल, नारद, तैंतीसो करोड देवता आदि सभी नाचते हैं। उन्हें विश्वास है कि मन को सयमित करके राम के सम्मुख कर देने पर परमपद की प्राप्ति होगी।[1] अपने अनेक पदों मे उन्होंने रामनाम की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है। वे बार-बार कहते हैं कि हे सतो! रामनाम के तुल्य कोई नहीं है। वे स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि मैंने रामनाम की सजीवनी बूटी प्राप्त कर ली है—

पायौं मैं राम सजीवनि मूरी। गुरु मिल्यौ बैद बिथा गई दूरी॥[2]

1 सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १३०।
2 वही, पद १९८।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा की गई श्रीरंग वन्दना,[1] श्रीवैष्णव वेष का वर्णन[2] दशरथ पुत्र रामचन्द्रजी की स्तुति,[3] रामनाम महामंत्र को जप तथा प्रपत्तिसिद्धान्त मे एकान्तनिष्ठा श्री वैष्णव सम्प्रदाय से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध आदि के साक्षी हैं।

अतः संत नामदेव को भी राममक्तों मे स्थान दिया जा सकता है। कहना न होगा कि नामदेव की साधना मे भक्तितत्त्व की प्रधानता होते हुए भी योग की स्वीकृति है। संत नामदेव बारकरी सम्प्रदाय के संत हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत ज्ञानेश्वर नाथ सम्प्रदाय की परम्परा के अंतिम महान् साधक थे। हिन्दी निर्गुण संत-परम्परा में रामभक्ति धारा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। कबीर के बाद निर्गुण संतो में सर्वाधिक प्रभावशाली नानक ने भी 'अतिम राम' की भक्ति की है और उनकी यह भक्ति योगकी तात्त्विक विशेषताओ से युक्त है।[5] इधर मीरा के भी राममक्तिभावित कुछ पद प्राप्त हुए हैं।[6] अन्य अनेक संतों ने भी रामकथा का निर्गुण भावपरक प्रतीकात्मक मतव्य प्रकट करते हुए अपनी रामभक्ति का परिचय दिया है। इनमें गरीबदास, धनीदास, रज्जब, सुन्दरदास, यारी साहब, जगजीवन साहब, पलटूदास, दरिया साहब, तुलसी साहब, देवकी नन्दन साहब, रघुनाथ दास रामसनेही, नवनिधि, लाला शिवदयाल सिंह, शिवव्रतलाल, जगन्नाथदास, भगवान् वत्सदास, शारदा राम उदासीन आदि प्रमुख हैं। इन संतों मे कई ने उसकी योग-परक व्याख्या की है। इस प्रकार निर्गुण रामभक्ति धारा मे न केवल योग साधना का समावेश है, वरन् रामकथा की योग-परक प्रतीकात्मक व्याख्या भी की गयी है। निर्गुण संतों में कई ने घट रामायणो की रचना की है। इन रामायणो की सृष्टि निश्चय ही योगदृष्टि के आधार पर की गयी है। कुछ परवर्ती संतो ने तो रामकथा के पौराणिक सगुण रूप को भी स्वीकार कर लिया है। इनमें मलूकदास, जगजीवनदास, शिवनारायण साहब, देवकी नन्दन साहब, रघुनाथदास राम सनेही विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी संतो ने भक्ति के साथ योगसाधना को भी

---

१. संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २५५।
२ हिन्दी साहित्य को मराठी संतों की देन, पृ० ३५४।
३ वही, पृ० २५३।
४. संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ० ३६।
५. नानक की योगनिष्ठा के लिये दे० नानक वाणी, पृ० ५६४।
६. रामभक्ति परम्परा और साहित्य, पृ० १०५।

महत्व दिया है। तात्पर्य यह कि निर्गुण सतो की साधना मे योग-भावना अनिवार्य रूप मे उसकी एक तात्विक विशेषता के रूप में समाविष्ट है और इस प्रकार वे 'राम' भक्ति से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए हैं।

रसिक रामभक्तिधारा में योग

रसिक रामभक्तिधारा मे योग का महत्व निर्विवादरूप से मान्य है। यो तो रसिकभक्ति का उन्मेष नम्मालवार से ही स्वीकार किया जाता है, किंतु उत्तरी भारत मे रसिक भाव की भक्ति को एक व्यवस्थित साधना-पद्धति के रूप मे प्रवर्तित करने का श्रेय अग्रदास को है। अग्रदासजी ने भक्त नम्मालवार से लेकर कृष्णदास पयहारी तक रसिक भक्ति साधना के बिखरे-सूत्रो को सयोजित कर उसे एक व्यवस्थित साधना-पद्धति का रूप दिया। नाथ सिद्धो मे साधनदेह के रूप मे योग-देह की कल्पना की गयी है। अग्रदासजी ने उसे ही साधनदेह भावदेह अथवा बैन्दवदेह के रूप मे मानसी ध्यान का मुख्य उपादान निश्चित किया और इसी चिन्मय साधन, शरीर को पचभाषोपासना का आधार माना। गोरक्षसिद्धात सग्रह मे भी इस देह का स्पष्ट निर्देश है—

देवैरपि न लभ्यते योगदेहो महाबल।
छन्दबन्धैर्विमुक्ता सो नानाशक्ति धरः परः॥ (पृ० ५१)
यथाऽऽकाशस्तथा देहः आकाशदपि निर्मलः।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देहः स्थूलात्स्थूलो जडाज्जडः॥
(गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह पृ०५३)

इतना ही नही, इस शरीर के द्वारा ध्येय युगल तत्व भी योग धारा का ही प्रसाद है—

ओंकार बिन्दु सयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिनः।
तस्मिन् मध्ये स्थित तत्वं प्रदर्शयति सद्गुरुः॥
(गो० सि०, स० पृ० २७)

अग्रदासजी से पहले रसिक परम्परा में अनन्तानन्दजी उल्लेख्य हैं। युगलप्रियाजी ने रसिक-प्रकाश-भक्तमाल में उनकी रसिक समाधि का वर्णन करते हुए लिखा है—

आँसू चलत समाधि में अद्भुत गति विरही महे।
शिष्य किये बहु विरति रति तिनके गुन गन को कहे।[1]

---

१. र० प्र० भ०, पृ० १२।

यह समाधि, योग युक्त भक्ति साधना का ही परिणाम है । अंतिम पंक्ति में अनेक विरक्ति में रति करने वाले शिष्यों को दीक्षा देने की बात कही गयी है, जिसका सीधा संकेत योग साधना की ओर ही है ।

अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे । 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार इनकी रामोपासना साहय योग समन्वित थी ।[1] इनकी एक छोटी-सी रचना 'राजयोग' प्राप्त हुई है । इसमें शुद्ध स्थान पर बैठकर एकाग्रचित्त से प्राणायाम प्रक्रिया द्वारा अन्तर्ज्योति दर्शन की अनुभूति का क्रमबद्ध एवं सांगोपांग वर्णन किया गया है ।

स्पष्ट है कि योगियों ने जहाँ शिव स्थान मानकर शिव रूप परमतत्त्व में लीन होने या ब्रह्मलीन होने की बात कही है, वहाँ रसिक भक्तों ने अपने इष्टदेव राम को प्रतिष्ठित कर उनके स्वरूप में लीन होने की अनुभूति की है ।

कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदासजी थे । अग्रदासजी की 'ध्यान मंजरी' रसिक रामभक्तों का एक मान्य ग्रन्थ है । इसमें सहस्र महापद्म के मध्य में सर्वदेव शिरोमणि भगवान राम को सीता सहित शोभित बताया गया है और रसिक भक्तों के लिये उनके इसी रूप का ध्यान विहित माना गया है । अग्रदासजी ने 'ध्यान मंजरी' की रचना 'सदाशिव संहिता' के आधार पर की है, जो तंत्र शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । अग्रदासजी की 'ध्यान मंजरी'[2] की एतद्विषयक कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

स्वर्णवेदिका मध्य तहाँ मणि रतन सिंहासन ।
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम सुआसन ॥
ताके मध्य सुदेश कणिका सुन्दर राजै ।
अति अद्भुत तहँ तेज चन्द्र सम उपमा भ्राजै ॥
ता मधि शोभित राम नील इन्दीवर शोभा ।
अमित रूप अंभोधि श्याम घन तन की शोभा ॥
सम राजत रघुवीर धीर आगर सुखकारी ।
कर सच्चिदानन्द धामहिं प्रकट कुमारी ॥

अग्रदासजी के बाद उनके शिष्य प्रशिष्यों तथा रसिक भक्तिधारा के अन्य सभी भक्तों ने इस 'ध्यान पद्धति' को स्वीकार करके अपनी साधना में योग एवं प्रेम का सामञ्जस्य स्थापित किया ।

---

१. र० प्र० भ०, पृ० ११ ।
२. लेखक के निजी हस्तलेख संग्रह से ।

मर्यादावादी रामभक्ति में योग

रामभक्ति परम्परा में राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक मर्यादावादी भक्त तुलसीदास ने भी योग को महत्त्व दिया है। गीतावली में जनकजी के व्यक्तित्व की विशेषता का उल्लेख करते हुए विश्वामित्र कहते हैं—

रागऊ विराग, भोग-याग जोगवन्त मन,
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि ते न सीरे सुधाकरहू तें,
सहज समाधि निरुपाधि निरवही है।[1]

अयोध्या काण्ड के आरम्भ में शंकर की वन्दना के बाद राम के जिस स्वरूप की वन्दना तुलसीदास ने की है, वह योगियों के समतत्त्व की धारणा के अनुकूल है। तुलसी ने सुख-दुःख में एकरस या समरस रहने वाली राम की मुखश्री की वन्दना की है।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगलप्रदा।।[2]

यह समाधिलीन योगी की मन स्थिति के सर्वथा अनुकूल है—

नाभिजानाति शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा।
न मानं नापमानं च-योगयुक्तः समाधिना।।

लंकाकाण्ड के मंगलाचरण में राम की वन्दना करते हुए उन्हें तुलसीदास ने योगीन्द्र कहा है। मानस के ही उत्तरकाण्ड में ज्ञान-तत्त्व निरूपण करते हुए उन्होंने ज्ञानदीपक की जिस अखण्ड ज्योति की कल्पना की है, वही अखण्ड ज्योति योगियों द्वारा ध्येय है—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा।।[3]

स्पष्ट है कि भक्ति के प्रबल समर्थक होते हुए भी तुलसीदास, योग साधना के तात्त्विक महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

तुलसीदास के बाद राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक केशवदास ने भी योग-तत्त्व के महत्त्व को स्वीकार किया है। 'राम' के जनकपुर पहुँचने पर महाराज जनक जो स्वयं राजा और योगी दोनों थे, उनके जिस स्वरूप को देखते हैं, वह योगियों के चित्त में निवास करनेवाला समाधि दशा में अनुभूत परम तत्त्व ही है। वे कहते हैं—

---

१. तुलसी ग्रंथावली, ना० प्र० स०, पृ० ३१४।
२. मानस, अयो० का०, श्लोक—२।
३. मानस, उ० का०, पृ० ६८४।

सिद्ध समाधि सजें अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
केशव गाधि के नन्द हमें वह ज्योति सो मूरतिवत दिखाई।[1]

आधुनिक रामभक्ति काव्यो मे भी योग साधना के बीज विद्यमान हैं। रामचरित चिन्तामणि में रामचरित उपाध्याय ने राम राज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि राम के राज्य मे लोग इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखते थे।

जहाँ इन्द्रियो को दबाने सभी थे,
प्रजा को न राजा सताने कभी थे।[2]

'निराला' ने राम की शक्तिपूजा मे राम को योग-साधनारत दिखाया है। अन्तर्लीन राम का मन षट्चक्रो को भेदकर सहस्रार तक पहुँचता है। वह समाधिस्थ होते हैं और इसी स्थिति मे वे शक्ति की आराधना करते हैं। योगी की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर ही राम शक्ति का दृढ आराधन करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक रामभक्ति-काव्यो से लेकर आधुनिक युग के राम काव्यो तक मे योग-साधना के तत्त्व अबाधगति से प्रवाहित निहित हैं।

वस्तुतः भारतीय धर्म साधनाओ के मूल में ही योग की सत्ता विद्यमान है। ये समस्त साधनाएँ अन्तरावलम्बित हैं। सभी का लक्ष्य जीवात्मा को परमात्मा में लय कर देना है। यह स्थिति चित्त की एकाग्रता और मन की अन्तर्मुखता पर ही निर्भर है। भक्ति साधना भावमूलक है। किन्तु भावात्मक तादात्म्य भी एक प्रकार की योग प्रक्रिया ही है। वैष्णव मत के आधार ग्रथ 'भागवत' मे भी योग को भक्ति साधना मे सहायक स्वीकार किया गया है। भक्ति-सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करने से उसमे योग तत्त्वो का समावेश स्पष्ट लक्षित होता है। वैधी भक्ति के पाँच अगो—उपासक, उपास्य, पूजाद्रव, पूजाविधि और मन्त्र-जप पर विचार करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। उपासक के लिये हृदय-शुद्धि और शरीर-शुद्धि दोनो ही आवश्यक हैं। शरीर-शुद्धि के लिये स्नान, तिलक, माला, आसन, पादुका इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, हृदय-शुद्धि के लिये प्राणायाम गायत्री-जप आदि की। इनमें प्राणायाम और गायत्रीजप योग की ही प्रक्रियाएँ हैं। रसिक सम्प्रदाय में प्रभु प्राप्ति के लिये जिन साधनों का विधान किया गया है, उनमें योग की स्वीकृति स्पष्ट है। इस साधना में पाँच उपायों से प्रभु प्राप्ति सभव मानी गई है—१. कर्म, २. ज्ञान, ३. भक्ति, ४. प्रपत्ति

१. रामचद्रिका, छठवाँ प्रकाश पृ० ७६।
२. रामचरित चिन्तामणि, २३ सर्ग, पृ० २१२।

और ५. आचार्याभिमान। इनमें कर्म साधना के अन्तर्गत यज्ञ, दान, तप, हवन, सयम, अध्ययन, सन्ध्योपासना, जप, पवित्रता, चातुर्मास्य व्रत, अष्टांग योग, उपवास, अर्घ्य, पाद्य, तर्पण, तीर्थाटन आदि का विधान है। इस प्रकार रसिक रामभक्तों के लिये अष्टागयोग की साधना प्रथम आवश्यकता है। शुभ कार्यो के अनुष्ठान से ही ज्ञान का प्रकाश सभव है। ज्ञान का प्रकाश होने पर साधक को अपने मानस मे दिव्य-सिंहासन पर आसीन मणिमय वस्त्राभूषणो से अलकृत युगलस्वरूप का ध्यान करना चाहिये। यह भक्तिमय ध्यान, योग तथा ज्ञान साधना का सहकारी है।

भारतीय साधनाओ का विकास-क्रम कुछ इस प्रकार का है कि एक साधना मे विकृति आने पर दूसरी साधना उसके मूल एव तात्विक स्वरूप को आत्मसात् करके अपने को विकसित करती है या अपने तात्त्विक आधार को इतना व्यापक बना लेती है कि अन्य समानान्तर प्रतिष्ठित साधनाओ के उपयोगी एव अनिवार्य तत्व उसकी सीमा मे आ जाते हैं। इसीलिये हम देखते हैं कि भक्ति साधना में योग, कर्म और ज्ञान और साधनाओं के बीज सन्निहित हैं। रामभक्ति धारा में भी यह विशेषता विद्यमान है। योग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तात्त्विक महत्त्व को कभी भी अस्वीकार नही किया जा सकता। इसीलिए राममक्ति-साधना में उसका समर्थन सर्वत्र लक्षित होता है। 'गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग, निगम नियोग सो सो केलि ही छरो सोहै'—वाली तुलसी की उक्ति के आधार पर कुछ लोग रामभक्ति को योग साधना का विरोधी समझते हैं। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्रकृत सन्दर्भ मे गोस्वामीजी का आक्रोश योग साधना के तत्कालीन विकृत रूप के प्रसारक योगियो पर है, परपरया प्रतिष्ठित योग-दर्शन पर नही।

●

तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन

तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रभाव उनके जीवनकाल मे ही समाज पर पड़ने लगा था। इसके बाह्य प्रमाण तो उपलब्ध हैं ही, तुलसी साहित्य मे भी ऐसे अनेक आत्मोल्लेख हैं जो कवि की एतद्विषयक सजगता द्योतित करते हैं। जहाँ तक व्यवस्थित अनुशीलन का प्रश्न है तुलसी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसधान का सूत्रपात् निश्चय ही पाश्चात्य विद्वानो द्वारा हुआ, जिसमें पहला नाम एच० एच० विल्सन का है। विल्सन ने सन् १८३१ (स० (१८८८) मे ए० स्केच आव दि रेलिजस सेक्ट्स ऑव दि हिन्दूज नामक निबन्ध 'ऐशियाटिक रिसर्चेज' मे प्रकाशित कराया था। इस निबन्ध मे तुलसी की जाति जन्म-स्थान, कार्यक्षेत्र, गुरु परम्परा, जन्म-तिथि, मृत्यु-तिथि और रचनाओ पर प्रकाश डाला गया था। इनकी सूचनाओं का आधार सम्भवत नाभादास का छप्पय, उस पर प्रियादास की टीका तथा अन्य अनुश्रुतियाँ थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास की सर्वप्रथम रूपरेखा प्रस्तुत करने वाले फ्रासीसी विद्वान् गासी द तासी ने 'इस्त्वार दि ला लितरेत्योर इन्दुई ए इन्दुस्तानी' के प्रथम खण्ड (सन् १८३९ ई०) मे तुलसीदासजी का जो जीवन परिचय दिया है, वह बहुत कुछ 'विलसन की सूचनाओ पर ही आधृत है। उस क्रम मे एफ० एस० ग्राउज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्राउज ने सन् १८७६ से लेकर १८८१ तक अथक परिश्रम करके 'रामचरितमानस' का अँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद से पाश्चात्य देशो म तुलसी के काव्य-गौरव का प्रसार हुआ। इसकी भूमिका मे तुलसीदास का जो जीवन परिचय दिया गया है, उसम विल्सन द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए उनकी भूलो की ओर भी कुछ सकेत हैं।

तुलसी सम्बन्धी अनुसन्धान काय म युगान्तर उपस्थित करने वाले विद्वान् जार्ज ए० ग्रियसन हैं। सन् १८८५ ई० म उन्होने वेन की अन्तर्राष्ट्रीय आरियण्टल काग्रेस मे 'हिन्दुस्तान का मध्यकालीन साहित्त विशेष रूप से तुलसीदास' शीर्षक महत्वपूर्ण निबन्ध पढा था। तब से लकर सन् १९२१ ई०

तक वे बराबर तुलसी विषयक अनुसंधान में प्रवृत्त रहे। पहली बार उन्होंने ही कवि के जीवन-वृत्त एवं रचनाओं के निर्माण काल से सम्बद्ध तिथियों की ज्योतिष के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर गणना कराई, कृतियों की प्रामाणिकता पर विचार किया, कवि के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अनुश्रुतियों का संग्रह किया, उनके आत्मोद्गारों की ऐतिहासिक परीक्षा की, कवि और सुधारक रूप का मूल्यांकन किया और 'रामचरितमानस' की मौलिकता का प्रतिपादन कर विद्वानों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों में विलसन के आरम्भिक प्रयास को प्राच्यविद् ग्रियर्सन ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

भारतीय विद्वानों में तुलसी के जीवन-वृत्त तथा कृतियों के अनुसंधान का सूत्रपात करने वालों में श्रीमहेशदत्त शुक्ल और श्रीशिवसिंह सेंगर उल्लेखनीय हैं। इनसे पूर्व नाभादास के भक्तमाल, उसकी विविध टीकाओं तथा संस्कृत-हिन्दी के अनेक कवियों द्वारा किये गये प्रशस्तिपरक उल्लेख तुलसी के व्यापक प्रभाव के साक्षी होने पर भी आधुनिक ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन की कोटि में नहीं आते। श्री सेंगर ने सन् १८७७ में अपने 'सरोज' में कवि के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और रचनाओं का उल्लेख करने के साथ ही पसका (जिला गोंडा) निवासी बेनीमाधवदास रचित 'गोसाईंचरित' की सूचना दी और इस प्रकार तुलसी के जीवन-वृत्त के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। सन् १८८५ ई० से रामचरितमानस' के सम्पादन का इतिहास आरम्भ होता है। श्री भागवतदास खत्री ने सन् १६६४ ई० और १७०५ ई० की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'रामचरितमानस' का सम्पादन किया। सन् १६०२ में चिन्तामणि घोष ने प० सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री और बाबू अमीरसिंह द्वारा सम्पादित बराबर विस्तृत भूमिका के साथ उसका प्रकाशन कराया। त्रुटियों के बावजूद यह संस्करण एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में समादृत है।

उन्नीसवीं शती के अन्त तक तुलसी सम्बन्धी अनुसंधान की मुख्यतः तीन दिशाएँ थीं—(१) जीवन-वृत्त का अनुसंधान, (२) व्यक्तित्व का मूल्यांकन और (३) कृतियों की प्रामाणिकता का निश्चय तथा पाठ-शोध। तुलसी की टीकाओं की परम्परा का आरम्भ बहुत पहले हो ही चुका था। इन टीकाओं से तुलसी की कृतियों के अध्ययन में सहायता मिलती है। टीकाकारों ने तुलसी की कृतियों की व्याख्या करते हुए उनके मूल मन्तव्य को प्रकाशित करने का दावा किया है। प्रमुख टीकाकार निम्नलिखित हैं—

(१) महात्मा रामचरणदास—'आनन्द लहरी' टीका, १८२१ ई०
(२) सन्तसिंह पजाबी—भाव प्रकाश टीका, १८२१ ई०
(३) शिवलाल पाठक—श्रीमन्मानस अभिप्रायदीपक
(४) काष्ठजिह्वा स्वामी—मानस परिचर्या, १८६८ ई०
(५) ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह—मानस परिचर्या परिशिष्ट, १८६८ ई०
(६) सीतारामीय हरिहरप्रसाद—'रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश', १८६८ ई०
(७) ज्ञानी सन्तसिंह—१८८८ ई०
(८) बैजनाथ कूर्मवशी—'मानस भूषण', १८९० ई०
(९) प रामेश्वर भट्ट—१८९९ ई०
(१०) बाबू श्यामसुन्दर दास—१९०२ ई०
(११) मुशी शुकदेव लाल—१९१२ ई०
(१२) प० विनायक राव—'विनायकी टीका', १९१४ ई०
(१३) प० महावीरप्रसाद मालवीय—१९२५ ई०
(१४) अजनीनन्दन शरण—मानस पीयूष टीका १९३४ ई०
(१५) प० विजयानन्द त्रिपाठी—विजया टीका
(१६) हनुमानप्रसाद पोद्दार—गीता प्रेस, मानसाक टीका, १९४० ई०
(१७) श्रीकान्तशरण—'सिद्धान्त तिलक', १९४४ ई०

इन प्रयासो के बाद तुलसीदास और उनकी रचनाओ के सम्बन्ध मे सुनियोजित अनुशीलन नियोजित हुआ, जिसके फलस्वरूप विभिन्न दिशाओ मे अब तक शताधिक अध्ययन किये गये हैं। सुविधा के लिये इन्हे निम्नलिखित वर्गों मे रखकर विचार किया जा सकता है—

(१) प्रेरणा स्रोतो का अध्ययन, (२) जीवन-वृत्त का अध्ययन, (३) रचनाओं की सख्या, तिथिक्रम और प्रामाणिकता का अध्ययन, (४) धर्म और साधना का अध्ययन, (५) विचारधारा का अध्ययन, (६) काव्य-शास्त्रीय मूल्याकन, (७) भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, (८) मनोवैज्ञानिक अध्ययन और व्यक्तित्व विश्लेषण, (९) पाठालोचन, (१०) अर्थानुसधान और टीकापरक अध्ययन, (११) तुलनात्मक अध्ययन, (१२) सास्कृतिक अध्ययन, (१३) प्रभावपरक अध्ययन, (१४) समग्र अध्ययन और (१५) आधुनिकता के सन्दर्भ मे किये गये अध्ययन।

स्रोतों के अध्ययन मे सबसे अधिक विचार और अनुशीलन रामचरित मानस को लेकर किया गया है। इस सन्दर्भ मे श्रीशकुमार कृत 'मानस : बालकाण्ड के स्रोत' (१९५७ ई०), शार्लोत वादवील कृत 'तुलसीदास रचित रामचरितमानस

का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन' (१६५६ ई०) तथा श्री सीताराम कपूर कृत 'रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत' आदि उल्लेखनीय प्रयास हैं। मानस के अतिरिक्त तुलसी की अन्य कृतियो मे विनय पत्रिका, गीतावली आदि के आधार ग्रन्थो का भी अध्ययन हो सकता है। किन्तु इस दिशा मे कोई महत्वपूर्ण प्रयास अभी तक देखने मे नही आया।

जीवन-वृत्त सम्बन्धी अनुसधान मे विद्वानो ने अपेक्षाकृत अधिक उत्साह दिखाया है। इस सन्दर्भ मे आरम्भिक प्रयासो के अतिरिक्त इन्द्रदेवनारायण, सिंह, शिवनन्दन सहाय, रामकिशोर शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, रामनरेश त्रिपाठी, प० रजनीकान्त शास्त्री, रामबहोरी शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पं० चन्द्रबली पाण्डेय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामदत्त भारद्वाज, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह तथा डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इन अनुशीलनो मे तुलसी के जन्म एव गुरुभूमि के निर्धारण मे जितना श्रम किया गया है, उतना उनकी जीवनी के अन्य तत्वो एव घटनाओ की प्रामाणिकता की जाँच में नही। इनमे तुलसी के जीवनवृत्त सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं तथापि कतिपय विशिष्ट प्रसगो मे उत्तरोत्तर उलझाव बढता ही गया है। मात्र जन्मभूमि के विषय में देखा जाय तो अयोध्या, काशी, हाजीपुर (चित्रकूट), हस्तिनापुर (गढमुक्तेश्वर के पास), राजापुर, तारी, सोरो (रामपुर) और बलिया जैसे अनेक स्थानो को उनके पक्षधरो द्वारा गौरव प्रदान करने की चेष्टा की गयी है। भविष्य मे और कौन सा स्थान इसका दावेदार हो जायेगा, नही कहा जा सकता। यही स्थिति उनकी आध्यात्मिक शिक्षास्थली की भी है—सूकरखेत (गोण्डा) और सोरो दोनो ही उन्हें अपनाने मे सक्रिय हैं। जीवन-वृत्त सम्बन्धी अन्य तथ्यों मे जन्म-सवत्, जाति और आस्पद, माता-पिता, मूल नाम, बचपन, गुरु और शिक्षा, गार्हस्थ्य जीवन, वैराग्य, गुरु-परम्परा, विरक्त जीवन, निधन-तिथि आदि के निर्णय का प्रयत्न किया गया है, किन्तु इनमे से किसी के भी सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय नही हो सका है। इस सन्दर्भ में तुलसी के पर्यटन और उस क्रम में अनेक व्यक्तियो से उनके सम्पर्क तथा विभिन्न स्थानों में उनके टिकने के प्रमाण भी मिलते हैं। सम्बन्धित कागजपत्रो तथा जनश्रुतियो की व्यापक जाँच होनी अभी शेष है।

जीवन-वृत्त की भाँति ही तुलसी की कृतियो के अनुसधान की ओर भी विद्वानो का ध्यान आरम्भ से ही रहा है। कृतियो की सख्या, रचना-तिथि, रचनाक्रम तथा प्रामाणिकता सम्बन्धी अनेक अनुसधान हुए हैं, जिनमें डॉ० ग्रियर्सन, प० रामगुलाम द्विवेदी, मिश्रबधु, पं० रामनरेश त्रिपाठी, सद्गुरुशरण अवस्थी, डॉ०

रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ मे मतभेदो के बावजूद तुलसी की ६ कृतियाँ—रामचरितमानस, जानकीमगल, पार्वतीमगल, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, बरवै रामायण तथा कवितावली की प्रामाणिकता सर्वमान्य है और तीन कृतियाँ—वैराग्य सन्दीपनी, रामाज्ञा, रामलला नहछू की प्रामाणिकता बहुमान्य है। 'तुलसी सतसई' को अर्द्ध प्रामाणिक माना गया है। इन कृतियो के रचनाक्रम एव रचना-तिथियो के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है और अन्तिम निर्णय आज तक नही हो सका है।

तुलसीदास की विचारधारा के अध्ययन को मुख्यतः दो वर्गों मे रखकर देखा जा सकता है—(१) दार्शनिक विचारधारा और (२) सामाजिक-नैतिक विचारधारा। दार्शनिक विचारधारा से सम्बन्धित अध्ययनो मे डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्रकृत 'तुलसी दर्शन (१९४८), डॉ० उदयभानुसिह कृत 'तुलसीदर्शन मीमांसा' (१९६१ ई०), श्रीशकुमार कृत 'रामचरितमानस का तत्व दर्शन,' रामदत्त भारद्वाज-कृत 'तुलसी दर्शन' (१९७१ ई०) आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानो ने स्फुट निबन्धो में तुलसी के दार्शनिक विचारो का अध्ययन किया है। इनमें प० *गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम* विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुलसी के दार्शनिक विचारो के सम्बन्ध में अभी तक अतिम रूप से कुछ नही कहा जा सका है। कुछ विद्वान् उनकी कृतियो मे अद्वैतवाद की व्याप्ति बताते हैं किन्तु बहुमत उन्हे विशिष्टाद्वैतवादी मानता है। कुछ लोगो ने उन्हे दार्शनिकसमन्वयवादी भी कहा है। इधर तुलसी को 'एकात्मवादी' भी सिद्ध किया जा रहा है। यह मतभेद जहाँ एक ओर तुलसी के चिन्तन की गहराई और अध्ययन की व्यापकता प्रमाणित करता है वही दूसरी ओर अध्येताओ के अध्ययन की सीमा को भी रेखांकित कर देता है। वस्तुत· तुलसी के दर्शन की व्याख्या किसी पूर्वागत सिद्धान्त की सीमा मे नही की जा सकती। उसके स्वतन्त्र अनुशीलन की आवश्यकता है।

तुलसी की सामाजिक, नैतिक विचारधारा सम्बन्धी अनुसधानो मे महेशप्रसाद चतुर्वेदी कृत 'तुलसी का समाज दर्शन' (१९६१ ई०), श्री विष्णुशर्माकृत 'तुलसी का सामाजिक दर्शन (१९६२ ई०) श्रीवैजनाथसिह कृत 'मानस का सामाजिक दर्शन' (१९६४ ई०), श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी कृत 'तुलसीदास की दृष्टि से नारी' (१९६७ ई०) तथा श्री चरणदास शर्मा कृत 'तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य' (१९७१ ई०) उल्लेखनीय हैं। इन अध्ययनो मे कही-कही आधुनिक सामाजिक आदर्शों को आरोपित करने की चेष्टा भी मिलती है, जो बहुत उचित नही

। ये अध्ययन इस तथ्य के साक्षी हैं कि तुलसीदास लोककल्याण की भावना से मग्र जीवन दृष्टि अपनाकर साहित्य-रचना मे प्रवृत्त हुए थे।

'धर्म एव साधना' की विवेचना करने वाले शोधग्रन्थो मे जे० ए० कारपेण्टर कृत 'थियोलाजी आव तुलसीदास' (१६१८ ई०), जे० एम० मैक्फीकृत दी रामायण ऑव तुलसीदास' (१६३० ई०), डॉ० सत्य नारायण शर्मा कृत रामचरितमानस मे भक्ति' (१६७० ई०) डॉ० वचनदेवकुमारकृत 'तुलसी के भक्त्यात्मक गीत' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीराम अवतार कृत 'राम भक्ति और हिन्दी साहित्य मे उसकी अभिव्यक्ति' (१६६० ई०) तथा श्री रामनिरजन पाण्डेय कृत 'राम भक्ति शाखा' (१६६० ई०) जैसे अध्ययन भी इस दृष्टि से उपादेय हैं। इनमें तुलसी की भक्ति को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। आनुषगिक रूप से तुलसी की धर्मभावना एव भक्तिसाधना का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ अनेक हैं। इन ग्रंथो के ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय ब्योरे को अलग करके देखा जाय तो सबका प्रतिपाद्य प्रायः एक-सा ही है। सभी ने यह निर्णय देने की चेष्टा की है कि तुलसी को व्यक्ति और लोक-धर्म की सच्ची पहचान थी और उन्होंने उसके मर्यादावादी, शास्त्रसम्मत एव उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। तुलसी की भक्ति भावना उनकी समन्वयशील दृष्टि का परिणाम है और उन्होंने सभी प्रकार के विरोधों में सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है।

तुलसी की कृतियो के काव्यशास्त्रीय अनुशीलन दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के अध्ययन वे हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के विशिष्ट अगो अथवा पक्ष-विशेष को सामने रख कर तुलसी की कृतियो का मूल्यांकन किया गया है। दूसरे प्रकार के अध्ययनो में तुलसी की कृतियों के आधार पर उनके काव्य-सिद्धान्तो को विवेचित करने की चेष्टा की गयी है। प्रथम वर्ग में डॉ० राजकुमार पाण्डेय कृत 'रामचरितमानस काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' (१६६३ ई०), डॉ० भाग्यवती सिंह कृत 'तुलसी की काव्य-कला' (१६६२ ई०)। डॉ० रांगेय राघव कृत 'तुलसी का कथा शिल्प', डा० विनयकुमार कृत 'तुलसी का प्रगीत काव्य' (१६६२ ई०), डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू कृत 'रामचरितमास की काव्य कला' (१६७३ ई०), श्री नरेन्द्रकुमार कृत 'तुलसी की अलकार योजना' और डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का 'रामचरितमानस : वाग्वैभव' विशेष उल्लेखनीय हैं। द्वितीय वर्ग में डॉ० रामलाल सिंह कृत 'तुलसी-काव्य-दर्शन', डॉ० योगेन्द्रप्रताप सिंह कृत 'हिन्दी वैष्णव भक्ति-काव्य: काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त' प्रमुख हैं। वैसे इनका सम्बन्ध पूरे भक्ति काल से है फिर भी इनमे तुलसी की रचनाओ के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया गया है।

उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त आनुषंगिक रूप से तुलसी की रचनाओं का काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने वाली निबन्धात्मक कृतियाँ अगणित हैं। अध्येताओ ने यह प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास को काव्यशास्त्र का पूर्ण ज्ञान था और उन्होंने 'कवित्त विवेक एक नहि मोरे' की घोषणा के बावजूद सूक्ष्मतम एव पूर्ण काव्य-विवेक का परिचय दिया है।

हिन्दीतर रामकाव्यों से तुलसी की कृतियो के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। सन् १९११ ई० मे श्री एल० पी० टेसीटरी ने 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की कथा का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत किया था। इधर यह प्रवृत्ति बढी है। इस सम्बन्ध में डॉ० रमानाथ त्रिपाठी कृत 'कृत्तिवास का बगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५७ ई०), श्रीमती कमला साकृत्यायन कृत 'महाकवि भानुभक्त के नेपाली रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५९ ई०), श्री शिवकुमार शुक्ल कृत 'रामायणेतर संस्कृत काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६१ ई०), श्री जगदीशनारायण कृत 'रामचन्द्रिका और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६२ ई०), श्री एम० जार्जकृत 'तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एट्टुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६२ ई०), डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल कृत 'वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्याकन' (१९६६ ई०), श्रीमती विद्या मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६३ ई०), श्रीमती तुलसी मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस के नारी पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन विस्तृत तुलनात्मक अध्ययनो के अतिरिक्त तुलसी का मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाली अन्य कृतियो मे भी कथातत्त्व, विचारधारा, भाव सौन्दर्य प्रसग-कल्पना, चरित्र-चित्रण आदि का विवेचन करते हुए प्रसगवश तुलसी कृत रामायण की अन्य रामकाव्यो से तुलना की गयी है। इस प्रकार के अध्ययनों से तुलसी की मर्यादावादिता, काव्यमर्मज्ञता, समन्वयशक्ति, रामनिष्ठा एवं नाटकीय प्रसगो की उद्भावनाशक्ति उभर कर सामने आयी है और प्रकारान्तर से वह अध्येताओ के हृदय मे आलोच्य कवि के प्रति आदर भाव की वृद्धि मे सहायक हुई है।

तुलसीदास के काव्य का अनुसधानपरक मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण अभी बहुत कम हुआ है। इस सदर्भ मे श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी की 'तुलसीदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' (१९६२ ई०),

डॉ० श्रीधर सिंह की 'तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा' (१९६९ ई०) और देवेन्द्रसिंह की 'तुलसी का अन्तर्जगत' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा और डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने भी स्फुट निबन्धों में तुलसीदास के काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष का विश्लेषण किया है। तुलसी सम्बन्धी शोध का यह क्षेत्र अभी तक अपेक्षाकृत उपेक्षित रहा है। 'विनयपत्रिका','गीतावली' और 'कवितावली' के गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। तुलसी की कथा-योजना, पात्र-परिकल्पना, सौन्दर्य-चित्रण, सवाद-योजना तथा अन्य सभी काव्योत्कर्ष विधायक तत्त्वो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अपेक्षित है। मध्ययुग के इस सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि के काव्य मे वैयक्तिक तथा सामाजिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रभूत सामग्री निहित है। उसके अनुसधान तथा विश्लेषण का कार्य मूल्यवान सिद्ध होगा।

तुलसी की कृतियो, विशेषतः रामचरितमानस के पाठशोध का कार्य उन्नीसवीं शती के मध्य से ही आरम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध मे प्रारम्भिक प्रयासो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। परवर्ती प्रयास दो प्रकार के हैं: सन्तो और भक्तों के द्वारा संपादित ग्रन्थ और साहित्यिक विद्वानो के द्वारा सपादित पाठ शोध प्रक्रिया से निर्णीतपाठयुक्त ग्रथ।

सन्तो और भक्तो के द्वारा किये जाने वाले पाठ शोध का आधार निष्ठा और अर्थसुकुमारता रहा है। साहित्यिक विद्वानो के प्रयास दो प्रकार के हैं: प्रथम वे जिनमे वैज्ञानिक पाठशोध पद्धति का अनुसरण करते हुए भी अर्थ सगति को वरीयता दी गई है तथा द्वितीय वे जिनमे वैज्ञानिक पाठ-शोध-पद्धति को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस सदर्भ मे लाला सीताराम, बाबू श्याम-सुन्दरदास, बाबू ब्रजरत्नदास, लाला भगवानदीन, पडित रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पं० शम्भूनाथ चौबे तथा प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानो की सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। सन्तो और भक्तो मे कोदवराम, भागवतदास, अजनीनन्दनशरण, रामबालकदास, श्रीकान्तशरण, प०विजयानन्द त्रिपाठी आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इस सदर्भ मे यह उल्लेख्य है कि तुलसी के द्वादश ग्रन्थों में अभी तक विशेष बल 'रामचरितमानस' के पाठशोध पर ही दिया गया है। अन्य कृतियों मे से कुछ के ही पाठशोध के स्फुट प्रयास हुए हैं, जिनमे श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री वियोगी हरि आदि के कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। किन्तु अभी तुलसी को कृतियों के पाठानुसंधान का कार्य अधूरा ही है और इस क्षेत्र में बहुत सम्भावनाएँ हैं।

प्रभाव लक्षित करने वाले अध्ययनों की सख्या भी सीमित है। स्रोतपरक तथा तुलनात्मक अध्ययनो में यथावसर तुलसी पर पूर्ववर्ती कृतियो के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु प्रभाव लक्षित करना स्रोत और समता लक्षित करने से भिन्न प्रकार का कार्य है। कोई भी व्यक्ति प्रभाव उससे ग्रहण करता है, जिसके प्रति वह श्रद्धालु होता है। तुलसी ने उन कृतियो एव कृतिकारों से प्रभाव ग्रहण किया होगा, जो किसी अश मे उनकी विचारधारा, निष्ठा, जीवन-दृष्टि एवं आदर्शों के प्रतिमान रहे होंगे। भुशुण्डि रामायण के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करने के क्रम मे इन पक्तियो के लेखक ने अनुभव किया कि अनेकश स्थलो पर भुशुण्डि रामायण की उक्तियाँ और वाक्याश ही नही, प्रसग तक अविकल रूप में मानस में प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ववर्ती कृतियो से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी तुलसीदास ने अपने आदर्शों के अनुकूल प्रभावित प्रसगो में कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया है और वे परिवर्तन अनेक स्थलो पर मूल से भी अधिक आकर्षक बन पडे हैं। विभिन्न प्रकार के पुष्पों से रस ग्रहण कर उसे विलक्षण स्वादयुक्त मधु का रूप देने में ही तुलसी के भृ गत्व की सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम भक्त कवियो को प्रभावित भी किया है। अभी तक उनके प्रभाव क्षेत्र का अनुशीलन तो दूर, उसका सम्यक् सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है। निर्गुण एवं सगुण धारा के उत्तर मध्यकालीन काव्य पर तुलसी की गहरी छाप है। रामभक्तिधारा का समग्र परवर्ती काव्य तो तुलसीरस से सर्वांग सिक्त है ही, १८वीं तथा १९वी शती के राधा या कृष्णभक्त कवियो की रचना शैली पर भी तुलसी का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। तुलसी के काव्य एव जीवन-दृष्टि पर जिन कृतियो एव कवियो का प्रभाव है और तुलसी ने जिनको प्रभावित किया है, ये दोनों ही प्रकार के अध्ययन विवेक सदर्भ एवं अध्यवसाय साध्य हैं। इस दिशा में अभी भी शोध की पर्याप्त गुंजाइश है।

तुलसी की भाषा का अनुशीलन यो तो उनके कृतित्व के अध्ययन के साथ ही आरम्भ हो गया था, किन्तु उसके भाषा शास्त्रीय, वैज्ञानिक, काव्यशास्त्रीय एव सांस्कृतिक पक्षो का विस्तृत विवेचन बहुत पीछे आरम्भ हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम डॉ० बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी भाषा के विकास' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी के स्वरूप पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया था। डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने 'तुलसी की भाषा' (१९५७ ई०) का समग्र अध्ययनप्रस्तुत किया है। श्री शिवपूजन सहाय ने अपने एक निबन्ध में तुलसी द्वारा प्रयुक्त क्रियारूपों पर उपयोगी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित' तथा 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिकाओं में प्रसगवश तुलसी की भाषा का संक्षिप्त किंतु गभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। तुलसी और जायसी के समय मे बहुत कम अन्तर है। रामचरितमानस और पद्मावत के रचना-स्थल भी पास-पास हैं। दोनो की भाषा भी प्रायः एक ही क्षेत्र की है। किंतु जहाँ तक उनमें प्रयुक्त अपभ्रंश शब्दो के स्वरूप एवं मात्रा का प्रश्न है, दोनो मे पर्याप्त अन्तर दिखायी देता है। पद्मावत पर अपभ्रंश का जितना गहरा प्रभाव है, उतना मानस पर नहीं। इन दोनो कवियो की भाषा का तुलनात्मक अनुशीलन करके इसके कारणो की मीमांसा होनी अभी शेष है। तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दो के कोशनिर्माण के भी छिट पुट प्रयत्न हुए हैं। इस संबंध मे पहला उल्लेखनीय कार्य डा० सूर्यकान्त शास्त्री का है। डा० शास्त्री ने सन् १६३७ ई० मे 'इंडेक्स वर्बोरम ऑव दि तुलसी रामायण' प्रस्तुत किया था। न्यूनताओं के बावजूद यह ग्रंथ आज भी उपयोगी है। डा० भोलानाथ तिवारी का 'तुलसी शब्दकोश' भी एक सत्प्रयास है। मानस के शब्दो की गणना करके उसका प्रकाशन ओरछा नरेश की आज्ञा से टीकमगढ के प० बालकृष्ण देव तैलंग ने किया था। इसके अनन्तर प० रामनरेश त्रिपाठी ने गीता प्रेस की प्रति के आधार पर मानस की शब्द संख्या निश्चित की। दोनों मे बहुत अन्तर है। इधर श्री वागीशदत्त पाण्डेय का 'मानस सदर्भ कोश' प्रकाश मे आया है। तुलसी साहित्य के अनुशीलन मे इसकी उपयोगिता स्वत. सिद्ध है। मोहिनी श्रीवास्तव ने 'रामचरितमानस की वर्णानुक्रमणिका' प्रस्तुत की है। इन सभी कार्यों से तुलसी की भाषा की प्रकृति की अवधारणा मे सहायता मिल सकती है। वस्तुतः भाषा-प्रयोग की दृष्टि से भी तुलसी ने युग-विधायक का कार्य किया है। उनके भाषा-प्रयोग के पीछे समस्त वैष्णव भक्तिआन्दोलन का संस्कार निहित है। वैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप परिवर्तित युगचेतना के परिप्रेक्ष्य मे उनकी भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है।

तुलसी की कृतियो के अर्थानुसंधान और टीकापरक अध्ययन की परंपरा भी पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। इस क्षेत्र में दो प्रकार के प्रयत्न हुए हैं— साम्प्रदायिक और साहित्यिक। साम्प्रदायिक टीकाएँ प्राय. साधनागत निष्ठा के आधार पर लिखी गयी हैं। इनमे सर्वाधिक संख्या तुलसी की लोकविश्रुत कृति 'रामचरितमानस' की टीकाओं की है। महात्मा रामचरणदास, प० शिवलाल पाठक, काष्ठजिह्वा स्वामी, पं० रामकुमार, महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह, हरिहरप्रसाद, बैजनाथ कूर्मवंशी, ज्ञानी संत सिंह, मुंशी शुकदेव लाल, प०

रामेश्वर भट्ट, रामप्रसाद शरण, प० विनायक राव, बाबू श्यामसुन्दरदास, अजनीनन्दन शरण, श्रीकातशरण, प० विजयानन्द त्रिपाठी, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि मानस प्रेमियो द्वारा तुलसी का मर्म उद्घाटित करने की दिशा में किया गया अशदान अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इनमे से समन्वित दृष्टि से लिखी गयी टीकाओ मे श्री अजनीनन्दन शरण की 'मानस पीयूष' और 'विनय पीयूष' टीकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। तुलसी की अन्य कृतियों की साहित्यिक टीकाओ मे लाला भगवान दीन, बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री वियोगी हरि, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्री देवनारायण द्विवेदी, श्रीकान्तशरण तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओ का नाम लिया जा सकता है। इनका अध्ययन भी तुलसी साहित्य के अनुशीलन का एक आनुषगिक पक्ष है। श्री त्रिभुवननाथ चौबे ने मानस की टीकाओं का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो अभी तक अप्रकाशित है। वस्तुत· टीकाओ का अध्ययन स्वय मे एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस दिशा मे अभी बहुत कुछ करना शेष है। अभी तक मात्र 'रामचरितमानस' की केन्द्र मे रख कर ही टीकाओ का अध्ययन किया गया है। अन्य कृतियो की टीकाओ का अनुशीलन अवश्य ही उपादेय होगा।

तुलसी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन अधिक नही हुआ है। प्रायः मध्यकालीन काव्यो के सास्कृतिक मूल्याकन के सदर्भ मे तुलसी का अध्ययन भी आनुषगिक रूप मे किया गया है। स्वतन्त्र रूप मे तुलसी साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन के सदर्भ मे डॉ० रघुराजशरण शर्मा कृत 'तुलसीदास और भारतीय सस्कृति' (१९६१ ई०) उल्लेखनीय कृति है। तुलसीदास की रचनाओ मे मध्यकालीन सस्कृति का अक्षय कोष निहित है। पूर्व मध्यकालीन साधनाओ, विशेषतः तान्त्रिक नाथपथी एव निर्गुण सप्रदाय ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे तुलसी साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका सम्यक् आकलन होना चाहिये। तुलसी साहित्य पर समसामयिक सामन्ती सस्कृति का प्रभाव भी कम नही है। उनकी कृतियो के विषय तथा शैली दोनो पक्षो पर लोक सस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव है। तुलसी का मन जातीय सस्कारो के वर्णन मे बहुत रमा है। उनकी प्रवृत्ति एव प्रेरणा-स्रोतो को हृदयगम किये बिना मगल काव्यो की मीमासा हो ही नही सकती। रामलला नहछू के मूल्यांकन मे गण्यमान्य विद्वानो द्वारा प्रबन्ध दोष, ठेठ शृङ्गारिकता आदि को लेकर तुलसी की काव्य-प्रतिभा पर किये गये आक्षेप बहुत-कुछ इस खडित दृष्टि के ही प्रतिफल हैं।

तुलसी साहित्य के अध्येताओ मे कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जिन्होंने उसका समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनमे मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, प०

रामनरेश त्रिपाठी, प० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० राजपति दीक्षित, डॉ० उदयभानु सिंह प्रमुख हैं। आलोच्य कवि की रचनाओं का जितना अध्ययन हुआ है, वह उस अकूत सम्भावना को देखते हुए नगण्य कहा जा सकता है जिसको तुलसी-साहित्य अपने में छिपाये हुए है। प्रस्तुत सदर्भ में इस बात की ओर ध्यान बरबस जाता है कि तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञों मे एक ऐसा व्यक्ति भी रहा है, जिसका तथ्यपरक शोध का कोई मुखर दावा तो नही है, किन्तु तुलसी के जन्म-स्थान, उनके माता-पिता, कृतियों की सख्या, पाठ आदि के सम्बन्ध मे प्रसगत. किये गये उसके सकेत बडे-से-बडे शोध प्रयत्न की प्रेरणा बन सकते हैं, और बनते रहे हैं। इसी प्रकार भारतीय धर्म साधना की सुदीर्घ परम्परा में तुलसी का स्थान रेखांकित करने से लेकर उनके अन्तर्जगत् का विशद उद्-घाटन करने तक का काम उसी एक व्यक्ति के द्वारा सर्वाधिक गौरवास्पद रूप मे सम्पन्न हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नाम आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का है। इस प्रकार के आलोचनात्मक प्रयासो मे तुलसी सम्बन्धी अध्ययनों का विश्लेषण और तुलसी साहित्य के अध्ययन के आधारो की परीक्षा के साथ ही उनके जीवन-वृत्त, कृतियो का पाठ, कृतियों का काल-क्रम, शैली, दर्शन, युग-प्रभाव, काव्य-सिद्धान्त, भाषा, समाज-दर्शन आदि विभिन्न तत्वो पर विचार किया गया है। आलोचकों का निर्भ्रान्त मत है कि तुलसीदास महाकवि थे। सौन्दर्य और मगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दर्शन का सामजस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह संतोष का विषय है कि जहाँ तुलसी के जीवन-वृत्त सबधी तथ्यो मे किसी पर भी विद्वानो का मतैक्य नहीं है, वहाँ उनके काव्य-गौरव के सम्बन्ध मे सभी एकमत हैं।

तुलसी साहित्य का अध्ययन आधुनिकता के सन्दर्भ मे भी किया जा रहा है। अनेक गोष्ठियों में तुलसी की प्रासगिकता का प्रश्न उठाया गया है। यह शुभ लक्षण है। इस प्रकार के प्रसगो का उठाया जाना ही तुलसी की प्रासगिकता का सबसे बडा प्रमाण है। आधुनिकता के सन्दर्भ मे किये गये अध्ययनों में डॉ० चन्द्रभान रावत कृत 'तुलसी साहित्य : बदलते प्रतिमान', डॉ० रमेश कुन्तल मेघ कृत 'तुलसीदास : आधुनिक वातायन से' तथा डा० युगेश्वर कृत 'तुलसीदास : आज के सन्दर्भ मे' उल्लेखनीय हैं। आलोचकों का नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होना स्वाभाविक है और नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होने पर प्राचीन कृतियों को भी उसी दृष्टि से देखना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि इस प्रकार के अध्ययनो मे तुलसी साहित्य के वे तत्व असगत प्रमाणित हो जायँ जिनका समावेश तत्कालीन परिस्थितियों के आग्रह से किया

गया था किन्तु यह भी सम्भावित है कि उसमें निहित कालजयी तत्व इन अभिनव प्रकाश किरणो से और भी आलोकित हो जाएँ।

तुलसी के व्यक्तित्व विश्लेषण के प्रसग मे कुछ अनुसधित्सुओ ने उनके अद्यावधि उपलब्ध विभिन्न चित्रो की प्रामाणिकता पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस क्षेत्र मे धीर कवि तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के प्रयास विशेष महत्व के हैं। नागरी प्रचारणी सभा, (काशी) द्वारा प्रचारित भद्रवेश वाला चित्र अब प्राय सर्वमान्य हो गया है किन्तु अवधूत वेष वाला किशनगढ शैली का जटायुक्त चित्र भी आकृति साम्य के कारण स्वीकार्य हो सकता है। रामानन्दीय वैष्णवों में भद्र तथा अवधूत दोनो वेष विहित माने जाते हैं। तुलसी के सन्दर्भ मे उक्त दोनो वेषो क चित्रो को मान्यता इस आधार पर दी जा सकती है कि एक मध्य वय का और दूसरा परिणत वय का प्रतीत होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मूल उद्देश्य तुलसीदास और उनके साहित्य से सम्बन्धित अनुसधान कार्य की विविध दिशाओ की ओर सकेत मात्र रहा है। इस महाकवि के विराट् व्यक्तित्व एव कृतित्व के आकलन का प्रयास अत्यन्त व्यापक तथा दीर्घकाल व्यापी रहा है। सब का मूल्यांकन इस छोटे-से निबन्ध की सीमा मे सम्भव नही है। विभिन्न पक्षो से सम्बद्ध शोध-कार्यों का निर्देश करते हुए सक्षेप मे उनकी उपादेयता और महत्त्व की ओर भी इगित कर देना अपना लक्ष्य रहा है।

अन्त मे तुलसी साहित्य के उन पक्षो की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा जिनमे शोध के लिए पर्याप्त अवकाश है।

तुलसी के जीवन-वृत्त पर आग्रहमुक्त होकर विचार करने की आवश्यकता है। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध मे निर्णय करते हुए ऐसे भाषा प्रयोगो पर ध्यान देना अपेक्षित है जो परिनिष्ठित अवधी या ब्रजी के रूप मे न होकर ठेठ बोली के प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोग उनकी आरम्भिक कृतियो मे लक्षित किये जा सकते हैं। बोली मे क्षेत्रीय सस्कारो की गध होती है। इस गध को पहचानकर तुलसी की जन्मभूमि और बाल्यकालीन निवास स्थान के सम्बन्ध मे निर्णय किया जा सकता है। तुलसी साहित्य के समस्त स्रोतो की शोध अभी पूरी-पूरी नही हो सकी है। तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी रचना-प्रक्रिया और उनकी कृतियो मे परम्परा और प्रयोग के स्वरूप का यथोचित विश्लेषण भी अभी तक नहीं हुआ है। तुलसी का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। इस प्रभाव की मीमांसा होनी चाहिए। तुलसी के सम्बन्ध मे परवर्ती कवियो ने जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे उनके व्यापक प्रभाव की सूचना देती हैं। इन प्रशस्तियो का सक-

लन एवं विवेचनात्मक अनुशीलन अपनेआप में एक स्वतन्त्र शोध-कार्य का विषय है। तुलसी की प्रेरणा से रामलीला-साहित्य की एक अलग परम्परा ही चल पडी थी। कुछ ने तुलसी मानस को ही लीला के अनुसार रूपान्तरित कर लिया और कुछ ने उनके द्वारा सयोजित घटना-क्रम को ज्यो-का-त्यो स्वीकार करके स्वरचित छन्दों के माध्यम में रामलीला-काव्य की रचना की। तुलसी के सामाजिक सघटन सम्बन्धी कार्यों का मूल्याकन इन लीलाओं के स्वरूप और इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है।

तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध मे भी अभी शोध की आवश्यकता है। 'गीतावली', 'दोहावली', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' आदि कृतियो को अन्तिम रूप कब मिला, इसका निर्णय अभी तक नही किया जा सका है। तुलसी के साहित्य पर तत्त्व-दृष्टि से भी विचार और अनुसधान हो सकता है। इस महाकवि ने न केवल भारतीय काव्य-सिद्धान्तो के श्रेष्ठ उपादानो से अपनी रचनाओ को अलङ्कृत किया है वरन् अपनी प्रतिभा के बल पर काव्यशास्त्र के निर्माण की प्रचुर सामग्री भी प्रस्तुत की है। उनकी कृतियो को दृष्टि मे रखकर लक्षण-निर्माण करने से एक संक्षिप्त काव्यशास्त्र तैयार किया जा सकता है। इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ भी है। तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य के सम्बन्ध मे शोध के अगणित वातायन अब भी खुले हैं। कृतसकल्प, अध्यवसायी और विवेकशील अनुसधाताओ के लिये आज तुलसी का साहित्य एक चुनौती है। तुलसी विषयक खोज को वृत्ति के लिये स्वीकार करने के स्पृही अर्थार्थी अनुसधित्सुओ की एक लम्बी कतार दिखायी दे रही है, किन्तु प्रवृत्ति के रूप मे उसे अपनाने वाले जिज्ञासु साधक विरल हैं। तुलसी ने भक्ति साहित्य के शोधार्थियो के निमित्त स्वयं कुछ अर्हताएँ निश्चित की हैं। मेरे विचार से उनके अभाव मे तुलसी के व्यक्तित्व तथा साहित्य के अन्तः एव बाह्य स्वरूप का मर्मोद्घाटन हो ही नहीं सकता—

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोदै जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

भारतीय सस्कृति के सजग प्रहरी इस क्रान्तदर्शी कवि के भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की गहराइयो में निहित असख्य तत्त्वरत्न अब भी इन उपकरणो से सुसज्ज खोजी की बाट जोह रहे हैं।

●

सरल सुसील भाव के भूखे धरम नेम व्रत धारी।
नाचत गावत परम हर्ष से बैठि बजावत तारी।
कोऊ पखारत कोऊ सिंगारत कोऊ चँवर कर ढारी।
कोऊ गावत कोउ अरथ बतावत ललित कथा
चरण शरण सब विधि से जिन
आन 'देव' इनके आँगन

इससे मिथिला के विस्थापित
सकता है।

राम-भक्तों का
भागों में भी उनका प्रसार हुआ।
प्रथम रसिकाचार्य अग्रदास के शिष्य
रैवासा (राजस्थान) से आकर
बनाई थी। प्रसिद्ध है कि
यहाँ देवी ने स्वप्न में दर्शन
श्रीकृष्णदास की कृपा प्राप्त करने की
दास-विरचित 'ध्यानमंजरी' का
जिसके फलस्वरूप इन्हें अविरल रा
और सारा वृत्तान्त गुरुचरणों में निवेदन
इन्होंने अयोध्या होते हुए मिथिला की
तटवर्ती 'चिरान' को अपनी
से लौटकर ये इसी
एक

स्था

इनके
के शिष्य ऐनीराम
है। ये
विद्रोही सामंत का दमन
चिरान के समीप कहीं

१ मिथिलाबिन्दु (
२ रसिकप्रकाश भक्तमाल,

दासजी की गद्दी की पूजा मानी। नाव सकुशल पार हो गई। शत्रु को पराजित करके ऐनीराम चिरान की गद्दी का दर्शन करने गये। इसी समय उन्हें पुत्र की मृत्यु का दु:खद समाचार मिला। उनके मन मे इस समाचार ने तीव्र विरक्ति उत्पन्न कर दी। सेना को उच्च कर्मचारियों के साथ विदा करके वे चिरान मे रह गये। बादशाह ने इनकी कार्य-कुशलता पर प्रसन्न होकर भरण-पोषण के लिए जलपुर और जलालपुर नामक दो गाँव दिये। ऐनीराम ने उन्हें, गद्दी को, सत-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। इनके दो पट्टशिष्य थे—भगवानदास और कृपाराम अथवा मँगनीराम। मँगनीराम के शिष्य मौजीराम गद्दी के उत्तराधिकारी हुए। विहार में कतिपय रसिक-परपराओ के सस्थापक रामगुलेला इन्ही के शिष्य थे।

श्यामदासजी के प्रशिष्य और चितामणिदास के शिष्य तेजाराम ने खलपुरा मे अपनी अलग गद्दी स्थापित की। सूरदास इन्ही के शिष्य थे। इन्होंने चरणदास को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। चरणदास के प्रथम शिष्य रामेश्वर खलपुरा के पीठाचार्य हुए और द्वितीय शिष्य ब्रजमोहन चिरान के। इनके शिष्य एव प्रशिष्य क्रमश: देवादास और गगादास भी यहीं बस गये।

बिहार में द्वितीय रसिक गद्दी की स्थापना मिथिला मे हुई। इसके प्रवर्त्तक महात्मा सूरकिशोर थे। मिथिला के लुप्तप्राय तीर्थों के उद्धार का श्रेय इन्हीं को है। जीवाराम जी ने इन्हें अग्रदासजी के बडे गुरु-भ्राता कील्हदासजी का पौत्र शिष्य बताया है। किन्तु, इनकी मिथिला-स्थित गद्दी की जो परपरा इन पक्तियों के लेखक को प्राप्त हुई है, उसमें ये कील्हदास की पाँचवी पीढी मे आते हैं।[1] ग्रियर्सन महोदय ने इन्हे सं० १७०३ के आसपास वर्त्तमान माना है।

इनका जन्म जयपुर के एक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह द्वारा गलता के आचार्य मधुराचार्य के प्रति किये गये दुर्व्यवहार से खिन्न होकर ये सीकर चले गये और सतो की किसी जमात मे रहने लगे। जानकीजी के प्रति इनकी वात्सल्य-निष्ठा थी। भावावेश मे पुत्री के विग्रह को साथ लिये हुए बाजारो मे ये प्राय. उनके लिए खिलौने, मिठाइयाँ आदि खरीदने निकल जाया करते थे। इनके सहवासी साधुओ को जगन्माता मे पुत्री का भाव रखकर उन्हें साथ लिये इनका घूमना अच्छा न लगा। एक दिन उन लोगो ने वह मूर्ति गायब कर दी। सूरकिशोरजी 'पुत्री' की वियोग-व्यथा से उद्विग्न होकर

---

१. कील्हदास—परमानंददास—माधवदास—खेमदास—सूरकिशोर। (मिथिला विलास का परिशिष्ट।)

मिथिला चले आये और यहाँ साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे। साम्प्रदायिक ग्रथो के अनुसार जानकीजी की वह मूर्ति मिथिला मे एक वट-वृक्ष के नीचे पुन प्रकट हुई। उन्होंने उसे अपनी कुटी मे स्थापित किया, उनके एक छद में इस घटना का सकेत मिलता है—

मिथिला कलि काल ग्रसी सगरी तब जानकी जू झट दे उधरी।
सतसग विलास कथा चरचा नित आनद मगल होत झरी॥
अनसोधन सो पट भूषन सो सुखसपति मंदिर आन धरी।
कहु 'सूरकिशोर' कृपा सिय की यकबारहि बात सबै सुधरी॥[1]

जनक-भावापन्न होने के कारण ये जब कभी अयोध्या जाते, तब वहाँ का अन्न-जल नही ग्रहण करते थे। सम्बन्ध-गौरव का निर्वाह ये आजीवन करते रहे। कहते हैं, एक बार इष्टदेव द्वारा वर-याचना का अनुरोध करने पर इन्होंने 'दामाद' से कुछ माँगना कुल-परम्परा के विरुद्ध बताते हुए कहा था—

निबही तिहुँ लोक मे 'सूरकिसोर' बिजै रन मे निमि के कुल की।
जस जाइ लग्यो सत दीप लौं कान कथा कमनीय रसातल की॥
मिथिला बसि औध सहाय चहै तौ उपासक कौन कहै भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नही करैं आस दमादन के बल की॥

इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'मिथिला-विलास' है। इसके सरस छन्दो में वात्सल्य-भाव की अभिव्यक्ति के साथ ही तत्कालीन राजनीतिक एव सामाजिक स्थिति की झलक मिलती है।

सूरकिशोरजी के उत्तराधिकारी एव सर्वाधिक ख्यात शिष्य प्रयागदास थे। रसिकसाधना मे ये 'जनकपुर के सखा-भाव' के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।[2] गुरु के सम्बन्धानुकूल ये भाव से अपने को निमिवशी और सीताजी का भाई मानते थे। इस नाते राम इनके बहनोई थे। इस सम्बन्ध का निर्वाह इन्होंने आजीवन किया। इनकी जन्मभूमि का पता नही चलता। रसिकप्रकाश भक्तमाल के अनुसार बाल्यावस्था मे ही में विरक्त होकर ये प्रयाग तथा काशी होते हुए जनकपुर पहुँचे और महात्मा सूरकिशोर से शृङ्गारी उपासना का रहस्य प्राप्त किया। इसके पश्चात् ये कुछ दिनो तक नर्मसखा के रूप में मिथिला के गाँवो में बालकों के साथ खेलते रहे। बड़े होने पर

---

१. मिथिला विलास, छ० ६३।
२. वही, छ० ५८।
३. रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय, पृ० ४०३।

सूरकिशोरजी ने इन्हे करवा लेकर 'पुत्री' का हाल-चाल लेने के लिए अयोध्या भेजा। यहाँ इनका मन रम गया। अयोध्या के दास्य-भावना के भक्तो तथा अन्य नागरिको मे ये 'मामा प्रयागदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनकी विरक्ति भावना इतनी तीव्र थी कि अयोध्या-वास करते समय ये सदैव नि.सग और निर्लिप्त रहे। किसी के आश्रय मे रहना इन्हें पसद न था। गुरु का दिया हुआ करवा ही इनके पास एकमात्र पात्र था, नीम के वृक्ष की छाया ही अकेला आश्रय और आकाशवृत्ति ही एकमात्र उदर-पूर्ति का साधन। उमी के नीचे बारहो महीने इनकी चारपाई पडी रहती थी। ये मौज में आकर गाया करते थे—

नीम के नीचे खाट पडी है खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सोवै रामलला के सरवा॥

अयोध्या में कुछ वर्षों तक इस प्रकार मेहमानी करके *प्रयागदास* पुन. मिथिला लौट गये। वहाँ से गुरु की अनुमति लेकर ये प्रयाग आये और त्रिवेणी-सगम पर रहने लगे। एक दिन रामचरितमानस की कथा मे इन्होने व्यास के मुख से रामवन गमन का प्रसग सुना। बहन और बहनोई के वनवास का समाचार समाचार सुनते ही ये व्याकुल हो गये। कहते हैं, इन्होने तत्काल ही राम लक्ष्मण और सीता के लिए तीन जोडे जूते और तीन चारपाइयो की व्यवस्था कराई और उसे सिर पर लादकर चित्रकूट की ओर चल पडे। वहाँ पहुँचने पर कुछ विनोदी साधुओ ने इनसे कहा कि अब वे चित्रकूट छोडकर पचवटी की ओर चले गये हैं। एक क्षण की भी देर किये बिना प्रयागदास ने पचवटी की राह ली। सतो का विश्वास है कि दोनो वनवासी राजकुमारो और अपनी *'बहन'* से उनकी भेंट *मार्ग* में ही हो गई। प्रयागदास के अनुरोध से आराध्य-युगल ने चारपाई पर बैठकर जूता पहना। इस प्रकार, अपनी साध पूरी कर वे अयोध्या होते हुए मिथिला चले गये। इनकी कोई स्वतत्र कृति नही मिलती। सन्तो में इनके कुछ छंद प्रचलित हैं, जिनकी भाषा ठेठ अवधी है। इससे पता चलता है कि ये पढ़े लिखे नही थ। प्रयागदास के पश्चात् सूरकिशोर द्वारा स्थापित गद्दी पर जनकविदेही आसीन हुए। इनकी परम्परा अब तक जनकपुर मे चली आ रही है।

रामप्रियाशरण

महात्मा रामप्रियाशरण सूरकिशोरजी के प्राय: समकालीन थे। इनका आत्मसम्बन्धी नाम 'प्रेमकली' था। ये माधोपुर (मिथिला) में रहते थे। इनके गुरु 'नेहकली' नामक कोई रसिक महात्मा थे, जो उसी प्रदेश के निवासी थे।

रामप्रियाशरण सखी-भाव के उपासक थे। इन्होंने मानस के आदर्श पर सं० १७६० में 'सीतायन' नामक एक विशाल प्रबन्ध-काव्य की रचना की। यह सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, मधुरमालकाण्ड, जयमालकाण्ड, रसमालकाण्ड, सुखमालकाण्ड, रसालकाण्ड और चन्द्रिकाकाण्ड। रसिक संतों के सिद्धांतानुसार इसके अन्तर्गत जानकीजी की केवल बाल्य एवं कैशोर लीलाओं का ही वर्णन है। वन-गमन का प्रसंग छोड़ दिया गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर मंदिर (अयोध्या) में सुरक्षित है।

रामलला

बिहार में रसिक साधकों के साम्प्रदायिक संगठन में सर्वाधिक योग महात्मा रामलला ने दिया। ये लश्करी शाखा के प्रवर्तक बालानन्द (जयपुर) के बड़े गुरुभाई थे। मिथिला की अधिकांश *गद्दियाँ इन्हीं* की चेताई हुई हैं। नरघोघी, मटिहानी, मिर्जापुर, रामपट्टी, बघनगरी, बसहिया, बराही, विडरूक, सिमरदेही, विसनपुर, निपनिया, पुखरैनी, पिपरा आदि की स्थापना इन्हीं की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा से हुई। इन गद्दियों के आचार्यों तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा बिहार में रसिक-साधना का व्यापक प्रसार हुआ।

शंकरदास

पश्चिमी बिहार में शताब्दियों पूर्व महात्मा श्यामदास ने रामभक्ति की जो स्रोतस्विनी बहाई थी, उसी के परिणामस्वरूप कालान्तर में अनेक पहुँचे हुए संतों *का प्रादुर्भाव हुआ। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवारामजी के पिता* महात्मा शंकरदास ऐसे ही महापुरुष थे। इनका जन्म छपरा जिले के 'हसुआपुर' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम पं० शोभाराम चतुर्वेदी था। वे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और उसी वृत्ति से अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। बाल्यावस्था में ही पिता का देहान्त हो जाने से इनकी शिक्षा-दीक्षा माता की देख-रेख में हुई। जीविका का कोई अन्य साधन न होने से माता गायें पालकर कुटुम्ब का निर्वाह करती थीं। दुर्भाग्यवश, इसी समय बिहार में एक भीषण अकाल पड़ा। अयोध्या से आनेवाले किसी साधु से ज्ञात हुआ कि वहाँ सुकाल है। अतएव, गाँव के कुछ लोगों के साथ माता और बहन को लेकर ये अयोध्या चले गये। कुछ दिनों बाद माता का वहीं देहावसान हो गया। बहन को एक निकट सम्बन्धी के यहाँ भेजकर ये बदरीनाथ चले गये। चारों *धाम* की की यात्रा करके ये नैमिषारण्य आये और व्यास-वृत्ति से रहने लगे। यहीं इनका

विवाह रमन दुबे नामक किसी ब्राह्मण की पुत्री से हुआ। कुछ समय तक वहाँ रहकर ये स्त्री-सहित जन्मभूमि को चले गये और खेती तथा पंडिताई द्वारा जीवन-यापन करने लगे। इनके चार पुत्र हुए—रामकिंकर, प्रयागदत्त, गंगा-गोविन्द और जीवाराम। यही जीवाराम आगे चलकर 'युगलप्रिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए। घर पर कुछ दिनों तक रहकर ये सपरिवार आरा जिले के 'बोध-धारा' गाँव को गये और वहाँ किसी महात्मा से दीक्षा ग्रहण की। जब पुत्र घर का काम-काज सँभालने योग्य हो गये, तब शंकरदास गृह त्याग कर गंगातट पर (छपरा) जाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद जीवाराम भी विरक्त होकर पिता के पास चले आये और उन्हीं के शिष्य हो गये। इसी स्थान पर इन्होंने अपनी ऐहिक लीला संवरण की। शंकरदासजी दास्य-भाव के उपासक थे। इनकी केवल एक रचना 'रामनाममाला' है जो सं० १६०१ में इनकी गद्दी के तत्कालीन आचार्य महात्मा जानकीचरण के प्रयत्न से प्रकाशित हुई थी। इसकी भाषा मगही-मिश्रित भोजपुरी है।

जीवाराम 'युगलप्रिया'

शंकरदासजी के पुत्र जीवाराम रसिक-परम्परा के प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं। पद्य भक्ति-भावों के पूर्ववर्ती एवं समकालीन रामोपासक संतों का वृत्त 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में संकलित कर इन्होंने साहित्य तथा सम्प्रदाय की स्मरणीय सेवा की। इस दृष्टि से रसिक संतों में ये विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। आरम्भ में पिता की इच्छा इन्हें पंडित बनाने की थी। अतः इन्हें व्याकरण और ज्योतिष की शिक्षा दी गई। किंतु, इनका मन पंडिताई सीखने में नहीं लगा। इसी समय छपरा जिले के खरोद गाँव-निवासी मंसाराम के संपर्क में आकर इन्होंने अष्टांगयोग और स्वरोदय की क्रियाएँ सीखीं। शंकरदासजी को जब इसका पता चला, तब उन्होंने इन्हें योग-साधना से विरत होकर भक्ति-मार्ग का अवलंब लेने की सलाह दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके ये चिरान चले आये और उन्हीं का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। शंकरदासजी ने रामोपासना में इनकी प्रवृत्ति देखकर अग्रदास-विरचित 'ध्यानमंजरी' का पाठ करने की आज्ञा दी। आगे चलकर उन्हीं की अनुमति से शृंगारी साधना की प्रक्रिया सीखने के लिए ये अयोध्यावासी रसिकाचार्य रामचरणदास की शरण में गये। कुछ काल तक अवध वास करके ये पुनः चिरान लौट आये और टिकारी-राज्य (गया) की सहायता से पिताजी के आश्रम पर एक मठिया बनवाई तथा गद्दी स्थापित की। इनकी गणना चन्द्रकलापरत्व के मुख्य आचार्यों में होती है। कहते हैं, इनके

गुरु रामचरणदासजी की निष्ठा चारुशीला-परत्व में थी, किन्तु उन्होंने विशेष परिस्थिति मे इनकी भाव सिद्धि को देखकर चन्द्रकला-परत्व की अनुमति दे दी थी। युगलप्रियाजी ने 'शृंगार-रस-रहस्य-दीपिका' में इस घटना की ओर संकेत किया है। इस प्रकार रसिक-सम्प्रदाय में जीवारामजी के समय से ही उपर्युक्त घटना के अनुसार दो पृथक्-पृथक् परम्पराओं में हनुमदवतार श्रीचारुशीलाजी तथा भरतावतार श्रीचन्द्रकलाजी को प्रधानता दी जाने लगी। रसिक-साहित्य के प्रणयन और माधुर्य-भक्ति के प्रसार मे आजीवन व्यस्त रहकर सं० १६१४ में युगलप्रियाजी ने साकेत-यात्रा की।

उत्तरी भारत के रसिक सन्तो मे इनकी शिष्य-परम्परा सर्वाधिक समृद्ध हुई। उत्तर प्रदेश और बिहार मे इनके गृहस्थ तथा विरक्त शिष्य-प्रशिष्यों ने सैकड़ो गद्दियाँ स्थापित की। जीवारामजी की चार कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पदावली, शृंगार रस-रहस्य और अष्टयाम-वार्तिक।

जनकराजकिशोरीशरण

श्रीजनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली' जीवाराम के गुरुभाई थे। मिथिला इनकी साधना-भूमि थी। इनका जन्म काठियावाड मे सुदामापुरी के पास एक नागर ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। लडकपन मे ही किसी साधु के साथ ये अयोध्या चले आये। यहाँ इन्होंने महात्मा राजराघवदास से दीक्षा ले ली। वे मधुर दास्य-भाव के उपासक थे। जनकराजकिशोरीशरण की आस्था शृंगारी भाव मे थी, अतः गुरु ने उन्हें रामचरण दासजी से माधुर्य-भाव का सम्बन्ध लेने के लिए भेजा। संयोगवश उसी दिन चिरान से जीवारामजी भी जानकीघाट पर आ गये। रामचरणदासजी ने दोनों शिष्यो को एक साथ ही माधुर्य-भक्ति की दीक्षा दी। 'रसिक अली' नाम इसी समय पड़ा। इसके अनन्तर ये रस-साधना मे दृढतापूर्वक प्रवृत्त हुए और अष्टयाम तथा नित्याभावना मे मग्न रहने लगे। इन्ही दिनो रामचरणदासजी की प्रेरणा स टिकारी के राजा इनके शिष्य हो गये। रसिकअलीजी ने उन्हे दिव्य कनक-भवन के स्वरूप का उपदेश किया। राजा साहब ने माधुर्य भावना के अनुसार नव वनो तथा अष्ट कुंजो सहित कनक-भवन का निर्माण कराने की इच्छा प्रकट की। रसिक अलीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने दस हजार रुपये कनक-भवन के निर्माण के लिए दिये। रसिक अलीजी ने बडे समारोह के साथ कार्य आरम्भ किया। कारीगरो को मुँहमाँगी मजदूरी देने, उन्हें साधनानुकूल वस्त्रो से विभूषित और व्यजनों से तृप्त करने, दर्शको मे मधुर प्रसाद वितरण करने आदि मे आधे से अधिक रुपये व्यय

हो गये। शेष रामविवाह के आयोजन में लग गये। बड़ी मुश्किल से दस हजार रुपये में अष्ट कुंजों में से एक कुंज का केवल एक द्वार निर्मित हो पाया। महात्मा रामराघवदास इस अपव्यय से बहुत अप्रसन्न हुए। राजा साहब भी हिम्मत हार बैठे। अर्थाभाव के कारण काम बन्द हो गया। इससे रसिक अलीजी बहुत खिन्न हुए। उनका मन अयोध्या से उचट गया। वे जालौन चल गये। वहाँ उन्होंने एक निर्जन स्थान मे बारह वर्ष तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति का प्रचार किया। इस प्रदेश मे उनके हजारो शिष्य हो गए। इन्ही मे एक लाड़लीलालशरण थे। उन्हे साथ लेकर ये पुन: अयोध्या चले आये। कुछ दिन गुरु-सेवा करके ये यहाँ से मिथिला चल गये और फिर आजीवन वही रहे। जनकपुर मे विहारकुंड मे दक्षिण और बलवाटोल से पूर्व दिशा मे स्थित 'रसिक-निवास' आश्रम की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसी स्थापना पर स० १६०६ की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पार्थिव शरीर त्याग कर इन्होंने प्रियतम की दिव्य लीला में प्रवेश किया।

मौलिकता तथा विचार-स्वतंत्रता की दृष्टि से १६वीं शती के शृंगारी संतो मे इनका स्थान अन्यतम है। इन्होने रसिको के परम्परागत तत्सुखी सिद्धान्त के विपरीत स्वसुखी सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था। अब तक इनकी २४ रचनाएँ प्रकाश मे आ चुकी हैं, उनमे प्रमुख हैं—सिद्धान्त-मुक्तावली, आत्म-सम्बन्ध-दर्पण, राम-रास-दीपिका, मिथिला-विलास और अमर रामायण। अयोध्या तथा मिथिला मे इनके द्वारा स्थापित गद्दियो की परम्पराएँ आज तक चली आ रही हैं।

रामशरण

रसिक अलीजी की ही भाँति महात्मा रामशरण ने भी अन्य प्रदेश के निवासी होते हुए भी अपना मुख्य कार्य-क्षेत्र बिहार को ही बनाया और इसी पुण्यभूमि को अपना शरीर अर्पित किया। इनका जन्म अवध के तिलोई राज्य में तमसा नदी के तट पर पंडितपुरवा नामक ग्राम में स० १८६४ की आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को हुआ था। इनके पिता, प० रामस्वरूप ज्योतिषी थे। ये शैशवावस्था में ही मातृहीन हो गये। दादी ने पालन-पोषण किया। पिता ने रामदत्त नामक पंडित द्वारा इन्हें कुछ शिक्षा दिलाई। किंतु, इनका मन पढ़ने मे न लगा। सोलह वर्ष की आयु में ही घर-बार छोड़कर ये विरक्त हो गये। प्रयाग होते हुए अयोध्या आये और सुग्रीवटीला पर गरीबदास नामक किसी साधु से मन्त्र दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् कई वर्षों तक ये भारत के विभिन्न तीर्थों

का पर्यटन करते रहे। इसी यात्रा मे इन्होंने चित्रकूट, पंचवटी, श्रीरंगपुरी, कन्याकुमारी, तिरुपति और जगन्नाथपुरी के दर्शन किये। पुरी मे ही इन्होंने सीतारामीय हरिहरप्रसाद से सख्य-रस का सम्बन्ध लिया। यहां से ये भृगु आश्रम होते हुए बक्सर गये। बक्सर के निकट पचारी नामक गाँव मे भी कुछ दिनो तक इनके रहने का प्रमाण मिलता है। यहाँ पर सुरसरि के बाबू राम-उदारसिंह इनके दर्शन को आये। सेवकों के अनुरोध करने पर इस स्थान से ये नौआही गये। इसके पश्चात् ये जनकपुर चले गये और वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। यही वैशाख कृष्ण चतुर्दशी (सवत् अज्ञात) को इनकी परधाम-यात्रा हुई।

इनके रचित दो ग्रथ है—रामतत्व-सिद्धान्त-सग्रह और मैथिली रहस्य-पदावली। प्रथम, सिद्धान्त-ग्रथ है और दूसरा समय-समय पर लिखे गये भावात्मक छन्दो का सग्रह। जीवन का अधिकांश बिहार मे व्यतीत करने के कारण, मूलतः अवधवासी होते हुए भी इनकी कृतियो मे भोजपुरी का पुट अधिक मिलता है। इनकी रचनाएँ प्रायः सोहर छन्द में हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—जनक का हल-यज्ञ, जानकी-जन्म, फुलवारी-लीला आदि।

युगलानन्यशरण 'हेमलता'

महात्मा युगलानन्यशरण की साधना-भूमि अयोध्या थी, किन्तु जन्म तथा गुरुभूमि दोनो बिहार ही थी। इसलिए, इनकी गद्दी के अनुयायियो का अधिकांश बिहार मे ही पाया जाता है। इनका आविर्भाव स० १८७५ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी को फल्गु नदी के निकट पटना जिले के इस्लामपुर गाँव के एक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो गया। घर पर ही कृष्ण नामक विद्वान् से इन्होंने शास्त्राध्ययन किया। फारसी भाषा बिना किसी शिक्षक के स्वतः सीखी। इसी समय इन्होंने मल्लयुद्ध और सगीत का भी अभ्यास किया। पन्द्रह वर्ष की आयु मे ही ये चिरान के महन्त 'युगलप्रियाजी' से मन्त्रदीक्षा लेकर विरक्त हो गये। कुछ काल तक काशी और चित्रकूट मे निवास कर अयोध्या आये और १४ महीने तक मौन धारण करके घृताची-कुण्ड पर तपस्या की। इसके अनन्तर ये पुनः चित्रकूट गये और जानकीघाट पर ठहरे। रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंह इनकी ख्याति सुनकर दर्शनार्थ उपस्थित हुए। युगलानन्यशरणजी ने शृङ्गारी उपासना के रहस्यो की व्याख्या कर उनकी जिज्ञासा निवृत्त की। चित्रकूट से ये पुनः अयोध्या लौट आये और निर्मली-कुड पर रहने लगे। इसी समय १८५७ ई० की प्रसिद्ध क्रान्ति हुई। इनके आश्रम

के समीप ही गोरी पल्टन की छावनी थी। शिष्यों के अनुरोध करने पर भी इन्होंने वहाँ से तत्काल हटना स्वीकार न किया। कुछ ही दिनों मे आश्रम के निकट बड़ी संख्या में गोरे सैनिकों के कैम्प पड़ गये। इससे अपवित्रता बढ़ गई अतः, उस स्थान को छोड़कर ये अयोध्या नगर मे आ गये और लक्ष्मण किला पर आसन लगाया। आजीवन-ग्रंथ-रचना और धर्मोपदेश करते हुए इसी स्थान पर सं० १९३३ की मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को ये आराध्य की दिव्य साकेत-लीला में प्रविष्ट हुए।

युगलानन्यशरणजी संस्कृत और हिन्दी के तो अधिकारी विद्वान् थे ही, अरबी और फारसी मे भी उनकी अद्भुत गति थी। सूफी साहित्य के वे मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। उनकी वेष-भूषा भी सूफियों जैसी ही थी। उनकी रचनाओं की संख्या ९० के लगभग है। पूरे सम्प्रदाय में किसी अन्य कवि की इतनी विपुल राशि मे रचना नहीं मिलती। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—रघुवर गुण-दर्पण, मधुरमञ्जुमाला, श्रीसीताराम नाम-प्रताप-प्रकाश, उज्ज्वल-उत्कंठा-विलास, अर्थ-पंचक, सीताराम नेह-वाटिका, पारस-भाग और सत-वचनावली।

सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला'

रूपकलाजी का जन्म सारन (छपरा) जिले के मुबारकपुर गाँव मे श्रावण कृष्ण ६, सं० १८९७ मे कायस्थ-कुल मे हुआ था। इनके पिता मुंशी तपसीराम और चाचा मुंशी तुलसीराम रामानंदीय वैष्णव थे। उनके सम्पर्क से भगवद्भक्ति के बीज इनके हृदय मे बाल्यावस्था मे ही अंकुरित हो गये। आरम्भ मे इन्हें कुल-परम्परानुसार फारसी की शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् प्राइमरी परीक्षा पास कर ये छपरा के राजकीय स्कूल मे अँगरेजी पढने के लिए भेजे गये। यहाँ से इन्होंने एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय शिक्षा-विभाग मे नौकरी के लिए इन्होंने आवेदन-पत्र दे दिया। साक्षात्कार के समय इनकी योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर डॉ० फेलेन ने इन्हें सब-इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया। सं० १९२४ मे डिप्टी-इन्स्पेक्टर बनाकर ये पूर्णिया भेजे गये। नौकरी करते हुए भी इनका भजन भाव चलता रहा। इनकी रुचि माधुर्य-भाव मे थी। इस संबंध में परसा (जिला-सारन) के महात्मा रामचरण-दास से इन्हें विशेष पथ-निर्देश प्राप्त हुआ। कालान्तर में ये उन्हीं के शिष्य हो गये। सं० १९३८ में इन्होंने गुरहट्टा ठाकुरवाड़ी (भागलपुर) के महात्मा 'हंस-कला' से शृंगाररस का संबंध ग्रहण किया। इनके साधना-शरीर को 'रूपकला' की संज्ञा इसी समय प्राप्त हुई। भागलपुर से बदलकर ये पटना आये। यहाँ कुछ

अलौकिक घटनाएँ घटी, जिनसे प्रभावित होकर इन्होने दो बार सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दिया। किंतु दोनो ही बार शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर तथा खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामदीन सिंह के अनुरोध मे इन्हे इस्तीफा वापस लेना पडा। स० १६५० के आश्विन मास मे सेवावधि समाप्त करके ये अयोध्या चले आये और हनुमत्-निवास मे महात्मा गोमतीदास के साथ रहने लगे। स० १६८७ मे प्रमुख शिष्यो तथा प्रेमियो ने इनके लिए नयाघाट पर 'रूपकलाकुंज' का निर्माण कराया। इस वर्ष की जानकी नवमी के एक मास पूर्व वे हनुमत्-निवास मे आकर सरयू-तट पर स्थित इस नये आवास मे स्थायी रूप से रहने लगे। यही पर ४० वर्ष अखण्ड अवध-वास करके ६५ वर्ष की आयु मे स० १६८६ की पौष शुक्ला द्वादशी को नश्वर शरीर छोडकर इन्होने प्रियतम का चिरकैंकर्य प्राप्त किया।

रूपकलाजी की लिखी हुई कुल १७ पुस्तकें मिली हैं। इनमे से ७ लौकिक शिक्षा-सबधी हैं शेष १० भक्ति-विषयक। इनकी सर्वाधिक ख्यात कृति नाभादास-जी के भक्तमाल की टीका है। प्रसिद्ध तुलसीमर्मज्ञ सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसे अपना मुख्य सदर्भ-ग्रथ माना है। इसी से इसका महत्त्व आका जा सकता है। 'हरिनाम-सकीर्तन' और जानकी-जयन्ती' मे रूपकलाजी की बडी निष्ठा थी। इनके अनुयायी अब तक प्रतिवर्ष उक्त उत्सवो को बडे समारोह के साथ मनाते हैं।

रामाजी

रामाजी छपरा जिले के निवासी थे। इनकी जन्मभूमि बिटाय नामक ग्राम सिवान के निकट स्थित है। यही के एक कायस्थ-परिवार मे स० १६२८ की भाद्र कृष्णा सप्तमी को इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम मुशीराम लाल और माता का रामप्यारी देवी था। मुशीजी पटना की किसी अदालत मे नकलनवीस थे, यहाँ वे बाकरगज मुहल्ले में बाबा भीषमदास के स्थान पर रहते थे। वे रामाजी को अपने साथ पटना ले गये और वही इनकी शिक्षा हुई। छोटी आयु में ही राम के दूलह रूप में इनकी भावासक्ति हो गई। अत:, खेलते और पढते समय निरतर ये विवाह लीला के ही ध्यान मे मग्न रहने लगे। धीरे-धीरे इनका मन पढाई मे उचटता गया। इसके परिणामस्वरूप एण्ट्रेंस की परीक्षा मे असफल होने के साथ ही शिक्षा समाप्त हो गई। पिता ने इन्हें नौकरी करने को कहा, किंतु इनका मन उसमें भी न लगा। विवश होकर उन्होंने इनको घर भेज दिया। वहाँ कुछ दिनो तक रहने के बाद एक समीपवर्ती गाँव बगौरा म इनका विवाह हुआ। गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी इनकी भाव-साधना

में कोई व्यतिक्रम नही हुआ। उस प्रदेश मे रामविवाह-लीला को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से इन्होंने मठवा ग्राम मे रामरक्षाप्रसाद तिवारी के द्वार पर एक विशाल मण्डप बनवाया। इसी प्रकार अपने इष्टदेव की जन्मभूमि तथा विवाह-लीला से सम्बद्ध स्थानो—अयोध्या, बक्सर, सीतामढ़ी और जनकपुर—की स्मृति को स्थायित्व देने के विचार से इन्होंने सरयाँ (छपरा) ग्राम मे चार विवाह-मण्डप बनवाये। इसके अतिरिक्त अपने जीवन-काल मे ये प्रतिवर्ष अयोध्या मे श्रीरामचरितमानस का विवाहोत्सव बडे धूमधाम से करते रहे। इनकी स्मृति को चिरतन बनाने के लिए बाद को पुजारी रामशकरशरण ने तुलसी-उद्यान (विक्टोरिया-पार्क) के समीप 'वियहुती' भवन स्थापित किया। यहाँ अब तक रामविवाह के अवसर पर सतो का विशाल भोज दिया जाता है। चालीस वर्ष तक पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार के लोक-जीवन को राम की माधुर्य लीलाओ मे अनुरजित कर स० १६८५ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को रामाजी ने दिव्य दूलह की नित्यलीला म प्रवेश किया।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने पर भी रामाजी ने उपास्य की मधुर लीलाओ का वर्णन करने के लिए ग्राम गीतो की ही शैली अपनाई। इनकी लिखी कोई स्वतत्र रचना नहीं मिलती। विवाह-लीला के अवसरो पर इनके द्वारा गाये गए भोजपुरी के कुछ स्फुट गीत ही उपलब्ध हैं। रसिको मे ये मधुर दास्य-भाव के आदर्श भक्त माने जाते हैं।

इन रससिद्ध साधको के अतिरिक्त बिहार-प्रदेश के विभिन्न भागो में ऐसे अनेक रामोपासक हुए हैं जिनके अब कवल नाम शेप रह गये है। साम्प्रदायिक साहित्य मे इनका जो वृत्त सुरक्षित है, वह सिद्धियो और चमत्कारो के गहरे कुहासे से आच्छादित है। उसके आधार पर उनके जीवन की धुँधली रूप-रेखा भी प्रस्तुत नही की जा सकती। ऐसी दशा मे हमे उनके यथोपलब्ध निम्नाकित वृत्त से ही सतोप करना पडता है—

१. कृपासखी—ये रसिक-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक अग्रदासजी के शिष्य थे। गुरु की अनुमति लेकर ये परमाराध्या की जन्मभूमि का दर्शन करने मिथिला गए। वहाँ कौशिकी नदी के तट पर जानकीनगर मे इन्होने अपनी गुफा बनाई और कई वर्षों तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत किया। कहते हैं, सीताजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया था। इनकी गद्दी अब तक स्थापित है।

२ रघुनाथदास—ये जनकपुर मे रत्नसागर पर कुटी बनाकर रहते थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन इन्होने सखियों-समेत समीपवर्ती धान क खेत मे विचरती हुई स्वामिनी का साक्षात्कार किया था। इस घटना की चर्चा इन्होने अपने शिष्य

हरेराम जीवन से की थी।

३. सीताप्रसाद—ये मिथिलावासी महात्मा दयाराम के शिष्य और सीता-मढ़ी की गद्दी के आचार्य थे। चित्रकूट से 'मिथिला-माहात्म्य' लाकर सर्वप्रथम इन्होने ही उसके आधार पर जनकपुर की परिक्रमा स्थापित की थी। इसके अतिरिक्त ज्ञानकूप तथा सीताराम-ब्याहवेदी जैसे अनेक गुप्त तीर्थों के पुनरुद्धार का भी श्रेय इन्ही को है।

४. सूरदास—इनकी भी गणना मिथिला के लुप्तप्राय महत्त्व के पुनः स्थापकों मे की जाती है। ये पिपरा मे निवास करते थे। कहा जाता है, सूरकिशोरजी के मिथिला-विलास के अनुसार इन्होने उस पुरी की वृहत् परिक्रमा की रूपरेखा निश्चित की थी।

५. हरिजनदास—ये नरघोघी गद्दी (मिथिला) के महंत थे। इनके गुरु सभवत. रामललाजी थे। नरघोघी गद्दी की साम्प्रदायिक परम्पराओ मे निर्दिष्ट हरिकृष्णदास से ये अभिन्न जान पडते हैं। मानसी साधना अथवा ध्यान-योग के ये निष्णात आचार्य माने जाते हैं। इनके शिष्य अलखरामदास भी अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। विवाह लीला मे इनकी बडी निष्ठा थी। कहते हैं, रामचरितमानस मे वर्णित विधान के अनुसार एक बार इन्होंने जनकपुर मे बडे समारोह के साथ राम-विवाह का आयोजन किया था।

६. भिक्षुकराम—ये कोल्हस्वामी के द्वारे के शिष्य और मैथिल ब्राह्मण थे। विमला नदी के तट पर बलहा नामक गाँव इनकी जन्मभूमि था। युगलप्रियाजी से रसिक-भावना का सम्बन्ध लेकर ये आजीवन जनकपुर में साधना-रत रहे। भिक्षावृत्ति से जीवन-यापन करने के कारण ये 'भिक्षुकराम' नाम से प्रसिद्ध थे। हरेराम और बूंदीराम इनके दो पुत्र थे। इन्होंने गाँव में ही रामजानकी-मदिर स्थापित करके आजीवन युगलसरकार की सेवा करते हुए काल-यापन किया था।

७. नत्थूदास—ये पटना के किसी रामजानकी-मदिर के महन्त थे। इष्टदेव की माधुर्य-लीलाओ के आयोजन मे इनकी दक्षता लोक-प्रसिद्ध थी। भागवत-कथा के मर्मज्ञ व्यास प० जगन्नाथदास इनके शिष्य थे। नत्थूदासजी के द्वितीय शिष्य रसिक जानकीदास थे। इन्होंने रामानुजदास नामक किसी रसिक महात्मा से शृगारी रामोपासना का सम्बन्ध लिया था। प्रसिद्ध है कि रैपुरा ग्राम की विवाह-लीला में इन्हें अली-भाव की उपलब्धि हुई थी।

८. जनगोविन्द—ये रामानन्दजी के शिष्य सुरसुरानद की परम्परा मे आविर्भूत हुए थे और बिहार में गगातट पर वरग्राम मे निवास करते थे। कहते

हैं कि एक बार ये मंदिर की व्यवस्था का भार शिष्य पूर्णदास को सौंपकर दर्शनार्थ जगन्नाथपुरी गये। इनके जाने के कुछ ही दिनों बाद बिहार के सूबेदार ने किसी कारणवश रुष्ट होकर उस गाँव पर चढाई कर दी। पूर्णदास ने इसकी सूचना गुरु के पास भेजी। जनगोविन्द ने पत्रोत्तर में एक साखी लिख भेजी। उसे पढ़ते ही शाही सेना में आग लग गई। इससे घबराकर सारे सैनिक भाग खड़े हुए। पूर्णदास के शिष्य सहजराम और प्रशिष्य मोहनदास क्रमशः उस गद्दी के आचार्य हुए।

९. **रामदास कायस्थ**—ये मिथिला-प्रदेश के सैदपुर ग्राम में रहते थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम तिरहुत में रामचरित-मानस का प्रचार किया था। प्रसिद्ध संतसेवी मँगनीराम इन्हीं के पुत्र थे, जो घर में उत्पन्न मोटा अन्न बेचकर संतों की सेवा के लिए गेहूँ-चावल खरीद लाते थे। सुना जाता है, एक बार इन्होंने इस कार्य के लिए अपनी स्त्री के आभूषण बेच डाले थे, जिन्हें भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं आकर छुड़ाया था।

१०. **रामसेवक**—ये प्रसादराम के शिष्य थे और समस्तीपुर के निकट किसी गाँव में रहते थे। विवाह-लीला के आयोजन में ये बड़ी रुचि रखते थे।

११. **श्रीभगवान**—इनकी गद्दी आरा में थी। कुटी में कोई संपत्ति नहीं लगी थी। अतः आकाशवृत्ति ही जीविका का एकमात्र साधन थी। इनके शिष्य महन्त बालकृष्णदास बड़े संतसेवी थे।

१२. **रामचंन**—ये जाति के क्षत्रिय थे। कुछ-काल तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर इन्होंने विरक्त वेष धारण कर लिया था। पहले इन्हें संगीत में बड़ी दिलचस्पी थी। चित्रकूट में कई वर्षों तक सत्संग करने के पश्चात् ये मिथिला लौट आये और यहीं राम की माधुर्य-लीलाओं पर छंद-रचना करते हुए रहने लगे। परसा के महात्मा प्रसादीराम इन्हीं के शिष्य थे।

१३. **मिथिलादास**—ये जीवारामजी के साधक शिष्य थे। मिथिला में कमला नदी के तट पर इनकी गुफा थी। कहा जाता है, उस प्रदेश के गौरव की पुनः स्थापना में इनका विशेष हाथ था।

बिहार के रसिक संतों द्वारा परिवर्द्धित रसिक भक्तिधारा ने उस प्रदेश की रामोपासक जनता को ही प्रभावित नहीं किया—शैवों और कृष्णभक्तों के भी हृदय में रामोपासना के बीज आरोपित किये। इसके परिणामस्वरूप १८वीं और १९वीं शताब्दी में इन सम्प्रदायों के अनेक अनुयायी रसिक-संप्रदाय में दीक्षित हो गये। रामचरित-मानस और राम-भक्ति में ये सभी बड़ी आस्था रखते थे। नीचे इनका पृथक् रूप से संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

क शैव (दशनामी) रामभक्त

१ **सुखरामगिरि**—ये शालिग्रामी नदी के तट पर मोरिया ग्रामवासी शैव थे।

२ **ततगिरि**—इनकी गद्दी मठिया गाँव मे थी।

३ **केसरिगिरि**—ये अगोयरि (मिथिला) के दक्षिण मडुवा नामक गाँव में रहते थे। इनके गुरुभाई कस्तूरीगिरि भी रामोपासक थे।

४ **मणिगिरि**—ये सिसिनी नामक गाँव मे निवास करते थे।

५. **हर्षभारती**—इनकी कुटी कचनारि ग्राम मे थी। इनके दादागुरु पयहारीजी अपने समय मे सिद्धि के लिए प्रख्यात थे।

६. **गुरु यत्सभारती**—ये जनकपुर मे अमनौरि गाँव के निवासी थे।

ख कृष्णोपासक रामभक्त

१ **रामदयाल**—ये गोस्वामी हितहरिवश की परम्परा क महात्मा वशीलाल के शिष्य थे। इनकी जन्मभूमि भोजपुर-प्रदेशातर्गत जमिरा गाँव थी। ये राम-कृष्ण मे अभेद-भावना रखते थे।

२ **अभयसिह**—ये भी हित-वश मे ही दीक्षित थे।

३ **संतोषमणि**—ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण और हितहरिवश की परम्परा के शिष्य थे। भागवत के व्यास-रूप में इनकी बडी ख्याति थी।

४. **हरिलाल**—ये पटना-स्थित राधाकृष्ण-मदिर में रहते थे। मलूकजी के द्वारे के शिष्य पटना-वासी हरेराम इनके अभिन्न मित्र थे। उन्हीं के प्रभाव स ये रामभक्ति की ओर आकृष्ट हुए थे।

५. **घनश्यामदास**—ये हरिव्यासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। राघवदास नामक एक अन्य महात्मा के साथ ये गडकी के तट पर मुजफ्फरपुर मे निवास करते थे। मिथिला भूमि में इनकी अगाध निष्ठा थी।

इन महात्माओ के अतिरिक्त कुछ ऐस भी रसिक सत है, जो न तो बिहार के निवासी थे और न यह प्रदेश जिनका साधना क्षेत्र ही था। किन्तु, उन्ह सिद्धि इसी भूमि मे प्राप्त हुई थी। रसिकाचार्य कृपानिवास, प्रेमसखी और जानकीचरण इसी श्रेणी मे आते है। साम्प्रदायिक साहित्य म जो वृत्तात वर्णित है, उससे ज्ञात होता है कि हनुमान्‌जी ने मिथिला मे श्रीप्रसादसखी के रूप मे प्रकट होकर कृपानिवासजी को दिव्य लीला का दर्शन कराया था। इसी समय से उन्होंने प्रसादसखी को अपना गुरु माना और उन्ही के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से

साधना की।[1]

इसी प्रकार शृंगवेरपुर-वासी महात्मा प्रेमसखी ने दंडवत करते हुए चित्रकूट से मिथिला की यात्रा की थी, उस समय जानकीजी ने उनकी निष्ठा पर मुग्ध होकर प्रत्यक्ष रूप में उन्हें अपनी सखी कहकर अपनाया था। युगलप्रियाजी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है। अयोध्यावासी महात्मा जानकीचरण को भी रंगभूमि की दिव्य झाँकी का दर्शन यहीं हुआ था। यह आश्चर्य की बात है कि इन्होंने साम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार रसिक भाव का सम्बन्ध प्राप्त करने के पहले ही इस प्रकार की भावसिद्धि प्राप्त कर ली थी। महात्मा दयाराम से शृंगारी उपासना का सम्बन्ध इन्होंने इस घटना के बाद ग्रहण किया था।[2]

इन संतों के द्वारा बिहार में स्थापित पीठ आज भी शृंगारी रामोपासना के प्रमुख केन्द्र-रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रदेश के निवासी शृंगारी रामभक्त स्नेहलता मोदलता तथा की वाणी में रसिक-साहित्य की धारा अब तक अविरल, श्री सीतारामशरण रूप में प्रवाहित है। समाज के सभी वर्गों के सहस्रों जिज्ञासु आज भी रसिक संतों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर आध्यात्म-पथ पर अग्रसर होते हैं।



१. इनको विलोकि बड दुष्ट को प्रभाव काहू कियो न जनाव उठि गए चलि भोर ही।
गुरु अपमान को विषाद जिय जानि उर आनि हनुमान चले मिथिला के ओर हो॥
बीच-बीच बास करि सीतामढ़ी आए भूमि देखे सुख पाये कृपालता नित मोर ही।
आगे चलि पुरी छवि नैनन प्रत्यक्ष देखी धनुष बरस दरसावत किसोर ही॥
रही कछु वासना उपासना की दृढ़ता में करत ही ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू।
श्रीप्रसाद रूप निज अलख लखाओ उर ताप को मिटायो जन जानिके नवान जू॥
कनक भवन को स्वरूप दरसायो भयो मिथिला में तैसोई अवध परमान जू।
इष्ट के मिलाइबे में हमहीं को गुरु मानो आलिन के यूथ चारुशीला हैं प्रधान जू॥
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ३५।

२. रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ६४।

तुलसीमत और वर्तमान जीवन-संघर्ष

जीवन सघर्ष मानव की नियति है। अनादि काल से मनुष्य अपने को स्थापित करने के प्रयत्न मे सघर्ष करता आया है। यह सघर्ष दो स्तरो पर होता रहा है। एक तो प्राकृतिक शक्तियो को अपने अनुकूल बनाने के लिए मनुष्य अपनी बौद्धिक एव शारीरिक क्षमता के सहारे उनसे जूझता आया है, दूसरे मानव समाज के बीच अपनी स्थिति दृढ करने, समाज को व्यवस्थित करने और मर्यादा और मूल्य को स्थापित करने के लिए भी वह बराबर सघर्ष करता रहा है। ये दोनों ही सघर्ष भौतिक स्तर पर होते आये हैं। एक दूसरे प्रकार का सघर्ष मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर भी करता आया है। यह सघर्ष अपने मन का उन्नयन करने अपने शुद्ध स्वरूप को पहचानने और अपने को विश्व की केन्द्रीय चेतना (ब्रह्म) से एकाकार करने के लिए किया जाता रहा है। ये दोनों ही स्तरो पर किये जानेवाले सघर्ष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत मनुष्यो ने (सत महात्मा आदि) सामाजिक मर्यादा एव नैतिक मूल्यो के लिए भी अधिक व्यापक सार्थक और प्रभावी सघर्ष किये हैं।

जिस समय तुलसीदास का आविर्भाव हुआ, सघर्ष के दोनो स्तरो पर विघटन, अनास्था और अवमूल्यन की स्थिति थी। आध्यात्मिक सघर्ष के क्षेत्र मे, प्रवचना, अहकार आडम्बर और पाखण्ड का बोलबाला था। अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनकी दृष्टि सकीर्ण थी। अध्यात्म साधना का क्षेत्र वचको से भर गया था। भौतिक जीवन व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गयी थी। वर्ण और आश्रम दोनो की मर्यादाएँ टूट गयी थी। सारा समाज अनेक जातियो उपजातियो मे बँट गया था। समाज की जीवनी शक्ति का ह्रास हो गया था। व्यक्ति के लिए निरन्तर टूटते रहने के अतिरिक्त कोई चारा नही था। तुलसीदास ने रामचरित-मानस के आरम्भ मे उत्तरकाण्ड के कलियुग प्रसंग मे और कवितावली के उत्तरकाण्ड मे तत्कालीन विघटन और मूल्यहीनता का यथार्थ चित्र अकित किया है।

आज का जीवन सघर्ष भी लगभग उसी कोटि का है जिस कोटि का तुलसी

के आविर्भाव काल में था। मनुष्य बदल अवश्य रहा है किंतु उसकी मूल मनोवृत्तियाँ आज भी उसे पीछे की ओर खींच रही हैं। विज्ञान ने प्रकृति के साथ हमारे संघर्ष को तीव्र कर दिया है। मनुष्य एक सीमा तक प्रकृति पर विजय प्राप्त कर चुका है। लेकिन उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं और वह इनकी पूर्ति के प्रयत्न में मानवीय मूल्यों को तिलांजलि देता जा रहा है। आज का मनुष्य भौतिक सुख सुविधाओं को ही जीवन का लक्ष्य मानकर उन्हें पुंजीभूत करने में अपनी सारी शक्ति लगा रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से, एक समुदाय दूसरे समुदाय से और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से स्वार्थ प्रेरित होकर संघर्ष रत है। प्रत्येक को मात्र अपना ध्यान है। जीवन में नैतिक मूल्यों का महत्त्व घट गया है। वे सारे तत्त्व जो मनुष्य की उच्चतर सांस्कृतिक यात्रा के साक्षी थे, आज अपना अर्थ खो चुके हैं। द्वन्द्व, तनाव, कुंठा, सन्त्रास-अजनबीपन, अनास्था आदि शब्द आज के जीवन संघर्ष के प्रतीक बनकर साहित्य के क्षेत्र में अपनी सार्थकता प्रमाणित कर रहे हैं। मनुष्य अनेक स्तरों पर विभक्त होकर असहाय हो रहा है। उसके कार्यकलाप लक्ष्यहीन और असंगत प्रतीत हो रहे हैं। आज किसी भी प्रकार के आदर्शात्मक चिन्तन को अस्वीकार किया जा रहा है। तर्क यह दिया जाता है कि आदर्शवादी चिन्तन से जुड़ा हुआ व्यक्ति रूढ़िवादी होता है और वह सामाजिक मेल-मिलाप में बाधक सिद्ध हो सकता है। आज के साम्राज्यवादी और कट्टर राष्ट्रवादी जीवन व्यवस्था के हिंसात्मक संघर्ष से ऊबकर युवापीढ़ी सभी प्रकार के आदर्शवादी विचारों का बहिष्कार कर रही है। सब मिलाकर स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। रामावतार के पूर्व रावण तथा उसके सहायक राक्षसों ने समाज का लगभग इसी स्थिति में पहुँचा दिया था। उनके कृत्यों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने प्रकारान्तर से अपने युग की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष का ही चित्रण किया है। उदाहरण के लिए तुलसीदास द्वारा वर्णित कुछ चित्र नीचे दिये जा रहे हैं :—

धर्म विरोध—

जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥

अनाचार—

बरनि न जाय अनीति, घोर निसाचर जे करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापन कवन मिति॥

मर्यादाहीनता—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

कलियुग-वर्णन के प्रसग मे तुलसीदास ने निश्चित रूप मे अपने समय की सामाजिक स्थिति एव संघर्ष को ही प्रकट किया है—

लोभ की प्रधानता

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।

दिशाहीनता

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा ।

अव्यवस्था एव विशृखलता—

वरन धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन । कोई नहिं माननिगम अनुसासन ।।

आर्थिक विषमता—

कलि बारहिं बार दुकाल परे । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे ।।

उच्चवर्ग मे दुराचार और पाखड की वृद्धि—

धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ।।

कवितावली के उत्तरकाण्ड मे भी तुलसीदास ने अपने युग जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । उस समय भी बेरोजगारी ऐसी ही थी जैसी आज है । देखिए—

खेती न किसान को भिखारी न भीख बलि,
वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई का करी ।

तात्पर्य यह कि आज के जीवन-सघर्ष की छाया तुलसी के आविर्भाव काल मे भी विद्यमान थी । तुलसी ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य रचनाओ के माध्यम से सभी प्रकार की वैयत्तिक एव सामाजिक समस्याओ का समाधान प्रस्तुत किया । उन्होने स्पष्ट रूप से अपने मत का उद्‌घोष किया । अब देखना यह है कि उनका मत क्या है और आज के जीवन में वह कहाँ तक समाधान के रूप मे स्वीकार्य हो सकता है ?

केन्द्रीय आस्था : राम मे विश्वास

तुलसी की जीवनसाधना की चरम उपलब्धि राम हैं । राम ही उनके जीवनाधार हैं । सारे ससार को वे राममय मानते हैं । जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति म वे राम का ही आश्रय लेते हैं । राम के बलपर वे कलियुग के

समस्त विरोधो एव अनीतियो को चुनौती देते हैं। वे राम से ही याचना करते हैं। वे ससार के सारे सम्बन्धों को राम के नाते ही स्वीकारते हैं। दोहावली में राम के प्रति अखण्ड विश्वास व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।
ज्ञानवत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ विषान ॥
जरउ सो सपति, सदन, सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥
पुन्य, पाप, जस, अजस के, भावी भाजन भूरि।
सकट तुलसीदास को, राम करहिंगे दूर ॥

तुलसी की सारी साधना इस लक्ष्य को केन्द्र मे रखकर आगे बढी है कि वे राम के हो जाएँ और राम को अपना मान ले।

सबै कहावत राम के, सबहिं राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास ॥

राम के प्रति इस अखड आस्था का रहस्य क्या है ? वस्तुत 'राम' भारतीय मनीषा के चिन्तन की चरम उपलब्धि हैं। वह एक ऐसा 'तत्त्व' है जिससे ऊँची धारणा मनुष्य की बौद्धिक एव आध्यात्मिक चेतना की सीमा के बाहर की बात है। राम से ऊँची सत्य की धारणा नहीं हो सकती। शुभ की चरम कल्पना भी राम हैं। सौन्दर्य का चरम रूप भी राम हैं। जिसके जीवन मे 'राम' आ जाता है, वह सत्यनिष्ठ हो जाता है, वह सारे संसार की कल्याण कामना से भर उठता है, उसकी वाणी, विचार और कार्य सब कुछ सुन्दर हो जाता है। राममय होकर हम सारे विकारों से परे हो जाते हैं। राम मे आस्था जीवन के सर्वोच्च मूल्यों में आस्था का ही नामान्तर है। राम परम तत्त्व है। राम ज्ञानियो का ज्ञेय, ध्यानियों का ध्येय, उपासको का उपास्य और कर्मयोगियो की प्रेरणा का मूल स्रोत है। जीवन सघर्ष तो बराबर रहेगा। पहले भी था आज भी है और आगे भी चलेगा। किसी केन्द्रीय विश्वास से प्रेरित होकर उस मे कूदने पर मनुष्य हार-जीत एव आशा निराशा के द्वन्द्व को मनुष्य झेल लेता है किन्तु आस्था विहीन होकर सघर्ष करता हुआ व्यक्ति टूट जाता है, बिखर जाता है। इसीलिए आज के जीवन सघर्ष में भी किसी आस्था-बिन्दु के प्रति अर्पित होना श्रेयस्कर होगा।

सत्यनिष्ठा

जीवन के संघर्षों को झेलने और जीवन को सार्थक परिणति देने के लिये

सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है। रामकथा का प्रत्येक पात्र सत्यनिष्ठ है। राम तो सत्यसंध (सत्यप्रतिज्ञ) हैं ही। गुरु वशिष्ठ के शब्दों में—

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू॥

महाराज का दशरथ महत्त्व भी इसीलिए है कि वे 'सत्य' को सर्वोपरि 'धर्म' मानते थे—

तुलसी जान्यो दसरथहिं धरमु न सत्य समान।
राम तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान॥

भरत के चरित्र की महिमा सर्वविदित है। वे सत्य के उपासक थे। जिस 'सत्य' की रक्षा के लिए राम वनवास कर रहे थे उसी सत्य की रक्षा के लिए भरत नन्दि ग्राम में पर्णकुटी बनाकर निवास कर रहे थे।

कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

आज हमारे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि हम 'झूठ' को व्यावहारिक सफलता का सूत्र मान बैठे हैं।

मर्यादाप्रियता—व्यावहारिक जगत् विविध नामरूपात्मक पदार्थों का पुञ्ज है—जहाँ अनेक प्रकार के जीव जन्तु निवास करते हैं, अनेक स्तरों पर जीनेवाले लोग हैं। जहाँ अनेक प्रकार की सीमाओं में मनुष्य बँटा हुआ है, वहाँ जीवन की सार्थकता इसी में है कि सब लोग एक-दूसरे की मर्यादा का ध्यान रखें। व्यावहारिक स्तर पर सबको एक या समान कर देने का स्वप्न अभी विश्व के किसी भूखण्ड में साकार नहीं हो सका है। ऐसी स्थिति में सबकी मर्यादा का ध्यान रखकर सह अस्तित्व के सिद्धान्त को वरीयता देना उचित होगा। तुलसी का मर्यादावाद ही आज सह-अस्तित्व के रूप में प्रचारित हो रहा है। तुलसी द्वारा चित्रित आदर्श समाज में राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, सभ्य-असभ्य, जड़ चेतन सभी अपनी मर्यादा के भीतर अनुशासित हैं। जिसने मर्यादा भंग की है, उसी का मान-मर्दन हुआ है। राम राज्य की मर्यादानिष्ठ समाज व्यवस्था का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

बरनाश्रम निज-निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग॥
× × ×
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
× × ×
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥

विधु महि पुर मयूखन्हि, रबि तपि जेतनहिं काज ।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज ॥

जब प्रकृति अपने स्वभाव में स्थित है तो मनुष्य का मर्यादित न होना असम्भव है। 'मर्यादा' अपने स्वभाव मे स्थित होना ही है। आज हम इतने व्यग्र, आकुल, त्रस्त और उद्विग्न हैं कि सीमा और स्वभाव के सम्बन्ध मे सोचना ही नही चाहते, आचरण तो दूर की बात है। तुलसी का मर्यादावाद आज के जीवन संघर्ष में भी सार्थक समाधान दे सकता है।

धर्मशीलता—तुलसी ने वैयक्तिक और सामाजिक दोनो ही स्तरो पर धर्म को सर्वोपरि महत्व दिया है। तुलसी की धर्म चेतना सर्वव्यापी और शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित है। रावण जैसे दुर्धर्ष शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए भगवान् राम के जिस धर्म रथ का वर्णन किया गया है, उसके संयोजक तत्वो पर ध्यान देना आवश्यक है। शौर्य और धैर्य धर्मरथ के पहिये हैं। सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताका हैं। बल-विवेक, दम (इन्द्रियो का वश मे होना) और परोपकार उसके चार घोडे हैं। ये घोडे क्षमा कृपा और समता की रज्जुओ से धर्मरथ से जुडे हुए हैं। ईश्वर का भजन ही धर्म रथ का चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल और संतोष कृपाण है। दान परशु और बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति है। विज्ञान ही धनुष है। निर्मल और स्थिर मन ही तरकस है। समता, यम, नियम आदि उस पर सज्जित अनेक प्रकार के बाण हैं। ब्राह्मण और गुरु के चरणो मे पूज्य भाव रखना ही अजेय कवच है। इस प्रकार श्रेष्ठ मानवीय गुणों तथा शाश्वत जीवन-मूल्यो के श्रेष्ठ तत्वो से उस धर्मरथ की रचना हुई है, जिस पर आरूढ होकर राम रावण जैसे लोकपीडक और प्रचण्ड शत्रु का संहार करने में समर्थ होते हैं। धर्मारूढ होने से ही राम विजयी होते हैं और धर्म रहित होने के कारण ही रावण पराजित होता है। तुलसी ने समग्र रामकथा मे एक ही बात पर बल दिया है कि धर्माचरण सभी प्रकार से कल्याणकर है। भरत के चरित्र की महिमा का उद्घाटन करते हुए तुलसी ने बार-बार उन्हें सभी प्रकार के धर्मों की धुरी कहा है।

होत न भूतल भाउ भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥

तुलसी की कृतियो में व्यक्ति, परिवार समाज, प्रजा, सभी के धर्म पर प्रकाश डाला गया है। यह धर्म भाव मिथ्याडम्बर नहीं विवेक पुष्ट है। आज की यथार्थवादी जीवनदृष्टि भी सहसा इसका विरोध नही कर सकती। इसकी व्यावहारिकता और ग्राह्यता के संदर्भ मे मतभेद हो सकता है किन्तु इसकी धारणा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के व्यापक भ्रष्टाचार को

धर्म भाव के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। धर्म जीवन की बहुत बड़ी प्रेरणा है। तुलसी ने अपनी कृतियो में इसके मर्म को स्पष्ट करके मानवता का सच्चा पथ-प्रदर्शन किया है।

लोक-व्यवहार एव नीतिमत्ता

किसी भी युग मे जीवन को सुचारु रूप से सचालित करने के लिये 'नीतिमत्ता' एव लोक-व्यवहार का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इसके अभाव मे ऊँचे-से-ऊँचा आदर्श भी आचरण मे नही आ पाता। तुलसी की कृतियो मे नीतिमत्ता एवं व्यवहार ज्ञान के अनेक सूत्र लक्षित होते हैं। इन सूत्रो को दो प्रकार से उपलब्ध किया जा सकता है। एक तो रामकथा के पात्रो के आचरण से और दूसरे तुलसीदास की स्फुट उक्तियो से। तुलसी की कुछ प्रेरक उक्तियाँ उद्धृत हैं ..

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडबना, कीन्ह न यहि ससार॥
सहवासी कायो गिलहिं, पुरजन पाल प्रबीन।
कालक्षेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन॥
मृगनयनी के नयनसर, को अस लाग न जाहि।
अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को प्रस्थान॥
× × ×
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊख औ पान॥
कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज सतोष बिनु?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिय॥
दिये पीठि पाछे लगे, सनमुख होत पराय।
तुलसी सपति छाँह-ज्यो, लखि दिन बैठि गँवाय॥
बचन बेष ते जे बनैं, ते बिगरैं परिनाम।
तुलसी जे निज ते बनैं, बनी बनाई राम॥
माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोर से, कोउ न प्रेम पथ जोग॥
मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहि गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यो, पारद पावक आँच॥

तुलसी की कृतियों के आधार पर लोक-व्यवहार एव नीति बोधक सूत्रो का एक कोष बनाया जा सकता है। ये सूत्र आज भी जीवन सघर्ष मे हमारी सहा-

यता कर सकते हैं। इनमें मानव जीवन के अनुभव का सार तत्व एकत्र किया गया है। अनुभव से प्राप्त सत्य ही यथार्थ है। अत. इन अनुभूत सूत्रो की उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

जहाँ तक राम कथा के पात्रो की नीतिज्ञता का प्रश्न है वह पद-पद पर लक्षित की जा सकती है। राम, भरत, वशिष्ठ, हनुमान, जामवत, विभीषण सभी नीतिज्ञ हैं। इनके कथन एव आचरण दोनो से ही हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। राम कथा के अतर्गत आने वाले वे स्थल जहाँ इन नीतिज्ञो के सवादो की योजना की गयी है, इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। चित्रकूट की सभा मे लोक-व्यवहार एव नीतिमत्ता के श्रेष्ठ उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के अन्य अवसर भी हैं। जहाँ कही जीवन की विषम परिस्थिति के बीच से पात्रो को गुजरना पडा है वहाँ उन्होने बडी सूझ-बूझ और नीतिमत्ता का परिचय दिया है। आज के जीवन सघर्ष में भी हम इन स्थितियो मे मानस के पात्रों द्वारा लिये गये निर्णयो से लाभ उठा सकते हैं।

संतुलित जीवन-दृष्टि

राम चरित मानस मे सतुलित जीवन दृष्टि पर विशेष बल दिया गया है। तुलसी के पूर्व धर्म-साधना एव साहित्य रचना दोनों क्षेत्रो मे सतुलित दृष्टि का अभाव लक्षित होता है। साधना के क्षेत्र मे ज्ञान-साधना, कर्म-साधना, योग-साधना सभी का विकास अलग-अलग हुआ था। सभी की अपनी सीमाएँ बन गयी थी। ज्ञान साधना ने साधको के बीच अहकार एव दभ का विकास किया। कर्म-साधना मिथ्याडम्बर की ओर ले गयी थी। योग साधना प्रदर्शन की वस्तु बन गयी थी। स्वय उपासना के क्षेत्रो मे भी अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गयी थी। तुलसी ने इन सभी का सामंजस्य करते हुए श्रुति सम्मत एव विरति विवेक-युक्त हरि भक्त पथ पर बल दिया। उनकी जीवन दृष्टि एक पूर्ण जीवन पद्धति का निर्माण करने मे समर्थ है। उसमे ज्ञान है, किन्तु अहकार नही, श्रद्धा है, किन्तु अन्ध विश्वास नहीं, योग है, किन्तु प्रदर्शन नही, कर्म है, किन्तु आडम्बर नहीं। इस प्रकार उन्होंने सारी विकृतियो से अलग शुद्ध एव पूर्ण साधना पथ का निर्माण किया है। आज के जीवन सघर्ष मे यह जीवन दृष्टि की पूर्णता हमारे लिये अत्यन्त श्रेयस्कर हो सकती है।

उपर्युक्त प्रमुख बातों के अतिरिक्त स्पष्टवादिता, तेजस्विता, आत्मविश्वास, दृढता, आत्मालोचन, सामान्य जन के प्रति स्नेह, अनासक्ति आदि अनेक ऐसे तत्व हैं, जो तुलसी की विचारधारा एव जीवन दृष्टि के अभिन्न अंग हैं। किसी

भी युग के संघर्षशील मानव के लिए इन गुणों की आवश्यकता पड सकती है। इनके अभाव मे न हम अच्छे नेता बन सकते हैं, न अच्छे अनुयायी।

चेतना का परिष्कार

आध्यात्मिक स्तर पर किया जाने वाला संघर्ष मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के परिष्कार का मूल आधार रहा है। आज की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सभ्यता से ऊबा हुआ मनुष्य अध्यात्म के प्रति जिज्ञासु हो रहा है। विश्व के ऐसे राष्ट्र जहाँ वैभव की कमी नही है, किन्तु जो भौतिक सुख सुविधाओ से ऊब चुके हैं आज अध्यात्म तत्व के रहस्य को समझना चाहते हैं। ऐसा समझा जा रहा है कि आज के संघर्षशील मानव के लिये अध्यात्म ही एकमात्र विश्राम केन्द्र बन सकता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे ऋषियो और धर्मसाधको ने बहुत पहले इस रहस्य को समझ लिया था। अध्यात्म के स्तर पर चलने वाला संघर्ष *चेतना का जडता से, सूक्ष्मता का स्थूलता से और निम्नतर मनोभूमि का* उच्चतर मनोभूमि से होने वाला संघर्ष है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका मे इस संघर्ष की सभी स्थितियो को व्यक्त किया है। दैन्य की सारी भूमिकाएँ इसी संघर्ष को स्पष्ट करती है। इस संघर्ष की समाप्ति उनके पूर्ण मनोन्नयन के साथ हो जाती है। इसकी पहचान मात्र इतनी ही है कि संघर्षशील साधक का मन प्रभु के चरणो मे लीन हो जाता है। वह ससार से विमुख हो जाता है। उसका सारा कल्मष मिट जाता है। वह हानि-लाभ, सुख-दुःख, उभय स्थितियो मे अविकृत रहकर समरसत्व प्राप्त कर लेता है। विनय पत्रिका मे तुलसी ने कहा है—

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यौं, तेहि सहज नाथ सौं नेह छाडि छल करिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख-सुख सबै सम चित हित अनहित, कलि कुचाल परिहरिहै॥

मनका यह उन्नयन ही तुलसी का लक्ष्य नही था। वे मनके इस परिष्कार के बाद उससे प्रभु के प्रति पूर्ण रागात्मक समर्पण भी चाहते थे। वे आगे कहते हैं।

प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसीदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनन्द उमगि उर भरिहै।

राम के प्रति यह पूर्ण समर्पण ही तुलसीदास के आध्यात्मिक संघर्ष की चरम स्थिति है। मनका उन्नयन चेतना का परिष्कार और समरसत्व प्राप्त करने के

बाद किसी उच्चतम मूल्य के प्रति समर्पण को आज भी आध्यात्मिक स्तर के सघर्ष की चरम उपलब्धि माना जा सकता है।

तात्पर्य यह कि तुलसी ने जिन जीवनादर्शों का प्रतिपादन किया है, और जिन जीवन मूल्यो को अपने मत का मूलाधार माना है, वे आज भी हमे प्रेरणा और शक्ति दे सकते हैं। तुलसी का मत गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर आज भी प्रासगिक है। अत. एव वाह्य द्वन्द्व अथवा सघर्ष जीवन की प्रक्रिया है, लक्ष्य नही। इस सघर्ष की अनिवार्यता स्वीकारी जा सकती है। इसके सातत्य की बात कही जा सकती है, किन्तु इसे जीवन की उपलब्धि या लक्ष्य नहीं माना जा सकता। श्रद्धा और विश्वास के बिना किसी सघर्ष मे विजय नही प्राप्त की जा सकती। वह श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी का सम्बल था। उनके मत के मूल मे, उनकी जीवनपद्धति के केन्द्र मे और उनके समस्त जीवन सघर्षों की प्रेरणा भूमि के रूप मे श्रद्धा और विश्वास की सर्वोपरिता को अस्वीकार नही किया जा सकता। श्रद्धा ही आनन्द की भूमिका तक ले जाती है। आज का सशयग्रस्त मानस भी अन्तिम निर्णय के लिये श्रद्धा और विश्वास का सहारा लेता है। उसे लेना पडता है। भले ही यह श्रद्धा किसी परोक्षा, पूर्ण, का अखण्ड, अनादि, अनन्त, सत्ता मे न होकर कोटि-कोटि जनो के प्रति हो, इतिहास के प्रति हो या किसी व्यवस्था-विशेष के प्रति हो।



मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद

मामा प्रागदास[1] सखाभाव के रामोपासक थे। उनकी सख्यासक्ति विलक्षण थी। भक्तिशास्त्रों मे निर्दिष्ट नर्म, प्रिय और सुहृद् भावो के कगार उसकी वेगवती धारा को बाँध रखने में समर्थ न हो सके। तिरहुत के लुप्तप्राय तीर्थस्थलो के उद्धारक, जनक-भावापन्न महात्मा सूरकिशोर से दीक्षा ग्रहण कर निमिवंशी कुमार के रूप मे रघुवंशी रामचन्द्र से साले-बहनोई का सम्बन्ध जोड़ इन्होंने मिथिला अवध के पुराने नाते को अपने भावामृत से सींचकर फिर से हरा कर दिया। सम्बन्ध की पुष्टि के लिए ही ये यात्रा के अनेक कष्ट सहते हुये अयोध्या आये और कनक-भवन मे अपनी दिव्य बहन का नित्य दर्शन करते हुए उसी के समीप एक नीम के पेड के नीचे कई वर्षों तक कठोर साधना की। 'रामलला के सखा' होने से अयोध्यावासी इन्हे मामा कहते थे। इनके जीवन-काल मे ही यह उपाधि इनके नाम के साथ जुड़ गई और ये सर्वत्र मामा प्रागदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

युगलप्रियाजी ने रसिकप्रकाश भक्तमाल मे इनकी लोक-यात्रा के विषय में केवल इतना लिखा है कि ये महात्मा सूरकिशोर के शिष्य थे और सखाभाव से सीताराम की उपासना करते थे। इनकी विरक्ति-भावना इतनी तीव्र थी कि लोक-सम्पर्क की दूषित प्रवृत्तियों से बचते हुए ये आजीवन नीम के पेड के नीचे आसन जमाये रहे। लेटने के लिए एक चारपाई और पानी पीने के लिए एक

---

१ 'रामभक्ति मे रसिक संप्रदाय' (पृ० ४०२-४०३) मे इनका परिचय प्रयागदास नाम से दिया गया है, किन्तु इधर इनकी जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनमे प्रागदास नाम आया है। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' मे इनके नाम का यही रूप उल्लिखित है। लोक-व्यवहार में भी तीर्थराज प्रयाग को 'प्रागराज' अथवा 'परागराज' कहा जाता है। सभवतः, इसीलिए मामा 'प्रयागदास' ने अपनी ठेठ रचनाओं मे परागदास' छाप रखी है और साहित्यिक कृतियो मे छन्दानुरोध के कारण 'प्रागदास'।—ले०

करवा के अतिरिक्त इन्होंने कभी अपने पास कोई अन्य वस्तु रखी ही नहीं। (किसी रामायणी से) राम-वनवास के प्रसग मे युगल राजकुमारो के सीता-सहित नगे पाँव वन जाने का वृत्तांत सुनकर इन्हे बडा दु ख हुआ। भावावेश में इन्होंने तीनो पथिकों के लिए जूते बनवाये और उन्हें सिर पर रखकर अपने अलौकिक सम्बन्धियो को ढूँढते हुए पंचवटी जा पहुँचे। वहाँ आराध्य ने साक्षात् प्रकट होकर इनके द्वारा अर्पित जूते पहने।[1] वासुदेवदास ने पाद-टिप्पणी मे छप्पय की टीका में इन प्रसगो को स्पष्ट करते हुए कुछ नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि एक बार प्रयाग मे त्रिवेणी-तट पर निवास करते हुए इन्होंने कई शैवमतावलम्बियो को शास्त्रार्थ मे पराजित कर अपना शिष्य बनाया था।[2]

'रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय' के लिए सामग्री सकलित करते समय इन पक्तियो के लेखक को बहुत प्रयत्न करने पर भी, इनकी कोई लिखित रचना उपलब्ध न हो सकी थी। अयोध्या और मिथिला के सतों मे मौलिक परपरा से प्रचलित केवल चार छद मिले थे। अत. उक्त ग्रथ मे इनकी काव्य-शैली के उदाहरणस्वरूप उन्हे ही उद्धृत कर सतोष करना पडा था। इनकी भाषा ठेठ अवधी है। प्रागदास की काव्य प्रतिभा के विकासात्मक अध्ययन के लिए वे चारो छद नीचे दिये जाते हैं—

नीम के नीचे खाट पडी है खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सोवै रामलाल के सरवा॥

---

१. भाविक सुरकिशोर के प्रागदास साधक विशद।
प्रिय संबंध उदार सत्यपद निमि बसी हैं।
नीमतरे नवखाट बिछी करवा बिलसी हैं॥
तीव्र त्याग अनुराग अवधि पनहीं सिरधारी।
पंचवटी बन कुंजगली भेंटे पिय प्यारी॥
बचन भावयुत कहि सरस पहिराई पनही सुखद।
भाविक सुरकिशोर के प्रागदास साधक विशद॥
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० २२।

२. रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ट २३।

मुडियो ने परपच रचा है हमें काम का मेलो मे।
'परागदास' रघुबर को लैके पडे रहैगे ढेलो मे॥[1]
'परागदास' जो पीपर होते राघो होते भुतवा रे।
आठ पहर छाती पर रहते वै दसरथ के पुतवा रे॥
धुनि धुनि केसवा कहैं महेसवा पार न पावै सेसवा।
'परागदास' पहलदवा के कारन रघवा होइगे बघवा॥

मेरी यह धारणा थी कि प्रागदासजी की अन्य कृतियाँ इनके फक्कडपन और भ्रमणशीलता क कारण नष्ट हो गई होगी। किंतु, इधर अकस्मात् निम्बाचार्य रामसखे की रचनाओ के प्राचीन हस्तलेखो मे प्रागदास के तीन छद प्राप्त हो गये हैं, जिनमे दो सवैये हैं और एक पद।[2] वे इस प्रकार हैं—

दामिनी सी सिय सग विराजति मोती हिए बग पाँति छए हैं।
हेम जनेऊ मनौ धनुइन्द्र को पीत पिछौरी के रूप जए हैं॥

---

१ मामा प्रागदास मेलों को वैरागियो द्वारा भोली-भाली जनता को ठगने के लिए रचा हुआ प्रपच कहते थे। इसलिए, अयोध्या मे जब कार्तिक पूर्णिमा तथा रामनवमी के अवसर पर लाखो की भीड होती थी, तो ये नगर छोडकर रामघाट के आगे सरयू नदी के कछार मे जाकर रहा करते थे। उस समय राम का एक चित्र इनके साथ रहता था। मेला समाप्त होने पर ये पुनः अपने पुराने आसन पर नीम के पेड़ के नीचे चले जाते थे। —ले०

२ इन्हीं के साथ इनके गुरु सूरकिशोरजी का भी निम्नांकित छद मिला है
आसपास सहचरी नूपुर झनकार करें,
चपा कैसी कली मानौ फूली बेसमात की।
सौंधे की लपटें दपटें भरि भँवरन की,
वीनादिक बजन लागे उघटि कलगान की॥
गोखन झरोखन के परदा उधारि दीन्हे,
सतत सुभाइ लखी कोटि सतभान की।
मिटिगो अमंगल भयो मगल 'किसोर सूर'
जगमगाइ उठ्यो महल जागी जब जानकी॥

बैन कढ़ें मुखते अमीधार सो दीनन कौं बरसाइ दए हैं।
भावैं सदा 'प्रागदास' मयूर कौं रामलला घन से उनए हैं।।

स्याही सिताई ललाई लिए जहाँ जात निछावर मैन घने हैं।
कुंडल लाल लसैं अलकैं दिग पीनैं कपोल सुगंध सने हैं।।
मोती विराजति नासिका मैं बरनौं कहाँ रूप के तबू तने हैं।
सोहैं सदा 'प्रागदास' कौं भावत रामलला जू के नैन बने हैं।।

आछे प्यारे रामजी लला। तुम्हारे बदन पर अनत कला।।
मुख मे बीरी नैना बिसाल। जित चितए तित करे निहाल।।
जहाँ पडे भक्तन पे भीर। हरषत आवें सिय रघुवीर।।
छोटी सी धनुय्याँ छोटी छोटी तीर। खेलन निकसे सरजू के तीर।।
'प्रागदास' चले सरजू तीर। बीच मे मिलि गए सिया रघुवीर।।

इन तीनो छंदो मे 'प्रागदास' की छाप और अभिव्यक्त भाव मामा प्रागदास की पूर्वप्राप्त रचनाओ से सर्वथा अभिन्न हैं। ऊपर से देखने मे यद्यपि दोनो कवियो की भाषा-शैली में कुछ अतर दिखाई पडता है, किंतु मामाजी की गलदश्रु भावुकता और पांडित्य के प्रकाश मे उनका समीक्षात्मक अनुशीलन करने पर यह भ्राति दूर हो जाती है। प्रस्तुत छंदो मे उन्होंने अपने आराध्य 'रामलला' का स्मरण जितनी आत्मीयता तथा तन्मयता के साथ किया है, उसमे उनकी प्रगाढ सख्यासक्ति स्पष्ट झलकती है। रहा अभिव्यजना-प्रणाली एव भाषा-विषयक अतर। इस सम्बन्ध मे अपना यह विचार है कि प्रागदास की जो रचनाएँ पहले मौखिक परम्परा से सकलित की गई थीं, वे समय-समय पर मस्ती मे कही गई उनकी उक्तियाँ-मात्र हैं, जो अपनी विचित्रता के कारण इतनी आकर्षक हो गई थी, कि सत-समाज उन्हे श्रुति-परपरा मे सुरक्षित किये रहा। उनकी ठेठ अवधी अयोध्या के दीर्घ निवास का प्रमाद है। इनके अतिरिक्त उन्होने तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-भाषा व्रज मे भी सरस रचनाएँ की थीं, किंतु उनका अधिकाश प्रागदास की यायावरी वृत्ति के कारण तथा गद्दीधारी सत न होने से नष्ट हो गया। प्रतीत होता है कि सजातीय सख्योपासको ने उनकी कृतियो को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था। अट्ठारहवी सती के प्रसिद्ध सख्याचार्य रामसखे के हस्तलेखो के साथ प्रागदास के उपर्युक्त छंदो की प्राप्ति इस धारणा की पुष्टि करती है। हो सकता है, खोज करने पर इसी स्रोत से उनकी कुछ और कृतियाँ प्रकाश मे आयें।

शिवसिंह सेंगर और ग्रियसन ने इनके गुरु सूरकिशोर का समय सन्

१७०४ ई० के आसपास निश्चित किया है।[1] इस आधार पर इन्हें अट्ठारहवीं शती के प्रथम चरण में विद्यमान मानना असंगत न होगा।





---

१. इन दोनों विद्वानों में सर्वप्रथम सेंगरजी ने इनके एक कवित्त में, जो 'सरोज' मे उद्धृत है, 'किशोर सूर' छाप देखकर भ्रमवश उसे ही इनके नाम का शुद्ध रूप मान लिया था। सरोज के दूसरे छंद मे दी गई इनकी वास्तविक सत्ता 'सूरकिशोर' की ओर उनका ध्यान नहीं गया। ग्रियर्सन साहब ने इस विषय में सरोज का ही अनुगमन किया है। देखिए, शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण) पृ० ३९४ तथा 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, (हिन्दी-अनु०) पृष्ठ २१४।

बाबा लक्ष्मीनारायणदास पौहारी

गोरखपुर देवरिया जनपद भगवान बुद्ध की निर्वाण भूमि और गोरक्षनाथ की साधना भूमि के रूप मे विख्यात है। भारतीय धर्म साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह भूभाग प्राचीन काल मे वेदबाह्य साधनाओ का प्रधान केन्द्र रहा है किन्तु मध्यकाल मे यह भागवत धर्म का मुख्य गढ़ बन गया। सरयूपारीण ब्राह्मणो की आदिभूमि के रूप में इसकी प्रतिष्ठा इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इसके फलस्वरूप वैदिक कर्मकाड, उपासना तथा ज्ञान के प्रसार का द्वार खुल गया और सस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। अयोध्या से निकट होने के कारण रामोपासना यहाँ के लोकधर्म के रूप मे चिरकाल से प्रतिष्ठित थी किन्तु इसके सांप्रदायिक सगठन का श्रेय महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी को है। पौहारी जी अयोध्या के प्रसिद्ध रामभक्त विन्दुकाचार्य महात्मा रामप्रसाद की परपरा मे उनकी चौथी पीढी में विराजमान महात्मा अवध प्रसाद जी के शिष्य थे। इनका प्रारभिक नाम लक्ष्मी नारायण था किन्तु साधना काल मे अन्न त्याग कर सदैव दुग्धपान एव फलाहार वृत्ति से जीवन यापन करने के कारण ये पौहारी (पयहारी) नाम से प्रसिद्ध हुए।

पौहारीजी का जन्म देवरिया जिले में राप्ती नदी के तट पर स्थित महेन नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम प० शिवराम पाण्डेय था। लक्ष्मीनारायण जी के घर के निकट ही 'महेन्द्रनाथ' महादेव का मन्दिर था। बाल्यावस्था में ही इनकी उस विग्रह में श्रद्धा हो गयी और ये प्रायः दिन भर मन्दिर में ही शिव-नाम का जप किया करते थे। बड़े होने पर पिता ने इनका विवाह कर दिया किन्तु गार्हस्थ्याश्रम मे उनकी वृत्ति नहीं रमी और ये उत्तरोत्तर विरागोन्मुख होते गये।

एकबार की बात है, चन्द्रग्रहण के अवसर पर ये अयोध्या गये। वहाँ 'नारायण' नामक किसी महात्मा से इनकी भेंट हो गई। उनके सम्पर्क से इनके हृदय में रामभक्ति का बीज वपन हुआ। वहाँ से घर आने पर इनकी विरक्ति

भावना और भी उद्दीप्त हो गयी। फिर तो ये माता-पिता, भाई-बन्धु, वित्त-वनिता—सबसे नाता तोड़कर 'महेन्द्रनाथ' के मन्दिर में ही स्थायी रूप से निवास करते हुए भजन करने लगे। इस अवधि में ये फलाहार करते थे और कभी-कभी निर्जल व्रत भी रखते थे। इस प्रकार कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन इन्हे आकाशवाणी हुई कि 'हे प्रिय ! तुम्हारे मन मे सियाराम के प्रति अगाध श्रद्धा है, अतएव तुम सप्रेम रामस्मरण ही करो।'' भगवान शकर की यह आज्ञा पाकर लक्ष्मीनारायण ने वन की राह ली। कहते हैं कि वहाँ एक दिन ये गायत्री मत्र का जप कर रहे थे। इतने मे एक हाथी आया। उसने इनको सूँड से उठा कर अपने कधे पर चढा लिया। वह इन्हे लेकर पहले पैकोली गया। वहाँ से वैकुठपुर और बडहलगज होता हुआ उसने पुनः इनको पैकोली लाकर उतार दिया तथा स्वय लुप्त हो गया। पयहारी जी की परपरा के रामभक्तो का विश्वास है कि हाथी रूप मे स्वय श्री कृष्णदास जी पयहारी पधारे थे। इसी घटना के आधार पर सप्रदाय मे उक्त तीनो स्थान पूज्य माने जाते हैं और वहाँ इस शाखा की गद्दियाँ स्थापित हैं।

इस घटना के उपरान्त लक्ष्मीनारायण जी गुरु दीक्षा के लिए अयोध्या गये। वहाँ बडा स्थान के तत्कालीन महत महात्मा अवध प्रसाद से दीक्षा प्रग्रहण की। अन्तः साक्ष्य से भी अवध प्रसाद जी के इनके गुरु होने की बात पुष्ट होती है—

सतगुरु हौं मैं अधम भिखारी।
कामक्रोध मोहि अधिक सतावत लोभ मोह अति भारी॥
ताते आज कियो शरणागत सुनि लीजै असुरारी॥
अवध प्रसाद अवध के वासी देखो नयन पसारी॥
लक्ष्मीनारायण दास तुम्हारो आरत बचन उचारी॥[1]

दीक्षोपरात ये कुछ समय तक अयोध्या मे ही रह कर गुरु सेवा और साधु सगति मे लीन रहते हुए साधना करते रहे। इनके एक पद से यह प्रकट होता है कि इन्हे ज्ञान भी यही प्राप्त हुआ था—

हौ मैं हरि चरनन की दासी।
ता दिन ते हरि सरनन आये मेटल सकल उदासी।
गुरु की सेवा साधु की सगति मिलि गये मोहिं अविनासी॥
तब ते काम क्रोध भय छूटेउ होइ गयेउ सुख रासी।
ज्ञान विराग आगे वहु बाढ़त भक्ति भई हिय वासी॥

---

१. श्रीभक्ति प्रकाशिका।

होइ अनुराग परम पद पावत भये अवध के वासी।
तन ते लोभ भयो नहि नृप को जानेउ निजपुर बासी॥
प्रभु कर कमल सीस पद परसत जम-मुख लागत मासी।
अस संयोग पूर करि रघुपति सीय लखन सग वासी॥
लक्ष्मी नारायण दास तुम्हारो छूटि गइल जग लासी॥

इनकी साधना से पूर्णत सतुष्ट होकर महात्मा अवध प्रसाद जी ने इन्हे राममक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी। गुरु आज्ञा पाकर ये भवसागर में डूबते हुए प्राणियो के उद्धारार्थ निकल पड़े। विचरण करते हुए ये देवरिया जिले मे पैकोली के समीपस्थ गुर्रा नदी के तट पर आये और वही 'ठकुरही' के वन्य प्रदेश मे छ वर्ष तक घोर तपस्या करते रहे। वहाँ से सवत् १८६० मे ये पैकोली आये और एक बरगद-वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे। पैकोली के निवास काल मे पैहारी जी की कई सिद्धियो की किवदतियाँ प्रचलित हैं। अनेक औघडो, डाकिनी-शाकिनी आदि पर विजय प्राप्त करने की कहावतें आज भी उक्त भूभाग मे श्रद्धा के साथ कही और सुनी जाती हैं।

सवत् १८७७ म पौहारी जी ने सतो की जमात के साथ चित्रकूट की यात्रा की थी। वहाँ कुछ दिन रहकर जानकी कुड, कामदगिरि आदि स्थानो का दर्शन करके पुन पैकोली लौट आये। इसमे अतिरिक्त हरद्वार, ऋषीकेश, आदि स्थानो पर भी इन्होने कुछ समय तक निवास किया था।

कहा जाता है कि एक बार ये अपने भक्तो के साथ धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए नेपाल के तराई अचल मे पहुँच गये। वहाँ इन्हे एक महाजन मिला। उसके एकमात्र पुत्र का सर्प काटने के कारण दहात हो गया था। उसने बडे ही आर्तभाव से पौहारी जी स सब समाचार कह सुनाया और शव को लाकर उनके सम्मुख रख दिया। पहले तो इन्होने उसे भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया किन्तु उसने एक न सुनी। वह पुन पुन मृत बालक को प्राणदान देने की प्रार्थना करता रहा। अन्त मे इन्होंने उसकी स्थिति पर दया करके हरि-स्मरण करके पाँच बार मन्त्र पढ़ा। दुर्भाग्य से मन्त्र का कोई प्रभाव नही पडा। तब पौहारी जी ने दुखित होकर यह पद गाया—

प्रभु तुम बदी छोर कहायो।
वेद पुराण सत अस गावत सिव सारद मन भायो।
जह जहँ गाढ़ परत जीवन पर तह तह बार न लायो।
गज के बाध तुरत उठि धाये द्रोपदी चीर बढ़ायो।
पाँचों पांडव लाक्षागृह म तहाँ मणि खभ को खोलि जियायो।

नामदेव के भवन छवायो तिर्लोचन दरसायो।
खम फारि हरनाकुस मारे जन प्रहलाद बचायो।
अम्बरीष व्रत राखि लियो हैं दुर्वासा दुख पायो।
चक्र सुदर्शन जारन लाग्यो त्राहि त्राहि गोहरायो॥
एकबार अजामिल तुव जन नारायण सुधि पायो।
जम के दूतनि मारि निकार्‌यो निजपुर बेगि बोलायो॥
कोकलऊ मह वृद्ध भयो हो की, चक्र चोरायो।
की कहुँ राक्षस बान्हि लियो है ताते सुधि बिसरायो।

भक्त के इस कातरतापूर्ण पद की ध्वनि करुणासिंधु भगवान के कानों में पड़ी और उनकी कृपा से महाजन का लड़का उठकर बैठ गया। तब पौहारी जी ने इन पंक्तियों को रच कर पद को पूरा किया—

गावत गावत पार न पावत निसिदिन बन्दि छोड़ायो।
'लक्ष्मीनारायण' जन महि अवसर प्रभुता देखि परम सुख पायो।

पर्यटन समाप्त होने पर यह पैकोली लौट आये और वहीं आजीवन निवास करते रहे। इनका साकेत वास आषाढ़ शुक्ला तृतीया, सोमवार संवत् १६०८ को हुआ।

पौहारीजी की गद्दियाँ अब भी पैकोली, बैकुंठपुर और बड़हलगंज में चल रही हैं। इनमें व्रतोत्सव मनाने की जो परिपाटी पौहारीजी ने चलायी थी वह अब भी उसी रूप में प्रचलित है। आज भी पैकोली में रामजन्म तथा कृष्णाष्टमी बड़हल गंज में रथयात्रा और बैकुंठपुर में राम विवाह का उत्सव बड़े धूम से मनाया जाता है। पौहारी जी के उत्तराधिकारी अपने पूर्वाचार्यों की भाँति आज भी विरक्तिपूर्वक कालयापन करते हुए रामभक्ति का प्रचार कर रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर-देवरिया जनपद के आध्यात्मिक इतिहास में पौहारी जी का वही स्थान है जो मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास में गलता गद्दी (राजस्थान) के प्रवर्तक श्री कृष्णदास पयहारी का था।

●●●

परिशिष्ट

परिशिष्ट

मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

१. रामचरित

(क) प्रसग—लका पर राम की चढाई और उससे भयभीत मन्दोदरी द्वारा रावण की भर्त्सना—

फोर गई राम दुआई लका मे फोर गई राम दुआई रे।
वैहत मदोदर सुन पीया राभण ऐसी कुमत चलाई रे।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल लपटाई रे।।[1]

(ख) राम की अष्टयाम लीला—राम की शयनकक्ष में जाने की तैयारी और सखियो द्वारा उनका शृङ्गार। निम्नलिखित पद शयन समय की आरती का है। शृगारी रामभक्ति की तत्सुखी शाखा में, प्रिया-प्रियतम की विहार लीला का जालरन्ध्रो से दर्शन और ध्यान ही साधक (सखी) का अभीष्ट होता है। मीराबाई उसी आनन्द (तत्सुखसुखित्व) को प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करती हुई कहती हैं—

मदिर पोढिये रघुराई।।
कचन को महल कचन को दुलिया रेशम बरन बनाई।।
फूँलन सेज फूलन के गिदवा फूलन लूँब लगाई।।
चोवा चदन अगर कुमकुमा केसरि अंग लपटाई।।
सीताराम दोउ सग पोढे बलि जाय मीरा बाई।।[2]

---

१. राजस्थान प्राच्य विद्या शोध संस्थान जोधपुर, हस्तलेख सं० ६२९९ पत्रांक ९।
२ रा० प्रा० वि० शो० प्रतिष्ठान जोधपुर हस्तलेख स० १८८२ पत्र ६८ ब
तुलनीय—पोढिऐ रसिक जानकि रमन।
सर्वऋतु के भोग यामें महल अति मन हरन।।
विविध रचना बनी जहँतहँ विधि निपुणता हँसन।
श्रेम रचना बनत कहि नहि मनहुँ मनसिज मथन।।
पिया प्यारी ताहि ऊपर केलि कर सुख सदन।
यहे आसा कृप तजियत सुरून कर ललि ललन।।
— प्रदधारा पदावली, पद सं० १०

२ राम की भक्तवत्सलता—

राम जी बिना कूँण हरे म्हारी भीर ।
ऐक समै गजराज उबार्‌यो काम्या जहर जे मीर ।
ऐक समै प्रह्लाद उबार्‌यो धारियो नृसिंह सरीर ।।
ऐक समै द्रोपति पत राखो खैंचत बाढ्यो चीर ।।
राँका भी त्यारा रामजी बाँका भी त्यारा, त्यारा है कालू कीर ।
मीराँ के प्रभु हरि अवनासी वै साहि गहर गँभीर ।।

३. आत्म प्रबोधन—

अपराधी तैं राम न जान्यो रे ।
हारा सो तन छाडि के रम मो बिस छान्यों रे ।।
जठरागिनि ते काढ़ि के बाहर ले आन्यो रे ।
उहाँ ते आयो कौल करि इहाँ बिसरान्यो रे ।।
मात पिता सुत बँधवा इन सों मन मान्यो रे ।
मीराँ प्रभु गिरधर बिना कोउ लख न समान्योरे ।।

४ राम शरणागति—

रघुवर माधो री मुरत लील बरन घनश्याम ।
सीयावर माधो री मूरत ।
परण कर तारत सबको दाता मनसा री पूरन काम ।।
जनक सुतावर लक्ष्मण राजीद क्रीट मुकुट अभिराम ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल निज धाम ।।

५ कैंकर्य निष्ठा—

राखो राम हुजूरी बाला हमम बडी मवूरी ।
अयोध्यापुर मे चाव त्याने तो राखो राम हजूरी ।।
हे जी ! सेर हू सेरी बजरी दीज्यो नातर दीज्यो कूरी ।
पचा अमृत कर कर मनु मानूं हमने घडी सबूरी ।।
हे जी ! वोढ़नको कारी कामरी दीजै नातर दीज्यो कूरी ।
मेरा जीव सो लागि धरत न मेले कमल की दूरी ।।
हे जी ! चारो त्यासूं पूलो त्यासूं-भैंस दुवासो मूरी ।
जीमन जूठन करि करि मेलू झारी लेर हजूरी ।।

हे जी ! मोर मुकट करनां कुंडल सोहे और बैजंती माला ।
आठ पहर दरबार खडो रहूँ काटो जीव का जाला ॥
मीराबाई हरिगुन गावे चरन कँवल की दासी ।
चरन कँवल की सेवा करसूँ चरनाम्रत की प्यासी ॥[1]

६ राम भजन—

रसनां तू राम बिना मति बोल ।
और बोल्यां अपराध लगत है पडत भजन माँहि झोल ॥
सुखरत सुमिरण कर ले री आंणी मैं दोय बात अमोल ।
जगत तणी बाता सब झूठी राम नाम मुख बोल ॥
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर कीया छै गरभ माँहीं कोल ॥

● ● ●

पड गई रे माने राम भजन की बांण जी ।
साध सगन बीनो बाहो दिन बीता हो आय पडी है मोहि हाण जी ॥
देय कूंक मैं पाव धरूंगी पाणी पीउंगी मैं छाण जी ।
घर धधा मा मेरो मण नहि लागै साधा मै बैठूंगी आण जी ॥
मेरो तो मन हर सू जी लागै छाड डाली कुलकी कांण जी ।
पाँव दीया चल सतसग कर लै हाथ दीया कर दान रे ॥
नेण दीया साधु दरसण कर ले कान दिया सुण ग्यांन जी ।
मीरां कहे प्रभु सतगुर सरणे हरमु पडीछ पिछाण जी ॥[3]

● ● ●

जो दुप थाय सो पाज्यो रे दम राम जी न भजता ।
पीउ जाय तो रापव कीजो जीव जाय तो लायो रे ॥
उचा बाष तल अगनी पूजालौ मार समेला री पाज्यौ रे ।
लोक नीदे ताने निंदवा दीजे राज दडै तो डंडाज्यौ रे ॥
मीरां कहे दुप कोट सहीजे गुण गोविन्द जी गाज्यो रे ॥[४]

---

१. राजस्थान प्रा० वि० शो० प्र० जोधपुर, हस्तलेख सं० १८९०, पत्र ८९-९० ।
२. अनूप स० पु० लालगढ़ बीकानेर हस्तलेख सं० ११२ ।
३. राजस्थान प्रा० वि० शो० प्र० बीकानेर हस्तलेख सं० १०४५७ से संकलित।
४. संत साहित्य मण्डल बीकानेर के हस्तलेख संग्रह से ।

७. रूपासक्ति—

रघुवर मोहि परनाई अमां मोरी ।
सुन्दर सुघड सुजांन सांवरो जनम-जनम भरतार ।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै गल मोतीयन की माल ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरण कंबल चित लाईं ।।[1]

● ● ●

माई मोरे नयन बसे रघुवीर ।
कर सर-चाप कुसुम सर लोचन ठाढे भए मन धीर ।।
ललित लवग लता नागर लीला जब देखो तब रणधीर ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बरसत कचन नीर ।।[2]

८. मधुर-मिलन—

तवै नावै तीयाणो बाणो रामायो होवैडो हारे
मुगतै रो माल सोहीयो ।।
मारे सीलै सतोकै चुदडै बाणे रमायो ही सालुडा री कोरे ।
सहेल्यां हे धाणो पेरियो चीते चीतने चुडेलो बाणो ।।
रामायो हे चालेया जी रे लुबै झुबै बाजु बदि बाणा
रामायो है बाजुबादै री लुबै ।।
सहेल्या हे मै तो कारणी रो काजाले सारियो सील पैला लाइ ।
ईतरी गणो जी पैहारै नीकैली रामाया री सेजै ।।
बाई मीरा ने लाल गिरधारे मोल्या पुरी पुरी
य मनैडा री आसा ।।[3]

● ● ●

थु तो मेरा राम मोल्या दीलजानी, मेर उपर मेरबानी
देस देस और मुलक मुलक मे पाई नही तरी निसानी ।।
जगकी आस बास सब तज दी, लाव होवो चाहै हानी ।

---

१. रा० शो० सं० चौपासनी (जोधपुर) हस्तलेख सं० २८८४ ।
२. मीरा माधुरी—परशुराम चतुर्वेदी, पद २५६ ।
३. रा० शो० स० (जोधपुर) हस्तलेख सं० ८३६६ से संकलित ।

काए मेर तार्‌या जग मे तेरी सुरत मन मानी ।।
सुणीए साम काम जलदी कर कहा पत्री लघु छानी ।
वाई मीरां भर्णे साम से मु आचक थु दानी ।।[1]

९. विरह निवेदन

कोई राम पिया घर लावै रे ।
तलफत प्राण दुखी अति मेरो जरती अगन बुझावै रे ।।
हे कोई मीत हमारो ऐसो जाय सदेसो सुणावै रे ।
स्नेह अगन भई अति आतुर जागत रैण बितावै रे ।।
तलप तलप तन तालाबेली सास कलप सम जावै रे ।
नीर बिना पछी किम जीवै बीछुडिया मर जावै रे ।।
अब तो किरपा कर आवो मनमोहन दरस बेगि देखावो रे ।
जन मीरा स्नेहन अति व्याकुल मरतक आन जियावो रे ।।[2]

● ● ●

मोरे घर आज्यो राम पियारा ।
मैं निगुणी मे गुण नहिं कोई मो में ओगण सारा ।
तन मन धन सब अरपण करसूं भजन करूं मैं थांरा ।।
बोहा गुणवता साहिब मेरा गुना बकस ज्यो सारा ।
मीरा तो चरणन की दासी तुम बिना नैन दुख्यारा ।।[3]

● ● ●

रांम जी मिलावे तो फेर मिलैंगे मिल बिछडो मत कोई हो ।।
लगन लगी जब लाज कहाँ रही निंद्या करो सब कोई ।
प्रीत करी मैं सुख के कारण प्रीत किया दुख होई ।।
आप तो जाय विदेसै बसे हो मिलण किसी बिध होई ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हूंण मतै सो होई ।।[4]

---

१. अनूप सं० पु० लालगढ़ (बीकानेर) हस्तलेख सं १७० से सकलित ।
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ११३ संकलित ।
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, हस्तलेख सं० ११२ से संकलित ।
४. राजस्थान शोध संस्थान चोपासनी, जोधपुर हस्तलेख स० ७१४३ से संकलित ।

१०. भावासक्ति—

रांम दिवानी हो गई मैं तो रांम दिवानी हो।
भावै लोक हंसी करो, मेरे मन मानो हो॥
लोक कुटुंब परवार तज्यो लेहों थारग पानी हो।
स्वात बूंद रघुनाथजी तन सूं लसानी हो॥
प्रेम सुधारस सींचता नहीं मैं ध्यूं अघानी हो।
गावे मीरा व्याकुली हरि हाथ बेकानी हो॥[1]

मीराबाई के ये पद अधिकांशतः बीकानेर और जोधपुर के प्राचीन हस्तलेख संग्रहों से छिटपुट प्राप्त हुए हैं। राजस्थान के अनेक वृहद् ग्रंथागार अभी तक अनालोडित हैं। संभव है उनके मथन से मीरा के कुछ और पद प्राप्त हों जिनसे रामानन्दीय सम्प्रदाय के भक्तों तथा रामभक्तिधारा से उनके सम्बन्ध पर नया प्रकाश पड़ता हो।[2]

१. रा० शो० सं० चोपासनी (जोधपुर) हस्तलेख स० ८२९१ से संकलित।
२ श्री कल्याण सिंह शेखावत ने इनके सकलन में प्रशंसनीय प्रयास किया है। देखिये उनका शोध प्रबन्ध मीराबाई के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

नामानुक्रमणिका